CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्नरी

शालिग्राम मिश्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्नरी

५७३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खजुराहो की पृष्ठभूमि पर आधारित लेखक की अन्य रचनाएं

1. खजुराहो की नगर वधू — रु० 12.50
2. किन्नरी — रु० 15.00
3. देवनगरी का स्वप्न — रु० 17.50

State Museum Library Lucknow

4731

आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता
पो० बॉ० १४२६, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्नरी

शालिग्राम मिश्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

KINNARI

(A NOVEL)

by

SHALIGRAM MISHRA

Rs. 15.00

COPYRIGHT © ATMA RAM, & SONS, DELHI-110006

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

4731

शाखाएं

चौड़ा रास्ता : जयपुर

17-अशोक मार्ग : लखनऊ

विश्वविद्यालय परिसर : चण्डीगढ़

मूल्य : पन्द्रह रुपये मात्र

मुद्रक

श्याम कुमार गर्ग

राष्ट्रभाषा प्रिंटर्स

२७, शिवाश्रम

क्वींस रोड, दिल्ली-110006

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आमुख

प्रतिहार साम्राज्य की दृढ़ केन्द्रीय सत्ता का ह्रास हो जाने पर उत्तर भारत में चन्देलों ने अपनी प्रभुता का विस्तार किया था। कुछ समय के लिए वे उत्तर भारत के सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न शासक बन गये थे। ईसवी सन् 925 से लेकर सन् 1100 तक—प्राय: दो शताब्दियों की अवधि में—चन्देल प्रभुता चमकी थी। वैसे इस वंश के राजनैतिक इतिहास का प्रारम्भ ईसा की नवीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुआ था और इस वंश के अन्तिम ज्ञात शासक वीरवर्मन द्वितीय का शासन सन् 1315 तक रहने का ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है। पर सन् 1100 में कीर्तिवर्मन का शासन-काल समाप्त होने के बाद इस वंश की प्रभुता के क्रमशः क्षीण और संकुचित होने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। प्रस्तुत उपन्यास के कथाकार श्री मिश्र जी ने इसी चंदेलवंश के सर्वाधिक गौरवमय शासक महाराज धंगदेव के पितामह महाराज हर्षदेव के शासनारूढ़ होने से लेकर धंगदेव के ही पौत्र महाराज विद्याधर के शासनारूढ़ होने के एक-दो वर्ष बाद तक के राजनैतिक घटनाचक्र को आधार बनाकर तीन उपन्यासों की रचना की है। प्रस्तुत उपन्यास 'किन्नरी' इस शृङ्खला की अंतिम कड़ी है और धंगदेव के पुत्र महाराज गंडदेव के शासन काल (सन् 1002 से 1118 तक) तथा उनके उत्तराधिकारी विद्याधर के शासनकाल के प्रारम्भिक एक-दो वर्षों के काल-खण्ड का चित्रफलक प्रस्तुत करता है। चन्देल-राज्य पर महमूद का पहला आक्रमण सन् 1019 में हुआ था। इस अभियान में महमूद को पहली बार भारत में विजयश्री से वंचित रहकर निराश वापस लौटना पड़ा था। इसी आक्रमण की समाप्ति के साथ 'किन्नरी' की कथा भी समाप्त होती है। इस प्रकार इस उपन्यास का कथा-काल ईसा की ग्यारहवीं शती का प्रथम चरण है।

भारतीय इतिहास का यह सन्दर्भगत काल-खण्ड आश्चर्यजनक विरोधाभासों का समाहार है। एक ओर तो देश धन-धान्य से परिपूर्ण था। उसकी भौतिक समृद्धि संसार की ईर्ष्या की विषय थी। साहित्य, संगीत, नृत्य, नाटक, धर्म,दर्शन, वास्तु-कला, मूर्तिकला आदि प्राय: सम्पूर्ण बौद्धिक कलात्मक क्षेत्रों में स्पृहणीय उपलब्धियाँ हो रही थीं। निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इस कालखण्ड में जितने अधिक, जितने विशाल, जितने सुन्दर मन्दिरों का निर्माण कन्नौज, खजुराहो, उज्जैन, सोमनाथ आदि अनेक स्थानों में हुआ उनकी मिसाल मिलना कठिन है। अकेले कन्नौज नगर में ही दस सहस्र मन्दिरों का निर्माण हुआ था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खजुराहो के मन्दिरों की ख्याति तो आज देश-देशान्तर में फैल रही है, यद्यपि अंशत: उसका कारण शिल्प वैशिष्ट्य की परख के अलावा कुछ और भी है जिसकी चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं है। पर यह तथ्य है कि दर्शन, धर्म और कला का जितना सफल और समृद्ध सामंजस्य भारतीय इतिहास के इस ज्ञात काल-खण्ड में दिखाई देता है उतना अन्य किसी कालखण्ड में नहीं। पौरुष, साहस, शौर्य और युद्ध-कौशल के भी अप्रतिम उदाहरण दिखाई देते हैं। दूसरी ओर यह विघटन और पतन का समय भी था। महामति चाणक्य और दिव्यचक्षु शंकर राष्ट्रीय संहिति और सांस्कृतिक एकात्मता के जो सूत्र पिरो गये थे वे सब तत्कालीन शासकों की क्षुद्र अहम्मन्यताओं और संकीर्ण स्वार्थों के झटकों से छिन्न-भिन्न हो रहे थे। छोटे-छोटे राय-राजे अपनी-अपनी गढ़ियों में गर्वोन्नत विवेकशून्य सिर ऊँचे किए पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की लपटों में राष्ट्र की शक्ति को क्षार कर रहे थे। देश किसी भी महत्त्वाकांक्षी लोलुप आततायी को खुला निमंत्रण दे रहा था। गज़नी के सुबुक्तगीन और उसके बेटे महमूद को यह निमंत्रण अत्यन्त रूचिकर लगा; और इतिहास साक्षी है कि अपनी अपार समृद्धि, उन्नत संस्कृति, अपने अप्रतिम पौरुष, साहस, शौर्य और रण-कौशल के बावजूद यह देश पराधीन होकर रहा।

इस देश-व्यापी अन्धकार में विवेक की एक ज्योति चन्देल महामात्य प्रभास के रूप में चमकी थी। उन्होंने अपने देश के वर्तमान को परखा था, भविष्य को आँका था और अवांछनीय भावी को रोकने का स्तुत्य प्रयास किया था। वह जानते थे कि 'देश, जाति और राष्ट्र के लिए श्रेयस्कर वही हो सकता है··· जिसके पीछे कहीं किसी रूप में एकता का कोई सूत्र विद्यमान हो'। किन्तु अपने अथक प्रयत्नों के बाद भी वह एकता का यह सूत्र पिरोने में सफल न हो पाये। अन्तिम क्षणों में वह यह विषाद मन में लेकर गए: 'दुर्भाग्य वश देश के···अधिकांश शासक···राज्य को ही जानते हैं, उसे ही मानते हैं। राष्ट्र की धारणा ही उनके संकुचित मस्तिष्कों में नहीं है··· उनका राज्य ही उनका राष्ट्र है, उनका देश है, उनका विश्व है।' (आज भी कितनी सटीक है यह उक्ति ?) इस स्थिति के अनिवार्य परिणाम को वह जानते थे: 'विदेशों से आततायी आएँगे और हम उनका अवरोध नहीं कर सकेंगे। वे हमारा शोषण करेंगे और हमारे ऊपर शासन करेंगे। हम स्वार्थवश उनकी दासता करेंगे और उसमें ही अपना गौरव मानेंगे।' भविष्य में झाँककर इतना स्पष्ट और दूर तक देख सकने की क्षमता वाले महामात्य प्रभास 'किन्नरी' की कथा के सूत्रधार हैं। उपन्यास की समाप्ति काल से पहले उनका पार्थिव पर्यवसान हो जाता है; पर अन्तत: महमूद को पूर्व की ओर फिर क़दम न बढ़ाने का फ़ैसला कराने में विजय उन्हीं की होती है, उनकी अनुपस्थिति में भी।

□ □ □

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाठकों को 'किन्नरी' से पूर्व की कड़ी 'खजुराहो की नगरवधू' अभी पिछले वर्ष पढ़ने को मिली थी। पाठकों को उसके कुछ पात्र 'किन्नरी' में भी मिलेंगे। इनमें कुछ ऐतिहासिक हैं और शेष औपन्यासिक। कथाकार ने इन रचनाओं में परस्पर कुछ सामान्य सूत्र रखते हुए भी प्रत्येक उपन्यास को ऐसी पृथक स्वतः पूर्ण इयत्ता प्रदान की है कि किसी रचना के सम्यक् रसास्वाद के लिए पूर्वापर सम्बन्ध का ज्ञान अनिवार्य नहीं रह गया। फिर भी तीनों रचनाएँ मिलकर इतिहास के सन्दर्भगत कालखण्ड के राजनैतिक-सामाजिक जीवन-प्रवाह का व्यापक चित्रफलक प्रस्तुत करती हैं।

□ □ □

'किन्नरी' के जन्मकाल से ही मैं उससे परिचित हूँ और उसके विकासक्रम को देखता आया हूँ, यद्यपि उपन्यास में उसका जन्म ईसा की ग्यारहवीं शती के प्रारम्भ होने से पहले ही हो चुका था। किन्नरी अपनेआप में एक मुग्धकारी सृष्टि है। वह पार्वती है, अपने बाबा की प्यारी-दुलारी। अवसर आता है और वह दुर्गा बन जाती है। आततायी का—अपने बाबा की हत्या और अपने नारीत्व का अपमान करने वाले का—वध करके उसके रक्त से अंजुलि भर-भर कर अपने बाबा के शव का तर्पण करने वाली यह वीरबाला सम्पूर्ण मानवता के लिए वरेण्य है, वन्दनीय है। फिर स्थिति बदलती है और वह सरस्वती बन जाती है, लक्ष्मी का आँचल भी अपना लेती है। पाठक बरबस कह उठता है : 'या देवी सर्व भूतेषु······।' शक्ति स्वरूपा, शील समावेष्टिता, सहज औदार्य और विनम्र स्वाभिमान की प्रतिमूर्ति किन्नरी फिर भी सचमुच देवी नहीं बन जाती, मानवी—नितान्त मानवी—बनी रहती है। कथाकार की क्षमता का यह भी एक मानदंड है।

इस उपन्यास में किन्नरी के अतिरिक्त तीन और स्त्री पात्र हैं : रत्नमाला, लक्ष्मी और गंगा। रत्नमाला—महामात्य प्रभास की राष्ट्रनीति की एक धुरी—अब खजुराहो की नगरवधू से ममतामयी माता बन चुकी है। लक्ष्मी मांसल नारीत्व है जो काम्य और अदम्य कामनापूर्ण होते हुए भी विवेक शून्य नहीं है। गंगा असामान्य स्थिति में, अपवाद कोटि में है और पाठक की सहानुभूति हठात् प्राप्त कर लेती है।

'खजुराहो की नगरवधू' में यदि रत्नमाला महामात्य प्रभास की कूटनीति का एक सबल-सफल प्रच्छन्न माध्यम थी तो 'किन्नरी' में उसका स्थान विजयसिंह ने ले लिया है जो स्वभावतः रत्नमाला की भाँति उतना आकर्षणमय तो नहीं है पर सामरिक कूटनीति का और निःस्व राष्ट्रप्रेम का अपनेआप में एक अनूठा उदाहरण है।

कथाकार प्रजापति होता है। उसके पात्र उसकी सृष्टि होते हैं। इस गरिमामय पद की योग्यता वही सिद्ध कर पाता है जो अपनी सृष्टि के प्रत्येक पात्र में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खजुराहो के मन्दिरों की ख्याति तो आज देश-देशान्तर में फैल रही है, यद्यपि अंशत: उसका कारण शिल्प वैशिष्ट्य की परख के अलावा कुछ और भी है जिसकी चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं है। पर यह तथ्य है कि दर्शन, धर्म और कला का जितना सफल और समृद्ध सामंजस्य भारतीय इतिहास के इस ज्ञात काल-खण्ड में दिखाई देता है उतना अन्य किसी कालखण्ड में नहीं। पौरुष, साहस, शौर्य और युद्ध-कौशल के भी अप्रतिम उदाहरण दिखाई देते हैं। दूसरी ओर यह विघटन और पतन का समय भी था। महामति चाणक्य और दिव्यचक्षु शंकर राष्ट्रीय संहिति और सांस्कृतिक एकात्मता के जो सूत्र पिरो गये थे वे सब तत्कालीन शासकों की क्षुद्र अहम्मन्यताओं और संकीर्ण स्वार्थों के झटकों से छिन्न-भिन्न हो रहे थे। छोटे-छोटे राय-राजे अपनी-अपनी गढ़ियों में गर्वोन्नत विवेकशून्य सिर ऊँचे किए पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की लपटों में राष्ट्र की शक्ति को क्षार कर रहे थे। देश किसी भी महत्त्वाकांक्षी लोलुप आततायी को खुला निमंत्रण दे रहा था। गज़नी के सुबुक्तगीन और उसके बेटे महमूद को यह निमंत्रण अत्यन्त रुचिकर लगा; और इतिहास साक्षी है कि अपनी अपार समृद्धि, उन्नत संस्कृति, अपने अप्रतिम पौरुष, साहस, शौर्य और रण-कौशल के बावजूद यह देश पराधीन होकर रहा।

इस देश-व्यापी अन्धकार में विवेक की एक ज्योति चन्देल महामात्य प्रभास के रूप में चमकी थी। उन्होंने अपने देश के वर्तमान को परखा था, भविष्य को आँका था और अवांछनीय भावी को रोकने का स्तुत्य प्रयास किया था। वह जानते थे कि 'देश, जाति और राष्ट्र के लिए श्रेयस्कर वही हो सकता है··· जिसके पीछे कहीं किसी रूप में एकता का कोई सूत्र विद्यमान हो'। किन्तु अपने अथक प्रयत्नों के बाद भी वह एकता का यह सूत्र पिरोने में सफल न हो पाये। अन्तिम क्षणों में वह यह विषाद मन में लेकर गए : 'दुर्भाग्य वश देश के···अधिकांश शासक···राज्य को ही जानते हैं, उसे ही मानते हैं। राष्ट्र की धारणा ही उनके संकुचित मस्तिष्कों में नहीं है··· उनका राज्य ही उनका राष्ट्र है, उनका देश है, उनका विश्व है।' (आज भी कितनी सटीक है यह उक्ति ?) इस स्थिति के अनिवार्य परिणाम को वह जानते थे : 'विदेशों से आततायी आएँगे और हम उनका अवरोध नहीं कर सकेंगे। वे हमारा शोषण करेंगे और हमारे ऊपर शासन करेंगे। हम स्वार्थवश उनकी दासता करेंगे और उसमें ही अपना गौरव मानेंगे।' भविष्य में झाँककर इतना स्पष्ट और दूर तक देख सकने की क्षमता वाले महामात्य प्रभास 'किन्नरी' की कथा के सूत्रधार हैं। उपन्यास की समाप्ति काल से पहले उनका पार्थिव पर्यवसान हो जाता है; पर अन्तत: महमूद को पूर्व की ओर फिर क़दम न बढ़ाने का फ़ैसला कराने में विजय उन्हीं की होती है, उनकी अनुपस्थिति में भी।

□ □ □

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाठकों को 'किन्नरी' से पूर्व की कड़ी 'खजुराहो की नगरवधू' अभी पिछले वर्ष पढ़ने को मिली थी। पाठकों को उसके कुछ पात्र 'किन्नरी' में भी मिलेंगे। इनमें कुछ ऐतिहासिक हैं और शेष औपन्यासिक। कथाकार ने इन रचनाओं में परस्पर कुछ सामान्य सूत्र रखते हुए भी प्रत्येक उपन्यास को ऐसी पृथक स्वतः पूर्ण इयत्ता प्रदान की है कि किसी रचना के सम्यक् रसास्वाद के लिए पूर्वापर सम्बन्ध का ज्ञान अनिवार्य नहीं रह गया। फिर भी तीनों रचनाएँ मिलकर इतिहास के सन्दर्भगत कालखण्ड के राजनैतिक-सामाजिक जीवन-प्रवाह का व्यापक चित्रफल प्रस्तुत करती हैं।

□ □ □

'किन्नरी' के जन्मकाल से ही मैं उससे परिचित हूँ और उसके विकासक्रम को देखता आया हूँ, यद्यपि उपन्यास में उसका जन्म ईसा की ग्यारहवीं शती के प्रारम्भ होने से पहले ही हो चुका था। किन्नरी अपनेआप में एक मुग्धकारी सृष्टि है। वह पार्वती है, अपने बाबा की प्यारी-दुलारी। अवसर आता है और वह दुर्गा बन जाती है। आततायी का—अपने बाबा की हत्या और अपने नारीत्व का अपमान करने वाले का—वध करके उसके रक्त से अंजुलि भर-भर कर अपने बाबा के शव का तर्पण करने वाली यह वीरबाला सम्पूर्ण मानवता के लिए वरेण्य है, वन्दनीय है। फिर स्थिति बदलती है और वह सरस्वती बन जाती है, लक्ष्मी का आँचल भी अपना लेती है। पाठक बरबश कह उठता है: 'या देवी सर्व भूतेषु……।' शक्ति स्वरूपा, शील समावेष्टिता, सहज औदार्य और विनम्र स्वाभिमान की प्रतिमूर्ति किन्नरी फिर भी सचमुच देवी नहीं बन जाती, मानवी—नितान्त मानवी—बनी रहती है। कथाकार की क्षमता का यह भी एक मानदंड है।

इस उपन्यास में किन्नरी के अतिरिक्त तीन और स्त्री पात्र हैं: रत्नमाला, लक्ष्मी और गंगा। रत्नमाला—महामात्य प्रभास की राष्ट्रनीति की एक धुरी—अब खजुराहो की नगरवधू से ममतामयी माता बन चुकी है। लक्ष्मी मांसल नारीत्व है जो काम्य और अदम्य कामनापूर्ण होते हुए भी विवेक शून्य नहीं है। गंगा असामान्य स्थिति में, अपवाद कोटि में है और पाठक की सहानुभूति हठात् प्राप्त कर लेती है।

'खजुराहो की नगरवधू' में यदि रत्नमाला महामात्य प्रभास की कूटनीति का एक सबल-सफल प्रच्छन्न माध्यम थी तो 'किन्नरी' में उसका स्थान विजयसिंह ने ले लिया है जो स्वभावतः रत्नमाला की भाँति उतना आकर्षणमय तो नहीं है पर सामरिक कूटनीति का और निःस्व राष्ट्रप्रेम का अपनेआप में एक अनूठा उदाहरण है।

कथाकार प्रजापति होता है। उसके पात्र उसकी सृष्टि होते हैं। इस गरिमा-मय पद की योग्यता वही सिद्ध कर पाता है जो अपनी सृष्टि के प्रत्येक पात्र में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रम सकता है, प्रत्येक के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकता है। और तभी उसकी सृष्टि के पात्र अपने-अपने व्यक्तित्व में जीवन्त होते हैं। 'किन्नरी' के कथाकार ने यह सिद्धि पाई हैं। सामान्य हिन्दू लेखक प्रस्तुत कथानक के परिप्रेक्ष्य में मूर्ति-भंजक सुल्तान महमूद के साथ न्याय करने में फिसल गया होता। पर मिश्र जी ने उसे ठीक उसके ऐतिहासिक गौरव के अनुरूप प्रतिष्ठा दी है। जो महमूद घोषणा करता है : "जिसकी शहर-पनाह से हमारे ऊपर एक तीर भी न छोड़ा गया हो उस पर तलवार उठाकर हम अपनी तलवार की तौहीन नहीं करेंगे। जिसे जान अज़मत से ज़यादा अज़ीज है उसको जंग करने के लिए मजबूर करके हम उसे इज्जत नहीं अता करेंगे," वह मामूली लुटेरा या मात्र धर्मान्ध हत्यारा नहीं रह जाता। कथा के सभी पात्रों के साथ लेखक की यह सहानुभूति दिखाई देती है। इसीलिए 'किन्नरी का प्रत्येक पात्र, महामात्य प्रभास से लेकर भृत्य शंकर तक, अपने विशिष्ट व्यक्तित्व में निखरा हुआ है, अतिशय प्राणवन्त और मनोरम है।

इस उपन्यास में महामात्य प्रभास, सुल्तान महमूद, राय आन्दपाल जैसे ऐतिहासिक पात्रों और चन्द्रशेखर, किन्नरी, लक्ष्मी जैसी कल्पना-प्रसूत सृष्टियों के होते हुए भी मुझे लगता है यह रचना परंपरागत नायक-नायिका के इर्दगिर्द घूमने वाली सामान्य चरित्र-प्रधान कथाकृति नहीं है। लेखक तत्कालीन भारतीय जीवन के छिन्न-भिन्न राजनैतिक तंत्र का और उसके दूरगामी दुर्भाग्यपूर्ण परिणामों का सजीव चित्र आँकने में जितना तल्लीन है उतना किसी प्रेमकथा या व्यक्तित्व-गाथा के गायन में नहीं। प्रेमकथाएँ हैं, और अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। व्यक्तित्व चित्रित हुए हैं; और तूलिका का मोहक कौशल सिद्ध करने वाले हैं। पर कथा के विभिन्न पात्र विविध रंगरूपाकार वाले, शक्ति और सौंदर्यशाली चित्रफलक हैं जिनके माध्यम से लेखक ने भारतीय राष्ट्र के तत्कालीन विशृंखल—क्षुद्र स्वार्थों अन्ध अहंभाव और कुटिल ईर्ष्या से जर्जरित—राजनैतिक ढाँचे को पाठकों के सम्मुख अनावृत करने का सफल और स्तुत्य प्रयास किया है। सम्पूर्ण कृति पढ़ जाने के बाद भारतीय राष्ट्र के इसी विघटन, ह्रास और पतन का विषादजनक चित्र सर्वाधिक रूप में उभर कर सामने आता है और पाठक के मन को उद्वेलित कर देता है। इतिहास के अगणित हेतुहेतुमद्भूत उसके क्षुब्ध मानस को बहलाने लगते हैं। सुधी पाठक राष्ट्र के वर्तमान और भविष्य को इतिहास के आइने में स्पष्ट देखने-समझने की शक्ति पाता है। यह दृष्टि मिलती है कि एकान्तिक भौतिक समृद्धि और सांस्कृतिक प्रगति, समर्थ केन्द्रीय राजनैतिक शक्ति और एकता के अभाव में, न केवल अरक्षित और असहाय होती है बल्कि समर्थ लोलुप आततायी के लिए प्रबल प्रलोभन भी।

हिन्दी में इस कोटि के मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास निश्चित रूप से बहुत कम हैं। मिश्र जी के उपन्यास 'खुजराहो की नगर वधू' पर टिप्पणी देते हुए कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोगों ने स्वर्गीय आचार्य चतुरसेन के अभाव की पूर्ति की आशा व्यक्त की थी। ऐसा शायद 'वैशाली की नगरवधू' के वज़न पर उनकी कृति का नाम देखकर ही कहा गया होगा। अन्यथा आचार्य के 'इतिहास-रस' की निष्पत्ति के लिए जिस प्रकीर्ण, प्रचुर, प्रक्षिप्त ऐतिहासिक, पौराणिक और विविध शास्त्रीय ज्ञान तथा अद्भुत काल्पनिक सर्जना की प्रदर्शिनी 'वैशाली की नगर वधू' में अनिवार्य हो गई थी वह न तो 'खजुराहो की नगरवधू' में कहीं दिखाई दी और न प्रस्तुत उपन्यास में है। शायद इसीलिए अपनी सुविचारित सीमित परिधि में इतिहास के कंकाल को कल्पना के रक्त-मांस के स्वस्थ समायोजन से जीवन्त बनाकर मिश्र जी ये ऐसी सुष्ठु कृतियाँ प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं जिनके सम्यक् काव्यात्मक रसास्वाद के लिए बौद्धिक शीर्षासन आवश्यक नही है। वस्तुतः आचार्य चतुरसेन के अभाव की पूर्ति संभव नहीं है। कम से कम मिश्र जी से हमें ऐसी आशा भी नहीं है, क्योंकि वह जानते हैं कि अपनी सहज त्रुटियाँ भी वरेण्य होती हैं, अनुकृत परिष्कृति भी उपहासास्पद होती है, स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

हमारी कामना भी यही है कि किसी महिमामय के अभाव की पूरक बनने के बजाय उनकी लेखनी अपने स्वरस से सिक्त ऐसे ही अभिषिक्त होती रहे।

शिवनगर
नई दिल्ली-१८
शीतलाष्टमी, २०२९

गंगारत्न पांडेय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्नरी

(खजुराहो की पृष्ठभूमि पर आधारित)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी का आठवां वर्ष—
शरद ऋतु का प्रथम चरण—
पंचनद-प्रदेश की हरीतिमा-आवृत्त, उर्वरा भूमि—

दो युवा अश्वारोही द्रुत गति से अपने अश्व दौड़ाते हुए पूर्व से पश्चिम की ओर चले जा रहे थे। उनके स्वेद-सिक्त वस्त्र तथा धूलि-धूसरित अंग देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि वे लम्बी यात्रा करके आ रहे हैं। उनके अश्व अच्छी जाति के थे, और शस्त्रास्त्र सीधी पड़ रही धूप में चमक रहे थे। इन्हें देखकर यह अनुमान लगाना भी कठिन नहीं था कि वे दोनों सामान्य यात्री अथवा साधारण सैनिक नहीं हैं।

वे वास्तव में सामान्य यात्री अथवा साधारण सैनिक नहीं थे। वे दोनों उस चन्देल सेना के सर्वोच्च अधिकारी थे जो उस समय महमूद गजनवी के विरुद्ध उद्भाण्ड के शाही नरेश राजा आनन्दपाल की सहायता के लिए जा रही थी। सेना अपनी गति से पीछे आ रही थी, ये दोनों सेना-नायकों की गति से आगे-आगे चल रहे थे।

उनमें श्याम वर्ण के अश्व का आरोही कालंजर के दुर्गपाल सोमेश्वरदेव का पुत्र चन्द्रशेखर था। बीस-बाईस वर्ष का यह नवयुवक अपने रूप-रंग में सामान्य से कहीं अधिक सुन्दरता का स्वामी था जिसे यात्रा की क्लान्ति तथा मार्ग की धूलि भी नहीं छिपा पा रही थी। परन्तु उसके अधरों पर एक स्थायी-सा खिंचाव था, और उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में यौवन-सुलभ कुतूहल और आनन्द-बोध का अभाव था। ऐसा लगता था मानों उसने कभी, अपनी इच्छा के विरुद्ध, कोई अत्यधिक तिक्त घूंट पी लिया हो जिसका स्वाद जिह्वा पर रहते-रहते उसके स्वभाव का, और उसकी आकृति का, एक अविभाज्य अंग बन गया हो। चन्द्र-शेखर अजयगढ़-स्थित चन्देल सेना का प्रधान अधिकारी था।

श्वेत वर्ण के अश्व पर आरूढ़ उसका साथी लगभग उसकी ही आयु का युवक विजयसिंह था। आकार-प्रकार तथा रूप-रंग में चन्द्रशेखर से कुछ हीन होकर भी वह अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व, मानसिक दृष्टि से अधिक स्वस्थ, तथा जीवन से अधिक संतुष्ट प्रतीत होता था। उसके मस्तक तथा अधरों की रेखाओं में कहीं कठोरता का लेश भी नहीं था और उसकी प्रभापूर्ण आँखें अपनी सहज मुद्रा में भी हँसती हुई प्रतीत होती थीं। विजयसिंह महोत्सवनगर के सुरक्षा-वृत्त में दक्षिण-पश्चिम कोण पर स्थित एक गढ़ी का स्वामी था। इस गढ़ी का निर्माण उसके पिता सुमेरसिंह के निरीक्षण में राज्य की ओर से आरम्भ कराया गया था। परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्माण-कार्य पूरा होने से पूर्व ही सुमेरसिंह की मृत्यु हो गयी थी। उनकी मृत्यु अर्द्ध-निर्मित गढ़ी के प्रांगण में ही सर्प-दंश के परिणामस्वरूप हुई थी। अतएव उनकी सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप यह गढ़ी स्थायी रूप से उनके पुत्र विजयसिंह को दे दी गयी थी जिसने पिता की स्मृति में उसका नाम सुमेरगढ़ रख दिया था। इस प्रकार विजयसिंह को वयस्क होने से पूर्व ही सब कुछ बना-बनाया मिल गया था, उसे स्वयं कोई विशेष प्रयास अथवा संघर्ष नहीं करना पड़ा था। सम्भवतः इसी कारण उसके स्वभाव में संतोष के साथ-साथ आत्म-विश्वास की पर्याप्त मात्रा थी और उसकी प्रवृत्ति संघर्ष की अपेक्षा समझौते की ओर अधिक रहती थी। परन्तु वह स्वामिभक्त और वीर था, और संघर्ष सामने आ पड़ने पर पीछे रहना भी नहीं जानता था। यह कई अवसरों पर प्रमाणित हो चुका था और अपनी इसी साख के आधार पर उसने महोत्सवनगर की शासन-व्यवस्था में एक सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। इसी कारण उसे प्रस्तुत अभियान में चन्देल सेना के साथ विशेष अधिकारी के रूप में भेजा गया था।

दोनों युवक द्रुत गति से अपने अश्व दौड़ाते हुए पूर्व से पश्चिम की ओर चले जा रहे थे। मध्याह्न हो चुका था। निरभ्र नीलाकाश में आश्विन का सूर्य अपनी सम्पूर्ण प्रखरता के साथ तप रहा था। उस प्रखरता को सहन करने में असमर्थ पवन भी मानों किसी कन्दरा में जा छिपा था। मार्ग के दोनों ओर फैले हुए खेतों की हरियाली म्लान पड़ी थी, । वृक्ष किसी अज्ञात भय से सहमे हुए से खड़े थे, उन की पत्तियाँ निर्जीव-सी, निष्कम्प लटकीं थीं। सम्पूर्ण वातावरण में एक विचित्र प्रकार की नीरवता व्याप्त थी जिसमें अश्व-चाप गूंजती-सी, प्रतिध्वनित होती-सी प्रतीत हो रही थी। दोनों अश्व थक गये थे, उनके मस्तक तथा पार्श्व स्वेद से गीले होकर धूप में चमक रहे थे। दोनों अश्वारोही भी थके अवश्य होंगे।

चलते-चलते सहसा विजयसिंह ने अपने अश्व की गति पर अंकुश लगाया और पीछे की ओर देखते हुए कहा, "लगता है हम बहुत आगे निकल आये हैं।"

चन्द्रशेखर ने भी अपने अश्व की गति कुछ धीमी की और अपनी ग्रीवा पीछे की ओर घुमाते हुए कहा, "लगता तो ऐसा ही है। सेना बहुत पीछे छूट गयी है, कहीं धूल भी नहीं दिखायी पड़ रही है।"

क्षण-भर के मौन के पश्चात् विजयसिंह ने प्रस्ताव किया, "हम कहीं रुक न जाएँ?"

परन्तु चन्द्रशेखर को यह विचार नहीं रुचा। उसने कहा, "मुझे रुकने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मेरी सेना महोत्सवनगर नहीं लौट जाएगी, और उद्भाण्ड का मार्ग भी नहीं भूलेगी। मुख्य बात यह है कि हमारे लिए शीघ्राति-शीघ्र उद्भाण्ड पहुँचना नितान्त आवश्यक है। यदि कहीं रुक गये तो आज कदापि नहीं पहुँच सकेंगे, चलते रहें तो रात्रि तक पहुँच सकते हैं।"

विजयसिंह सम्भवतः अधिक थक गया था। उसने कहा, 'उद्भाण्ड पहुँचने के लिए मैं भी तुमसे कम उत्सुक नहीं हूँ। तथापि मेरा प्रस्ताव है कि हमें कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल कहीं रुककर सेना की प्रतीक्षा कर लेनी चाहिए। इससे हमारे अश्वों को भी थोड़ा विश्राम मिल जाएगा। उन्हें विश्राम की आवश्यकता है।"

चन्द्रशेखर ने बिना विशेष उत्साह के चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर मार्ग के दाहिनी ओर कुछ अन्तर पर स्थित वृक्षों के एक झुरमुट की ओर संकेत करते हुए कहा, "तो चलो, उधर छाया अच्छी है।"

दोनों अश्व निर्दिष्ट दिशा में मोड़ दिये गये और उनके आरोही फिर पूर्ववत् मौन हो गये। वृक्षों के निकट पहुँचकर वे अपने-अपने अश्व पर से उतर पड़े। अश्व वृक्षों से बाँध दिये गये और दोनों युवक एक झाड़ी के निकट जा खड़े हुए जहाँ छाया कुछ अधिक घनी थी। तब चन्द्रशेखर ने अपने मस्तक का स्वेद पोंछकर एक बार फिर चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हुए कहा, "हम उपयुक्त स्थान पर नहीं रुके हैं। यहाँ आस-पास कहीं जल का कोई चिह्न नहीं है, और मेरे कंठ में कांटे उग आये हैं।"

गत कई दिनों से निरन्तर साथ रहने के करण विजयसिंह अपने इस विचित्र साथी के कभी संतुष्ट न होने वाले स्वभाव और उसकी कथन-शैली का अभ्यस्त होने लगा था। अतएव उसने एक बार दृष्टि उठाकर चन्द्रशेखर की ओर देखा और फिर सान्त्वना-सी देते हुए कहा, "कुछ क्षण यहाँ खड़े होकर स्वेद सुखा लें, फिर आगे चलकर जल की खोज करेंगे। कंठ मेरा भी सूख रहा है।"

चन्द्रशेखर ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया, मानों बात उससे नहीं, हवा से अथवा वृक्षों से कही गयी हो। परन्तु उसका हाथ सहसा खड्ग पर जा पहुँचा और वह विद्युद्गति से पैंतरा बदलकर खड़ा हो गया। विस्मित, सशंकित विजयसिंह ने भी उसका अनुकरण किया और अपनी रक्षा के लिए तत्पर होकर कहा, "तुम्हें हो क्या गया है, चन्द्रशेखर? क्या विचार है?"

"विचार?" चन्द्रशेखर ने दुहराया, परन्तु इसके पश्चात् तुरन्त ही विजयसिंह का आशय समझकर उसने अट्टहास करते हुए फिर कहा, "चिन्ता की कोई बात नहीं है, मित्र। मेरे सारे विचार आदि से अन्त तक बहुत अच्छे हैं। तुम सावधान होकर इधर देखना, मैं झाड़ी के उस ओर जा रहा हूँ। इसके भीतर कोई है।"

संतोष की श्रव्य साँस लेकर विजयसिंह ने कहा, "कोई पशु होगा।"

"पशु नहीं, मनुष्य है। मैं मनुष्य की साँस पहचानता हूँ।" यह कहता हुआ चन्द्रशेखर शीघ्रतापूर्वक झाड़ी के पीछे की ओर को भागा, और क्षण भर पश्चात् उसका आदेशपूर्ण स्वर निस्तब्ध वातावरण में गूंज उठा, "जो भी हो चुपचाप बाहर निकल आए।"

परन्तु उसके इस आदेश का कोई तात्कालिक प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हुआ। झाड़ी में निःशब्द शान्ति रही और कोई उसमें से निकलकर बाहर नहीं आया। कुछ क्षण तक प्रतीक्षा करने के पश्चात्, चन्द्रशेखर ने फिर उच्च स्वर में कहा, "यह मेरी अन्तिम चेतावनी है। यदि तुम तुरन्त चुपचाप बाहर नहीं आते हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो मैं इस झाड़ी को, और इसके साथ तुम्हें भी, इस प्रकार काट डालूंगा।" यह कहते हुए उसने अपनी चेतावनी का सक्रिय प्रदर्शन करने के उद्देश्य से झाड़ी पर दो बार खड्ग-प्रहार किया।

मात्र मौखिक चेतावनी का परिणाम सम्भवतः इस बार भी वही होता जैसा पहले हुआ था। परन्तु क्रियात्मक प्रदर्शन से शब्दों को अपेक्षित बल मिला था जिसके परिणामस्वरूप वे इस बार अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए। शीघ्र ही दो काले, मैले, पतले हाथ झाड़ी से ऊपर उठे हुए दिखाई पड़े, और क्षण भर पश्चात् उनका स्वामी भी कांपता हुआ निकलकर बाहर आ गया। वह एक अत्यधिक सूक्ष्म आकार-प्रकार का दयनीय-सा मनुष्य था जो देखने में मनुष्य की अपेक्षा पशु अधिक प्रतीत होता था। उसके हाथ और पैर शरीर के अनुपात में अनावश्यक रूप से बड़े लग रहे थे, और उसका शरीर आयु अधिक न होने पर भी मध्य भाग से धनुषाकार झुका हुआ था। उसकी आंखें छोटी-छोटी, किन्तु असामान्य रूप से चमकीली और चंचल थीं, और उसका घुटनों से नीचे तक लटकता हुआ अंग-रखा वास्तव में इतना अधिक ढीला था कि उसमें उसके जैसे लगभग तीन शरीर सरलतापूर्वक समा सकते थे। उसके शिर के काले, रूखे, उलझे हुए केश ग्रीवा के नीचे तक बिखरे थे, और उसका सम्पूर्ण मुख केश-रूपी वृक्षों से भरे हुए एक ऐसे सघन वन के समान था जहाँ वनस्पति की अधिकता के कारण धरती दिखाई ही नहीं पड़ती है।

झाड़ी से बाहर निकलते ही इस मानव-पशु ने सम्भवतः अपनी भाषा में कुछ कहने का प्रयास किया जो निश्चय ही उसकी वर्तमान स्थिति की व्याख्या से अथवा दया की प्रार्थना से, संबंधित रहा होगा। परन्तु उच्चारित शब्दों का स्वरूप सम्पूर्ण मुख-मंडल पर अव्यवस्थित छाये हुए केश-पुंजों में उलझकर इतना विकृत हो गया कि उसके श्रोताओं को आकार की हास्यास्पद पुनरुक्ति के अतिरिक्त कुछ भी सुनाई नहीं पड़ा।

उसकी आकृति तथा चेष्टाओं को देखकर चन्द्रशेखर के लिए गम्भीर बने रहना असम्भव हो गया और वह बालकों की भांति हँसने लगा। परन्तु विजयसिंह ने, जो इस अन्तर में उसके निकट आकर खड़ा हो गया था, उसकी इस हँसी में योग नहीं दिया। उसके हाथ में अब भी नग्न खड्ग था जिसे प्रहार की मुद्रा में उठाते हुए उसने डपट कर पूछा, "तू कौन है और यहां छिपकर क्या कर रहा था?"

उत्तर में फिर मूल स्वर का आलाप आरम्भ हुआ जिसे अपने अज्ञ श्रोताओं को समझाने के उद्देश्य से उस विचित्र व्यक्ति ने, संगीतज्ञों की भांति, अपने दोनों हाथ अभिनय की अनेक प्रचलित-अप्रचलित मुद्राओं में नचा-नचाकर अन्त में दाहिने हाथ की तर्जनी से अपने सघन-रोमाच्छादित मुख की ओर संकेत किया।

इस उत्तर से पूर्णतया असंतुष्ट, और उससे भी अधिक रुष्ट होकर विजयसिंह ने कहा, "मैं भली प्रकार जानता हूँ कि तू गूँगा नहीं है। और यह भी भली प्रकार जानता हूँ कि तू सरलता से मेरे प्रश्नों के उत्तर नहीं देगा। पहले मुझे तेरे गूँगेपन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का उपचार करना होगा।" यह कहते हुए उसने अपने बाएं हाथ से उस मानव-पशु के केश पकड़ लिये। दाहिने हाथ का खड्ग अब भी ऊपर उठा हुआ था।

परन्तु चन्द्रशेखर ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "मनुष्य को पशु पर क्रोध नहीं करना चाहिए, मित्र। मैं तुम्हें इसके रक्त से अपना खड्ग अपवित्र नहीं करने दूंगा। यह यथार्थ में गूंगा है। इसे मुक्त कर दो।"

"परन्तु यह है कौन ? मैं केवल इतना जानना चाहता था," विजयसिंह ने उसके केश छोड़ते हुए कहा।

"यह सूचना तुम्हें इससे कभी प्राप्त नहीं हो सकेगी क्योंकि यह वास्तव में गूंगा है। परन्तु मैं जानता हूँ यह कौन है। मैं तुम्हारी जिज्ञासा का निवारण कर सकता हूँ, और करूंगा। तुम्हें केवल कुछ क्षण प्रतीक्षा करनी होगी। पहले अपने इस मित्र को विदा कर दूं।"

वह व्यक्ति निकट खड़ा हुआ आशान्वित दृष्टि से चन्द्रशेखर की ओर देख रहा था। चन्द्रशेखर ने उसके दोनों कंधे पकड़कर बलात् उसका मुख पश्चिम की ओर कर दिया और उसकी पीठ पर एक हलकी-सी धौल जमाकर कहा, "जाओ मित्र, अब हवा हो जाओ। पीछे हमारी बीस सहस्र सेना आ रही है, कहीं उसकी पकड़ में आगये तो तुम्हारी पत्नी जीवन भर तुम्हारी प्रतीक्षा ही करती रहेगी।"

अनुमति और अवसर पाते ही वह व्यक्ति वास्तव में हवा हो गया। इस प्रकार सिर पर पैर रखकर भागा कि खेत और मैदान, खाइयाँ और टीले, सब समान गति से पार करता हुआ शीघ्र ही दृष्टि से ओझल हो गया।

तब चन्द्रशेखर विजयसिंह की ओर घूमा और उसे एक विचित्र दृष्टि से अपनी ओर देखते हुए पाकर बोला, "अभी क्रोध शान्त नहीं हुआ है क्या ?"

प्रश्न का उत्तर प्रश्न से देते हुए विजयसिंह ने कहा, "तुम उसकी पत्नी को जानते हो ? क्या वह वास्तव में सुन्दरी है ?"

"मैं क्या जानूं, परन्तु ऐसे किन्नर की पत्नी कोई किन्नरी ही होगी, और यदि किन्नरी है तो उसे सुन्दरी भी होना चाहिए।"

"वह था कौन ?" विजयसिंह ने फिर पूछा।

चन्द्रशेखर ने कहा, "वह तुरुष्कों का गुप्तचर था और हमारी टोह लेने के लिए यहाँ छिपकर बैठा था। उसके यहाँ होने का अर्थ यह है कि महमूद भी अब बहुत दूर नहीं है।"

"वह तुरुष्कों का गुप्तचर था !" विजयसिंह ने विस्मय के स्वर में कहा, "और तुमने उसे चला जाने दिया ?"

"और क्या करता ? उसे गले लगाता ? भोज के लिए निमंत्रित करता ? महमूद के गुप्तचर इतने अप्राप्य नहीं हैं, मित्र। पीछे कई मिल चुके होंगे, आगे अनेक मिलेंगे। लौटते समय दो-चार को पकड़कर महोत्सवनगर लेते चलेंगे।"

परन्तु विजयसिंह ने विनोद की उपेक्षा करते हुए संदेह के स्वर में कहा, "फिर भी, उसे इस प्रकार छोड़ देना..."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"नीतिसंगत था," चन्द्रशेखर ने टोककर कहा। "हम उसकी हत्या कर सकते थे, परन्तु इससे हमारा कोई लाभ नहीं होता क्योंकि अपनी सेना के आगमन को गुप्त रखना हमारा उद्देश्य नहीं होना चाहिए। इस समय हमारा हित अतिशयोक्ति में है। महमूद को यह सूचना मिलनी चाहिए कि भारत की लक्ष-लक्ष सेना सभी दिशाओं से उसका मान-मर्दन करने के लिए उमड़ती चली आ रही है। तभी उसका मनोबल क्षीण होगा, तभी उसके इन वार्षिक अभियानों का अन्त होगा। इसी कारण मैंने उस को अपनी सेना की संख्या बढ़ा-चढ़ाकर बतायी है।"

विजयसिंह ने कहा, "फिर भी उसे इस प्रकार तुरन्त मुक्त नहीं कर देना चाहिए था। हम भी तो उससे तुरुष्क सेना के सम्बन्ध में कुछ सूचना प्राप्त कर सकते थे?"

"हम उससे कोई सूचना प्राप्त नहीं कर सकते थे," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "क्योंकि महमूद के गुप्तचरों को स्वयं महमूद अथवा उसकी सेना के विषय में पूर्णतया अनभिज्ञ रखा जाता है। इसके अतिरिक्त वह वास्तव में गूँगा था। हम केवल उसकी हत्या कर सकते थे, जिससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। अतएव अब उसकी बात छोड़ो, और तुम मेरे साथ चलो। हमें सबसे पहले जल की खोज करनी है।"

"परन्तु तुम यह किस आधार पर कह रहे हो कि वह वास्तव में गूँगा था?"

"महमूद के ऐसे गुप्तचर गूँगे ही होते हैं। यदि जन्म से नहीं होते हैं तो बना दिये जाते हैं।" यह कहता हुआ चन्द्रशेखर अपने अश्व की ओर बढ़ गया।

—२—

चन्द्रशेखर का अनुमान मिथ्या नहीं था। महमूद की सेना उस समय वहाँ से अधिक दूर नहीं थी। वह पुष्पपुर से पूर्व की ओर आने वाले मार्ग पर स्थित ओहन्द नामक नगर के निकट पड़ाव डाले पड़ी थी, और अपने सुसज्जित स्कंधावार में मंत्रियों तथा सेनानायकों के बीच बैठा हुआ गजनी का सुल्तान महमूद उद्विग्न स्वर में कह रहा था, "बड़ी अजीब बात है! क्या हिन्द का दरवाज़ा हमारे लिए कभी नहीं खुलेगा? क्या हमारी किस्मत में मायूसी ही लिखी है?"

महमूद की उद्विग्नता का कारण भारतीयों की वह विशाल सेना थी जो इस समय उद्भाण्ड के शाही नरेश आनन्दपाल के नेतृत्व में तुरुष्कों के ठीक सामने, एक क्षीणकाया पहाड़ी नदी के उस पार, उनका अवरोध करने के लिए उद्यत खड़ी थी। भारत पर महमूद का यह छठा आक्रमण था, परन्तु इतने सुदृढ़ और सबल प्रतिरोध का अनुभव उसे पहली ही बार हो रहा था। इससे पूर्व उसके आक्रमण छोटे-मोटे तथा सीमावर्ती क्षेत्रों में ही हुए थे जहाँ कोई उसका सामना करने वाला नहीं था। इस कारण प्रत्येक आक्रमण में उसे मार्ग खुला हुआ मिला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। वह जिधर चाहता था उधर आँधी की भाँति बढ़ता चला जाता था। ऊँचे-ऊँचे वृक्ष भी उसके समक्ष झुक जाते थे, पर्वत भी उसे मार्ग दे देते थे। परन्तु इस बार लक्षण अच्छे नहीं थे। उसके सामने इतनी बड़ी सेना खड़ी थी कि उस पर आक्रमण करना घातक दुस्साहस होता, और पीछे हटना पराजय होती। अतएव महमूद लगभग एक मास से उसी स्थान पर पड़ाव डाले पड़ा था, जो उसकी इच्छा तथा प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल था। इसी कारण वह उद्विग्न रहता था, और उसकी यह उद्विग्नता प्रत्येक सूर्योदय के साथ बढ़ती जाती थी।

अपने प्रश्न का कोई उत्तर न पाकर महमूद ने अपने सेनापतियों की ओर देखते हुए फिर कहा, "आप हज़रात खामोश क्यों हैं ? क्या हक़ को बुतपरस्ती और कुफ़्र के रूबरू पशेमां होना पड़ेगा ? क्या महमूद को शिकस्त का मुंह देखना होगा ?"

महमूद के मस्तिष्क में उस समय अनेक विचार उठ रहे थे, अनेक चित्र बन-बिगड़ रहे थे। उसने वास्तव में कभी पराजय का मुख नहीं देखा था। वह एक कुशल सेनानायक तथा महत्त्वाकांक्षी विजेता था और अपने पिता सुबुक्तगीन के जीवन-काल में भी कई महत्वपूर्ण अभियानों में भाग ले चुका था। अतएव पिता की मृत्यु के पश्चात् उनके मनोनीत उत्तराधिकारी, अपने भाई इस्माइल को परास्त कर गजनी का सिंहासन हस्तगत कर लेने में उसे तनिक भी कठिनाई नहीं हुई थी। इस प्रकार सत्ताइस वर्ष की आयु में बलपूर्वक सिंहासनारूढ़ होकर उसने शीघ्र ही हरात, बलख तथा बस्त में भी अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी और सामानी वंश के शासक अब्दुल मलिक को परास्त करके खुरासान पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। इन अभियानों के परिणामस्वरूप सिंहासन पर बैठने के पश्चात् एक वर्ष के भीतर उसने अपनी स्थिति ऐसी बना ली थी कि स्वयं खलीफा अल्-कादिर-बिल्लाह ने उसे उपर्युक्त सम्पूर्ण क्षेत्रका शासक स्वीकार करके खिलअत भेजी थी और 'यामिनुद्दौला' तथा 'अमीन-उल्मिल्लाह' की उपाधियों से सम्मानित किया था। इसी अवसर पर उसने भारत के विरुद्ध प्रति वर्ष एक अभियान करने की प्रतिज्ञा की थी। वस्तुत: भारत पर उसकी दृष्टि बहुत पहले से थी। अपने पिता के जीवन-काल में ही भारतीय देवालयों तथा शासकों की विपुल सम्पदा की अनेक कथाएँ सुन-सुनकर उसने भारत को अपनी सैनिक महत्वाकांक्षाओं का लक्ष्य बना लिया था। अतएव अवसर पाते ही उसने अभियान भी आरम्भ कर दिये थे और उनमें अभी तक आशातीत सफलता और लाभ प्राप्त करता रहा था। परन्तु इस बार उसके समक्ष एक पर्वत आ खड़ा हुआ था। आनन्दपाल ने न जाने कैसे और कहाँ से इतनी सेना एकत्र कर ली थी कि महमूद का अदम्य साहस भी काँप उठा था।

आनन्दपाल का ध्यान आते ही महमूद इस समय भी असहाय क्रोध के आवेश से काँप उठा और धरती पर दृष्टि गड़ाए, मौन बैठे हुए अपने अधिकारियों तथा सेनानायकों से फिर बोला, "हम आनन्दपाल को, और उसके वालिद को भी,

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बार-बार शिकस्त दे चुके हैं। मगर वह बेशर्म शिकस्त खाकर भी शिकस्त मानने से इन्कार करता है। उसने फिर हमारे सामने सिर उठाने की जुर्रत की है। क्या हमारे फ़त्ताह बाज़ुओं में उसे फिर कुचल देने की कुव्वत नहीं रह गयी है ?"

इस पर भी जब उसके श्रोताओं ने अपना मौन भंग नहीं किया तब महमूद उठकर खड़ा हो गया और कुछ क्षण तक उन सब को एक-एक करके ध्यानपूर्वक देखता रहा। उसकी दृष्टि बड़ी पैनी थी और जिस पर केन्द्रित हो जाती थी उसे स्पर्श-आहत लाजवन्ती की डार-सा संकुचित कर देती थी। परन्तु उनका मौन फिर भी नहीं टूट रहा था। इसका एक कारण था, जिसे महमूद सम्भवतः समझ ही नहीं सकता था। उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि महमूद उनसे क्या कहलाना चाहता है। अधिकांश निरंकुश अधिनायकों की भांति उनका सुल्तान भी विरोध सहन नहीं कर सकता था। विरोध तो विरोध, वह इस प्रकार की मंत्रणाओं में सामान्य मतभेद भी सहन नहीं कर सकता था, और अन्तिम सीमा तक किसी पर विश्वास नहीं करता था। वह स्वयं सबके भीतर झांककर देखने का प्रयास करता था, परन्तु अपने मस्तिष्क को सदा सघनतम आवरणों में छिपा कर रखता था। उसके विश्वस्ततम मंत्रियों अथवा अनुचरों, उसके भोग-विलास की संगिनी प्रियतमाओं तथा दासियों तक को आभास नहीं होने पाता था कि वह क्या चाहता है और क्या करेगा। इस कारण ऐसे अवसरों पर सभी मौन का आश्रय खोजते थे।

अन्त में महमूद ने ही फिर कहना आरम्भ किया, "आप हज़रात अब भी खामोश हैं। क्या तलवारों के साथ-साथ अमीर नस्र, जाज़िब और अबू अब्दुल्ला मुहम्मद की ज़ुबानों में भी ज़ुम्बिश नहीं रह गयी है? क्या अल्तुन्तश और असिग्त-गीन के दिमाग़ भी, उनके दिलों की तरह, बुतपरस्तों की फ़ौज देखकर हरकत करना भूल गये हैं? क्या ख्वाजा साहब की सियासत भी इतनी पस्त हो गयी है कि हमें रौशनी नहीं दे सकती?"

ख्वाजा अहमद-बिन्-हसन मैमन्दी महमूद का वज़ीरे-खास और शासन-तंत्र के संचालन में उसका दाहिना हाथ था। महमूद यदि संसार में किसी का आदर करता था तो अपने इस वज़ीर का, जिसके ज्ञान और अनुभव के समक्ष उसे अपनी सम्पूर्ण शक्ति छोटी लगने लगती थी। सम्भवतः इसी कारण वह अपने तथा मैमन्दी के बीच के अन्तर को कभी कम नहीं होने देता था। महमूद का मस्तिष्क मैमन्दी के लिए भी एक ऐसा अज्ञात प्रदेश था जिसके विषय में वह केवल अनुमान लगा सकता था परन्तु निश्चय के साथ कभी कुछ नहीं कह सकता था।

महमूद का अन्तिम प्रश्न सीधे मैमन्दी को सम्बोधित करके पूछा गया था, अतएव अन्य मंत्रियों तथा सेनानायकों की दृष्टि स्वभावतः उस ओर उठ गयी और मैमन्दी के लिए अब मौन रहना असम्भव हो गया। परन्तु वह बूढ़ा वज़ीर विद्वान तथा बुद्धिमान होने के साथ-साथ वाक्-चातुर्य्य का भी धनी था। उसने चिन्तन की मुद्रा में दाहिने हाथ की हथेली से अपनी घनी, श्वेत दाढ़ी सहलाते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ स्वर में कहना आरम्भ किया, "अमीर-उल्-मिल्लाह की बारीक निगाह से कुछ भी पोशीदा नहीं है। बंदा दर-अस्ल पशोपेश में है और तै नहीं कर पा रहा है कि मौजूदा हालात में जहाँपनाह को क्या मशवरा दे।"

"हज़रत मैमन्दी पशोपेश में!" महमूद ने कहा, "हमें यक़ीन नहीं हो रहा है।"

"मगर हक़ीकत यही है, वन्दापरवर," मैमन्दी ने नीचे देखते हुए उत्तर दिया। "सूरते-हाल को देखते हुए मेरे लिए किसी नतीजे पर पहुँचना निहायत मुश्किल साबित हो रहा है। बंदा दर-हक़ीकत पशोपेश में है, और उसकी वजह है राय आनन्दपाल। उसे अपनी तरफ़ मिलाये या रास्ते से हटाये बग़ैर हम हिन्द की वेपनाह दौलत तक नहीं पहुँच सकते हैं, और बुतपरस्त हिन्दियों तक हज़रत रसूल का पैग़ाम नहीं पहुँचा सकते हैं। मगर मैं यह नहीं तै कर पा रहा हूँ कि हमें कौन-सा रास्ता अख्तियार करना चाहिए—उसे मिलाने का या मिटाने का।"

"क्या इस वक्त हमारे सामने वाक़ई ये दोनों रास्ते हैं?" अन्तिम शब्द पर बल देते हुए महमूद ने प्रश्न किया।

"दोनों हैं, और सिर्फ़ यही दो हैं, जहाँपनाह।"

"और ग़ज़नी का? वह नहीं है क्या?"

"है, जहाँपनाह, मगर ग़ज़नी का रास्ता सिर्फ़ सुर्खरू होकर लौटने के लिए है। वर्ना हमारे सामने तीसरा रास्ता अगर कोई होगा तो कुफ़्र से लड़ते हुए बहिश्त का होगा।"

"ख्वाजा साहब वजा फ़रमा रहे हैं, बंदापरवर," सेनापति अल्तुन्तश ने कहा, "हम बुतपरस्तों को पुश्त दिखाकर ग़ज़नी नहीं लौटेंगे।"

अन्य सभी व्यक्तियों ने भी एक स्वर होकर समर्थन किया, मानों वे इसी अवसर की प्रतीक्षा में अब तक मौन थे।

इस समर्थन से महमूद की उद्विग्नता में स्पष्ट अन्तर पड़ा, जिसके प्रमाण-स्वरूप वह फिर अपने आसन पर बैठ गया और मंत्रणा के स्वर में बोला, "मगर मौजूदा हालात में उसे मिटाना क्योंकर मुमकिन होगा?"

"मुश्किल हो सकता है, सुल्ताने-आलम," मैमन्दी ने उत्तर दिया, "मगर नामुमकिन कतई नहीं है। इसकी तसदीक़ ग़रीब परवर के जांबाज़ सिपहसालार करेंगे। ग़ज़नी के इक़बाल ने हमेशा इन शाहियों को शिकस्त दी है। आनन्दपाल का वालिद राय जैपाल शिकस्त खाते-खाते जब जहान में मुंह दिखाने लायक नहीं रह गया तो उसने खुदकुशी कर ली। इसी आनन्दपाल की एक औलाद नवासाशाह—खुदा उस पर करम करे—आज भी सुल्तान का क़ैदी है, और खुद आनन्दपाल मुल्तान की जंग में सुल्तान के हाथों शिकस्त का मुंह देख चुका है। आज भी उसकी फ़ौज चाहे जितनी हो मगर फ़तह हमारी ही होगी। इक़बाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लड़ता है, जहाँपनाह, और अल्लाह-ताला का करम फ़तह अता करता है।"

अन्य अधिनायकों की भाँति महमूद के स्वभाव में भी अहंकार की मात्रा सामान्य से बहुत अधिक थी, जिसकी उपयुक्त कथन से पर्याप्त तुष्टि हुई। वह कुछ क्षण मौन बैठा-बैठा कुछ सोचता रहा, फिर बोला, "आप बजा फ़रमाते हैं, ख़्वाजा साहब। इक़बाल लड़ता है और अल्लाह-ताला का करम फ़तह अता करता है। लमग़ान की जंग में हमारे पास हिन्दियों की निस्फ़फ़ौज भी नहीं थी, मगर अल्लाह-ताला के करम से फ़तह हमारी ही हुई थी। इन्शा-अल्लाह इस बार भी वैसा ही होगा।"

"आमीन!" कई कंठों से एक साथ स्वर निकला।

इस स्वर को शून्य में विलीन होने का अवकाश देकर महमूद ने फिर कहना आरम्भ किया, "आप हज़रात का हौसला देखकर हमें बेइन्तहा मसर्रत हुई है। हमें कामिल यक़ीन हो गया है कि फ़तह हमारी ही होगी। जिस फ़ौज के सालारों का हौसला इस क़दर बुलन्द हो उसकी राह कोहो-समंदर भी नहीं रोक सकते।" इतना कहकर वह रुक गया और कुछ क्षण तक ध्यानपूर्वक अपने सभासदों के मुख देखता रहा, जिसके पश्चात् अपनी दृष्टि ख़्वाजा मैमन्दी पर स्थिर करते हुए उसने फिर प्रश्न किया, "तो आप हज़रात की राय है कि हमें फ़ौरन एक ज़बरदस्त हमला कर देना चाहिए?"

सभी मंत्रियों तथा सेनानायकों ने शब्दों द्वारा अथवा सिर हिलाकर अपनी सहमति व्यक्त की, केवल ख़्वाजा मैमन्दी ने न तो कुछ कहा, न सहमति अथवा असहमति प्रकट करते हुए अपना सिर ही हिलाया। इसे लक्षित कर महमूद ने कहा, "ख़्वाजा साहब ख़ामोश हैं, और उनकी ख़ामोशी कभी बेमानी नहीं हो सकती। क्या इसका मतलब हम यह समझें कि हज़रत फ़ौरी हमले के हक़ में नहीं हैं?"

मैमन्दी ने बिना सिर ऊपर उठाये कहा, "सुल्ताने-आलम का क़यास सही है।"

"यानी आप शिकस्ता ग़ज़नी लौट चलने के हक़ में हैं?" महमूद ने पूर्णतया निर्विकार स्वर में प्रश्न किया।

"क़तई नहीं," मैमन्दी ने उत्तर दिया।" ऐसा करने से ग़ज़नी का परचम ज़लील होगा, लिहाज़ा ग़ुलाम ऐसा मशवरा कभी नहीं देगा। मगर जो चीज़ बग़ैर नुकसान उठाये हासिल की जा सकती है उसके लिए क़ुरबानियाँ करने और अपने जांबाज़ों का ख़ून बहाने के हक़ में मैं नहीं हूँ। ग़ुलाम की अदना राय यह है कि पहले हमें राय आनन्दपाल को मिलाने की कोशिश करनी चाहिए।"

महमूद ने कहा, "राय आनन्दपाल के लिए हमारे दिल में भी इज़्ज़त है। हमारी उसकी दुश्मनी बहुत पुरानी है, फिर भी जब हम गुज़िश्ता साल ईलक ख़ान के तुर्की लुटेरों के साथ उलझे हुए थे तो राय आनन्दपाल ने मदद की दोस्ताना पेशकश की थी। याद है उस वक्त अपने पैग़ाम में उसने क्या लिखा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था ? मुझे बखूबी याद है। उसने लिखा था—हम यह बर्दाश्त नहीं कर सकते कि जिससे हम शिकस्त खा चुके हैं उसे कोई ग़ैर शिकस्त दे। राय आनन्दपाल वाक़ई एक दिलेर और शरीफ़दिल इन्सान है। अगर उसे मिटाये बग़ैर अपना मक़सद हासिल हो सके तो दिली खुशी होगी। मगर नामुमकिन को मुमकिन बनाने की कोशिश क्योंकर कारगर होगी ? राय आनन्दपाल कभी हमारा दोस्त नहीं बनेगा। वह इन्तक़ाम का भूखा होगा। वह कैसे भूलेगा कि उसके वालिद ने बार-बार हमसे शिकस्त खाकर पशेमानी में अपनी जान दी ? वह कैसे भूलेगा कि उसका एक बेटा आज भी हमारी क़ैद में है ? नहीं, ख़्वाजा साहब, आपकी सियासत के बावजूद उसकी दोस्ती हासिल करना मुमकिनात की हद में नहीं है।"

"दानिशमंदी से नामुमकिन को भी मुमकिन बनाया जा सकता है, बंदापरवर," ख़्वाजा मैमन्दी ने कहा।

"मगर उसकी कोई सूरत भी तो होनी चाहिए ?"

"सूरत है, आलमपनाह। निहायत आसान सूरत है।"

'क्या ? उसके लिए हमें क्या करना होगा ?"

"इन्तज़ार, बंदापरवर। हमें महज़ इन्तज़ार करना होगा।"

"क़यामत का ?" महमूद ने झुँझलाकर कहा।

"जी नहीं, वक्त का," मैमन्दी ने अविचलित भाव से उत्तर दिया। "हमें सिर्फ़ वक़्त का इन्तज़ार करना होगा, सुल्ताने-आलम माक़ूल वक्त आते ही हमारी मुश्किल ख़ुद-बखुद आसान हो जाएगी।"

"यानी हम फ़ौरन हमला न करें ?" महमूह ने थोड़ा उत्तेजित होकर कहा। "यानी हम हाथ पर हाथ रखकर सिर्फ़ माक़ूल वक्त का इन्तज़ार करते रहें और दुश्मन को अपनी ताक़त बढ़ाने का मौक़ा दें ? यही न ? क्या हम एक बार यही ग़लती नहीं कर चुके हैं ? क्या हमारी मौजूदा मुश्किल उसका नतीजा नहीं है ? उस वक़्त आनन्दपाल अकेला था, उसकी ताक़त कम थी, अगर हम हमला कर देते तो आसानी से उसे शिकस्त देकर आगे बढ़ सकते थे और इस वक्त ग़ालिबन दोआब में होते। मगर हम वक़्त का इन्तजार करते रहे, और उधर दुश्मन वक्त का फ़ायदा उठाता रहा। वह बराबर अपनी ताक़त बढ़ाता रहा। कहाँ-कहाँ से और कितनी फ़ौजें आज उसकी मदद के लिए आ खड़ी हुई हैं, यह आप बख़ूबी जानते हैं। और अब आप फिर हमें इन्तज़ार करने का मशवरा दे रहे हैं ?"

महमूद के शेष सभासद तथा सैनिक अधिकारी यह नहीं समझ पा रहे थे कि वह क्या चाहता है, और सुल्तान की इच्छा के प्रतिकुल कुछ कहने का उनमें साहस नहीं था। अतएव वे इस मंत्रणा में कोई सक्रिय भाग नहीं ले रहे थे, केवल मौन श्रोता बने बैठे थे। परन्तु मैमन्दी की स्थिति भिन्न थी। वह एक स्वतंत्र विचारों वाला विद्वान व्यक्ति था जिसे पद का अधिक मोह नहीं था। सम्भवतः इसी कारण महमूद हृदय से उसका आदर करता था और साधारणतया उसके विरोध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को भी सहन कर लेता था। मैमन्दी अपनी इस विशिष्ट स्थिति को भली प्रकार जानता था। अतएव उसने निर्भीकतापूर्वक उत्तर देते हुए कहा, "सुल्ताने-आलम को नाचीज़ का मशवरा पसंद नहीं आया यह मेरी और उससे भी ज्यादा ग़जनी की बदक़िस्मती है। मगर इससे मेरे नज़रिये में क़तई फ़र्क नहीं आएगा। सियासत में अक्सर ऐसे मौक़े भी आते हैं, जहाँपनाह, जब इन्सान को अपने साथ ज़बरदस्ती करके भी सब्र करना पड़ता है। जो ऐसा नहीं करता वह नुक़सान उठाता है।"

"जंग की ज़ुबान में दुश्मन को सामने देखकर भी सब्र करने, यानी हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने का नाम बुज़दिली होता है, ख्वाजा साहब।" महमूद के स्वर में व्यंग की झंकार उभरकर ऊपर आ गयी थी।

"मगर मेरा मशवरा बुज़दिली का नहीं, दानिशमंदी का है जहाँपनाह," मैमन्दी ने उत्तर दिया। "जंग का एक उसूल यह भी है कि दुश्मन को हर दूसरे तरीक़े से कमज़ोर कर देने के बाद ही हमला करना चाहिए।"

"मगर यहाँ तो दुश्मन दिन-ब-दिन ज़्यादा ताकतवर होता जा रहाहै, ख्वाजा साहब," महमूद ने तीखे स्वर में कहा।

परन्तु मैमन्दी के स्वर अथवा उसकी मुद्रा में तनिक भी अन्तर नहीं आया। उसने कहा, "जहाँपनाह बजा फ़रमा रहे हैं। दुश्मन दिन-ब-दिन ज्यादा ताक़तवर होता जा रहा है। मगर मुझे कामिल यक़ीन है कि यही बढ़ती हुई ताक़त बहुत जल्द उसकी कमज़ोरी और शिकस्त का बाइस बनेगी। इसी बुनियाद पर ग़ुलाम सुल्ताने-आलम को सब्र करने का मशवरा दे रहा है। अगर हम इस वक़्त हमला करते हैं तो दुश्मन बेशक ज़्यादा ताक़तवर साबित होगा। मगर वह वक़्त भी बहुत दूर नहीं है जब उसकी ताक़त में ख़ुद-बख़ुद दरारें पड़ने लगेंगी और हमारे लिए अपना मक़सद हासिल करना आसान हो जाएगा।"

"आपका यह फ़लसफ़ा मेरी समझ में जरा भी नहीं आ रहा है, ख्वाजा साहब," महमूद ने झुँझलाकर कहा।

"तो ग़ुलाम को और समझाकर कहने का मौक़ा अता किया जाए, बंदा-परवर," झुँझलाहट के उत्तर में अपने स्वर को और भी अधिक नम्र बनाते हुए मैमन्दी ने कहा। "मुमकिन है उसके बाद सुल्तान को सब्र का मशवरा इतना ग़ैरमाक़ूल न मालूम पड़े।"

"आपको कोशिश करने का मौका दिया जाता है।" थके हुए-से स्वर में यह कहकर महमूद पीछे की ओर झुककर पूर्ण विश्राम की मुद्रा में बैठ गया।

परन्तु ख्वाजा मैमन्दी की व्याख्या आरम्भ होने से पूर्व ही सुल्तान के एक अनुचर ने उस मंत्रणा-कक्ष में प्रवेश किया। सभी की दृष्टि स्वभावतः उसकी ओर उठ गयी, केवल मैमन्दी पूर्ववत् सिर झुकाये हुए बैठा रहा। अनुचर ने सुल्तान के निकट जाकर बहुत धीरे से कुछ कहा जिसे सुनकर महमूद के मस्तक की रेखाएँ और गहरी हो गयीं। इस प्रकार अपना कार्य पूरा करके अनुचर बाहर चला गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तब मैमन्दी ने फिर कहना आरम्भ किया, "जहाँपनाह ने सही फ़रमाया है कि गुज़िश्ता हफ़्तों में राय आनन्दपाल की ताक़त बहुत बढ़ गयी है। वैसे उसकी अपनी ताक़त भी कम नहीं थी, दर-अस्ल इसी बिना पर हमने शुरू में उस पर हमला नहीं किया था। इस वक़्फ़े में धिल्लीका, अजमेरु और कान्यकुब्ज से भी फ़ौजें आ गयी हैं और इस तरह उसकी ताक़त में इज़ाफ़ा हुआ है।"

"अभी और होगा, ख़्वाजा साहब, उसकी ताक़त में अभी और इज़ाफ़ा होगा। कालंजर की फ़ौज भी नज़दीक आगयी है, और उसकी तादाद बीस हज़ार है।"

'मुझे इल्म है, जहांपनाह," मैमन्दी ने उत्तर दिया," कालंजर की फ़ौज ग़ालिबन कल शाम तक यहाँ आ जाएगी। मगर चश्मदीद गवाहों के मुताबिक़ उसकी तादाद बीस हज़ार से बहुत कम है। इसके अलावा मालवा से भी एक फ़ौज रवाना हो चुकी है, हालाँकि उसके यहाँ तक आने में अभी वक़्त लगेगा।"

महमूद का स्वर फिर तीखा हो गया। उसने कहा, "और इस सबके बाव-जूद हज़रत हमें सब्र और इन्तज़ार का मशवरा दे रहे हैं और यह साबित करना चाहते हैं कि दुश्मन को अपनी ताक़त में ज्यादा से ज्यादा इज़ाफ़ा करने का मौक़ा देना दानिशमंदी है!"

"मौजूदा हालत में दानिशमंदी का रास्ता यही है, जहाँपनाह," मैमन्दी ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया। "ग़ुलाम पहले ही अर्ज़ कर चुका है कि ताक़त का यह इज़ाफ़ा महज़ ज़ाहिरा है और अपनी इन्तहा तक पहुँचते-पहुँचते कमज़ोरी का बाइस बन जाएगा। आनन्दपाल की फ़ौजों में आज भी वैसा हौसला नहीं है जैसा अपने जांबाज़ों में है। उसकी वजह है। हिन्द के राय तअस्सुब के शिकार हैं। वे एक-दूसरे को शक की निगाह से देखते हैं और अपने पड़ोसी की बढ़ती हुई ताक़त को बरदाश्त नहीं कर सकते। उनके मुल्क में जांबाज़ी की कमी नहीं है, मगर वह हमेशा आपसी झगड़ों में सर्फ़ होती रहती है। यही वजह है कि हिन्द में दिलेर तो बहुत होते हैं मगर फ़त्ताह एक भी नहीं बन पाता। उन पर हमला हो तो वे जान पर खेल जाते हैं, मगर ख़ुद हमला करके फ़तह हासिल करने का हौसला उनमें नहीं होता। इसी वजह से मैं फ़ौरी हमले के ख़िलाफ़ हूँ। अगर हमने हमला करने की ग़लती की तो आनन्दपाल की ताक़त पुख़्ता हो जाएगी, अगर हमने सब्र से काम लिया तो उसमें दरारें नज़र आने लगेंगी। मुझे यक़ीनी तौर पर इत्तला है कि दरारें पड़नी शुरू हो चुकी हैं क्योंकि मुख़्तलिफ़ रायों के तअस्सुबात उनकी फ़ौजों में भी काम कर रहे हैं। लिहाज़ा मेरा मशवरा यही है कि हमें सब्र के साथ इन दरारों को बढ़ने देना चाहिए। मुझे कामिल यक़ीन है कि हमें अब ज्यादा दिन इन्तज़ार नहीं करना पड़ेगा।"

महमूद बड़े ध्यान से इस व्याख्या को सुन रहा था। मैमन्दी के रुकते ही उसने कहा, "और इस दरम्यान अगर ख़ुद आनन्दपाल ने हमला कर दिया तो?"

मैमन्दी ने उत्तर दिया, "तो हम लड़ेंगे और उसे शिकस्त देंगे। मगर उसकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जानिब से हमले का अन्देशा बहुत कम है क्योंकि हिन्दी फ़ौज में कोई एक आला-अमीर या रहनुमा नहीं है। यूं राय आनन्दपाल एक बहुत अच्छा इन्सान है, शायद बहुत अच्छा हाकिम भी है। मगर एक अच्छे सिपहसालार की ख़ूबियाँ उसमें नहीं हैं। वह मुर्दों में जान नहीं फूंक सकता, अपनी शख़्सियत से ग़ैर-रियाया पर हावी नहीं हो सकता। अभी तक हम पर हमला न होने की ख़ास वजह यही है। ग़ैर मुमालिक की फ़ौजें आ तो गयी हैं, मगर उसके इशारे पर मर-मिटने के लिए तैयार नहीं हैं। वे ख़ुदमुख़्तारी का दावा करती हैं और सिर्फ़ अपने सिपहसालारों का हुक्म मानती हैं। इसी वजह से आनन्दपाल ने अपनी फ़ौजों को बचाव के अन्दाज़ में तैनात किया है। इस तैनाती से ही ज़ाहिर है कि उसका इरादा हमला करने का नहीं है। और अगर कभी किसी वजह से उसके इरादे में तब्दीली होती है तो भी जहाँपनाह ने अपने बचाव का इतना चुस्त और काफ़ी इन्तज़ाम कर रखा है कि उसे अपनी हिमाक़त बहुत मँहगी पड़ेगी।"

मैमन्दी के मौन हो जाने के पश्चात् कुछ समय तक उस मंत्रणा-कक्ष में पूर्ण शान्ति रही। सभी उत्सुकतापूर्वक सुल्तान के बोलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु महमूद ने उनकी उत्सुकता का निवारण करने में शीघ्रता नहीं प्रदर्शित की। वह कुछ काल तक गम्भीर विचार की मुद्रा में मौन बैठा रहा। तत्पश्चात् उसने एक बार फिर एक-एक करके अपने सब सभासदों की मुख-मुद्राओं का निरीक्षण किया अन्त में उसने कहा, "अब आप हज़रात तशरीफ़ ले जा सकते हैं। हम ख़्वाजा साहब की दलीलों पर ग़ौर करेंगे, मगर कल तूफ़ानी हमले का इन्तज़ाम मुकम्मिल रहना चाहिए।"

जब सब लोग कक्ष से बाहर चले गये तो महमूद भी उठकर खड़ा हो गया और टहलने लगा। टहलते-टहलते अचानक उसे कुछ ध्यान आया और उसने ताली बजायी जिसे सुनते ही एक दास ने कक्ष में प्रवेश किया। महमूद ने केवल एक क्षण रुककर बिना उसकी ओर देखे कहा, 'साक़ी!' और फिर पूर्ववत् टहलना आरम्भ कर दिया।

दास साक़ी को बुलाने के लिए शिविर के मध्य भाग की ओर चला गया।

—३—

गजनी का सुल्तान महमूद यदि एक ओर अनिश्चय और असमंजस में फँसा हुआ था तो दूसरी ओर उसके प्रतिद्वंद्वी उद्भाण्ड-नरेश आनन्दपाल की स्थिति भी अधिक भिन्न नहीं थी। अन्तर केवल उद्देश्यों का, और किसी सीमा तक व्यक्तित्व तथा साधनों का था।

आनन्दपाल को गजनी की शत्रुता सिंहासन के साथ उत्तराधिकार-रूप में प्राप्त हुई थी। भारत-भूमि के उत्तर-पश्चिमी द्वार पर स्थित शाही राज्य को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुत पहले तुरुष्क आक्रमणों की भावी विपत्ति का आभास हो गया था और उसने आरम्भ से ही सदा के लिए उसे समाप्त कर देने का प्रयास किया था। आनन्द पाल के पिता महराज जयपाल ने इसी उद्देश्य से गजनी के विरुद्ध दो बार अभियान किये थे। परन्तु कुछ सुबुक्तगीन की अधिक अच्छी रण-नीति के कारण, तथा कुछ अपने और देश के दुर्भाग्य से, उन्हें दोनों बार पराजय का मुख देखना पड़ा था। और लमगान के युद्ध के पश्चात स्वयं उनके राज्य का उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र तुरुष्कों के अधीन हो गया था। पुष्पपुर के अपने अन्तिम युद्ध में जयपाल ने अपना सब-कुछ दाँव पर लगा दिया था। परन्तु दुर्भाग्य ने उनका साथ नहीं छोड़ा था, और इस बार उनकी पराजय पहले से भी अधिक अपमानजनक हुई थी। वे अपने कई पुत्र-पौत्रों सहित बन्दी बना लिए गये गये थे और महमूद ने पुष्पपुर से और आगे बढ़कर ओन्हद तक के सम्पूर्ण क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया था। इस अपमान को सहन करने में असमर्थ जयपाल ने राज्य के साथ-साथ प्रतिशोध का कर्तव्य भी अपने पुत्र आनन्दपाल को सौंपकर आत्मदाह द्वारा शरीर-त्याग कर दिया था।

सिंहासनारूढ़ होकर आनन्दपाल ने भी यथासामर्थ्य पिता की नीतियों का ही अनुसरण किया था। अपने राज्य के विजित क्षेत्र को महमूद से छीनकर गजनी तक पहुँचने के लिए पर्याप्त शक्ति उसके पास नहीं थी, परन्तु गजनवी प्रभाव के विस्तार का वह दृढ़तापूर्वक विरोध करता रहता था। इसी नीति का अनुसरण करते हुए जब वह गजनवी आक्रमण के विरुद्ध मुल्तान के दाऊद लोदी की सहायता करने गया था तब महमूद के साथ उसका पहला प्रत्यक्ष संघर्ष हुआ था जिसमें उसे भी पिता की भांति पराजय का मुख देखना पड़ा था। परन्तु इस पराजय ने उसके प्रतिशोध की भावना को और अधिक दृढ़ बना दिया था। सौभाग्य से इस बार उसे अवसर भी मिल गया था।

इस बार महमूद ने, प्रत्यक्ष रूप से आनन्दपाल को लोदी की सहायता करने के अपराध का दंड देने के लिए, परन्तु वस्तुतः भारत का द्वार खोलने के उद्देश्य से, सीधे शाही राज्य पर आक्रमण किया था। परन्तु आनन्दपाल को इस आक्रमण की पूर्व सूचना मिल गई थी और उसने कई अन्य भारतीय शासकों के साथ संपर्क स्थापित कर लिया था। कुछ वर्ष पूर्व खजुराहो के चंदेल शासक धंगदेव की प्रेरणा से तुरुष्क आक्रमणों के विरुद्ध एक भारतीय संघ-सेना की योजना कार्यान्वित की गयी थी जिसके अधीन एक विशाल संयुक्त सेना लमगान के युद्ध में महाराज जयपाल की सहायता के लिए भेजी गयी थी। परन्तु लमगान की पराजय के पश्चात् यह योजना छिन्न-भिन्न हो गयी थी और भारतीय शासक फिर पारस्परिक संघर्षों में उलझ गये थे। इसी कारण जब आमीर के विजयराय पर महमूद का आक्रमण हुआ तब कोई भारतीय शासक उसकी सहायता के लिए नहीं खड़ा हुआ था। इसी प्रकार के एक अन्य अवसर पर मुल्तान के लोदियों की सहायता केवल उनके पड़ोसी आनन्दपाल ने की थी। परन्तु गत कुछ काल से हो रहे महमूद के वार्षिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आक्रमणों ने भारतीय शासकों को झकझोर दिया था और वे अनुभव करने लग गये थे कि उनकी अपनी सत्ता तथा स्वतंत्रता की रक्षा के लिए महमूद को सिन्धु-नदी के उस पार ही रखना आवश्यक है। अतएव इस बार जब आनन्दपाल ने सहायता माँगी तो उनमें से कई ने अपने आचरण द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि भारतीयों की राष्ट्रीय भावना असंगठित अवश्य थी परन्तु पूर्णतया लुप्त नहीं हुई थी। महमूद का अभियान आरम्भ होने के पहले से ही सहायता उद्भाण्ड पहुँचनी आरम्भ हो गयी थी। कालंजर गोपाद्रि उज्जयिनी, श्रीपथ, कान्यकुब्ज, पिल्लिका तथा अजयमेरु के शासकों ने उदारतापूर्ण सहायता का आश्वासन दिया था और शीघ्र ही कई छोटी-बड़ी सेनाएँ उद्भाण्ड आ पहुँची थीं। राष्ट्रीयता की भावना सम्पूर्ण उत्तराखंड में हिलोरें लेने लगी थी और सहस्र-सहस्र भारतीय वीर उत्साहपूर्वक देश की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो रहे थे। इसी भावना से प्रभावित होकर पार्वत्य-क्षेत्र के चिर-विग्रहशील गक्खर वीर भी बड़ी संख्या में आनन्दपाल के पीछे आ खड़े हुए थे।

इस आशातीत शक्ति-संग्रह से प्रोत्साहित होकर आनन्दपाल ने ससैन्य ओहन्द के निकट जाकर एक छोटी-सी पहाड़ी नदी के किनारे अपना शिविर स्थापित कर लिया था। सिन्धु-नद के पश्चिमी तट पर स्थित ओहन्द नगर उस समय महमूद के अधिकार में था तथा उसके वर्तमान अभियान का केन्द्र था। उसका अपना शिविर सिन्धु के पूर्वी तट पर था। उसकी तथा आनन्दपाल की सेनाओं के बीच केवल सिन्धु की सहायक वह छोटी-सी, पहाड़ी नदी थी जिसके पूर्वी तट पर भारतीयों ने अपनी व्यूह-रचना की थी। यह नदी जितनी क्षिप्रा थी उतनी ही क्षीणा भी थी। कुछ स्थलों पर तो उसकी चौड़ाई इतनी कम थी कि अश्वारोही सरलतापूर्वक अपने अश्व कुदा कर उसे पार कर सकते थे। ऐसे स्थलों पर दोनों ओर से सुरक्षा के विशेष प्रबंध किये गये थे। संक्षेप में, दोनों सेनाओं के बीच का अन्तर इतना कम था कि अग्रिम पंक्तियों में नियुक्त दोनों पक्षों के सैनिक सरलतापूर्वक, किन्तु अपनी-अपनी भाषा में, परस्पर सामरिक वार्तालाप कर लेते थे तथा नदी के आर-पार एक दूसरे पर वाग्बाणों की वर्षा करते रहते थे।

महमूद के लिए यह स्थिति सर्वथा नवीन थी। वह आक्रमण में विश्वास करता था। उसकी मुख्यतः अश्वारोही सेना का संगठन ही आक्रमण के लिए किया गया था। परन्तु इस बार अपने सामने एक अत्यन्त विशाल शत्रु-सेना देखकर जीवन में पहली बार उसका साहस डगमगा गया था। उसे गत वर्ष हुए आभीर के युद्ध का स्मरण हो आया था। आभीर के शासक विजयराय की सेना इसकी दशांश भी नहीं थी, परन्तु वह इतनी वीरता से लड़ी थी कि महमूद पीछे हटने की योजनाएँ बनाने लगा था। वह इस बार फिर वैसी ही स्थिति नहीं उत्पन्न होने देना चाहता था, और इसी कारण आक्रमण करने में संकोच कर रहा था। वस्तुतः विरोधी सेना की संख्या देखकर उसे स्वयं अपने ऊपर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आक्रमण होने का भय लग रहा था। अतएव उसने अपने शिविर के चारों ओर गहरी खाइयाँ खुदवाकर उनमें अपने धनुर्धरों को नियुक्त कर दिया था। इसके अतिरिक्त आवश्यकता के समय काम आने के लिए नौकाओं का एक बेड़ा भी उसके पीछे खड़ा था जिसकी सहायता से वह अपनी सेना को लेकर सिन्धु के उस पार लौट जा सकता था।

दूसरी ओर आनन्दपाल आक्रमण करने के लिए अत्यधिक उत्सुक था। जिस अवसर की उसे प्रतीक्षा थी, जिसके लिए वह भगवान् से प्रार्थना किया करता था, वह सम्मुख उपस्थित था, और आनन्दपाल उसे खोना नहीं चाहता था। परन्तु उसके सामने अपनी कठिनाइयाँ थीं जिन पर वह विजय नहीं पा रहा था। इस समय उसके पास महमूद को कुचलने के लिए पर्याप्त से भी अधिक सेना थी, परन्तु वह भीतर से इतनी विभाजित थी कि आनन्दपाल को उसे एक कुशल आक्रामक दल के रूप में संगठित करना असम्भव प्रतीत हो रहा था। अन्य राज्यों से उसकी सहायता के लिए जो सेनाएँ आयीं थीं उन पर उसका पर्याप्त नियंत्रण नहीं था। कान्यकुब्ज की सेना ने तो स्पष्ट कह दिया था कि वह केवल अपने अधिकारियों की आज्ञाओं का पालन करेगी। आनन्दपाल आक्रमण की योजनाएँ बनाता था परन्तु वे कार्यान्वित नहीं हो पाती थीं, क्योंकि प्रत्येक सेनानायक प्रत्येक योजना को अपनी दृष्टि से देखता था और प्रत्येक उत्तरदायित्व से कतराता था। इसके परिणामस्वरूप पारस्परिक द्वेष और संदेह उभरकर ऊपर आने लगे थे, जिनकी वृद्धि को रोकने के उद्देश्य से आनन्दपाल ने विभिन्न सेनाओं के स्वतंत्र क्षेत्र बनाकर उन्हें अलग-अलग कर दिया था। इस प्रकार भारतीय पक्ष में एक सुसंगठित सेना नहीं रह गयी थी। वहाँ व्यावहारिक रूप में कई छोटी-छोटी सेनाएं थीं। प्रत्येक की विलग सत्ता थी, प्रत्येक का अपना स्वतंत्र क्षेत्र था और प्रत्येक की अपनी योजनाएँ होती थीं जिसमें स्वभावतः किसी प्रकार का समन्वय नहीं हो पाता था।

उपर्युक्त परिस्थितियों से विवश होकर आनन्दपाल आक्रमण नहीं कर पा रहा था। परन्तु प्रत्यावर्तन का प्रश्न उसके साथ भी नहीं था। अतएव वह भी, महमूद की भांति, अनुकूल परिस्थितियों की प्रतीक्षा कर रहा था। परन्तु इस प्रतीक्षा में समय बीतता जा रहा था, और समय बीतने के साथ-साथ भारतीय पक्ष की संभरण-समस्या अधिकाधिक गम्भीर होती जा रही थी। व्यापारियों के उपलब्ध भंडार क्षीण होते जा रहे थे। राजधानी से सैनिकों के लिए खाद्यान्न और पशुओं के लिए चारा भेजने की जो व्यवस्था की गयी थी उसमें अप्रत्याशित व्यवधान आ गया था क्योंकि गत एक सप्ताह के भीतर दो वाहक-दलों को, सम्भवतः एतदर्थ गुप्त रूप से भेजे गये तुरुष्कों द्वारा, मार्ग में ही लूट लिया गया था। इसके अतिरिक्त समय के साथ-साथ शीत का प्रकोप, और उसके साथ पर्वतीय शीत के अनभ्यस्त सैनिकों का असंतोष भी बढ़ता जा रहा था। इस प्रकार कुल मिलाकर यदि आनन्दपाल की सैन्य स्थिति महमूद की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपेक्षा अधिक अच्छी थी तो उसकी समस्याएँ भी महमूद की समस्यओं की अपेक्षा अधिक और जटिलतर थीं ।

अतएव चन्देल सेना के आगमन का समाचार पाकर आनन्दपाल को उतनी ही प्रसन्नता हुई जितनी कृषक को आषाढ़ के अन्त में क्षितिज पर मेघ घिरते हुए देखकर होती है। उसने अविलम्ब चन्देल सेनाध्यक्ष को अपने स्कंधावार में परामर्श के लिए निमंत्रित किया। इस परामर्श में चन्द्रशेखर के साथ विजयसिंह ने भी भाग लिया।

आनन्दपाल की स्थिति इस समय तक ऐसी हो गयी थी जहाँ पहुँचकर विश्वास तथा सहयोग के लिए आतुर व्यक्ति तिनके का सहारा खोजने लगता है। अतएव उसने निस्संकोच सम्पूर्ण स्थिति की व्याख्या करने के पश्चात् स्पष्ट शब्दों में कह दिया, "हमारी स्थिति इस समय बहुत अच्छी नहीं है। परन्तु अब चन्देल सेना के आगमन से उसमें स्पष्ट सुधार हुआ है। अब आप महानुभाव ही मुझे परामर्श दें कि वर्तमान स्थिति में हमें क्या करना चाहिए।"

"आक्रमण," आन्दपाल के मौन होते ही चन्द्रशेखर ने कहा।

परामर्श में कोई मौलिकता नहीं थी। आन्दपाल की अपनी धारणा भी यही थी, और सम्भवत: जिससे भी पूछा जाता वह यही कहता परन्तु चन्द्रशेखर ने अपने परामर्श के एक शब्द का उच्चारण इतनी तत्परता के साथ और ऐसे उत्साहपूर्ण स्वर में किया था कि आनन्दपाल और विजयसिंह दोनों आश्चर्य से उसका मुख देखने लगे।

तब चन्द्रशेखर ने व्याख्या करते हुए फिर कहा, "वर्तमान स्थिति में हमारे समक्ष आक्रमण करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहींहै। यदि हम अविलम्ब इस मार्ग का अनुसरण नहीं करेंगे तो हमारे मतभेद बढ़कर षड्यंत्र और अव्यवस्था की सीमा तक पहुँच जाएंगे, महमूद अवसर पाते ही हमारे ऊपर आक्रमण कर देगा। वह एक कुशल सेनानायक है। इस समय अवसर की घात में चुपचाप बैठा है, परन्तु अवसर मिलते ही क्षण भर का विलम्ब नहीं करेगा।"

विजयसिंह ने समर्थन करते हुए कहा, "यह सत्य है। अवसर पाकर महमूद कदापि विलम्ब नहीं करेगा। वह तो बिना अवसर के भी आक्रमण कर सकता है क्योंकि उसकी धर्मान्धता का कहीं छोर नहीं है।"

"उसकी तृष्णा का कहीं छोर नहीं है," आनन्दपाल ने कहा, "उसके लोभ का कहीं छोर नहीं है, और उसकी क्रूरता की कोई सीमा नहीं है। यह कहना अधिक सत्य होगा। मैं महमूद को भली प्रकार जानता हूँ। उसने नीतिवश अपने सम्बन्ध में यह प्रचार अवश्य कराया है कि वह इस्लाम के प्रचार के लिए लड़ता है, और लोग इसमें विश्वास भी करने लगे हैं, परन्तु सत्य यह है कि वह धर्मान्ध नहीं है। यदि होता तो ईलक खां और दाऊद लोदी को अपनी लपेट में क्यों लेता ? स्वयं बगदाद के खलीफा का विरोध करके सूफ़ी हस्नक को आश्रय क्यों देता ? भारत के विरुद्ध अपने अभियानों को वह धार्मिक कहता अवश्य है, परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह सत्य नहीं है। इन अभियानों के पीछे जो प्रेरक शक्ति कार्य कर रही है वह धार्मिक कदापि नहीं है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "महाराज का कथन सर्वथा सत्य है। महमूद अपने युग का अलक्षेन्द्र बनना चाहता है। वह मूलतः एक विजेता है जो यश चाहता है, अपनी शक्ति और सत्ता का विस्तार चाहता है, और धन-सम्पत्ति के संचय द्वारा अपने वैभव की अधिकाधिक वृद्धि करना चाहता है। भारत में धन-सम्पत्ति का अनन्त भंडार है, इसी कारण उसने भारत को अपने अभियानों का लक्ष्य बनाया है।"

"वह हमारे देवालयों पर भी तो आक्रमण करता है। क्या यह उसकी धर्मान्धता का प्रमाण नहीं है?" विजयसिंह ने कहा।

"नहीं," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "यह भी उसकी लोलुपता का ही प्रमाण है। हमारे देश की विशाल धन-सम्पत्ति हमारे देवालयों में केन्द्रित है, इसी कारण वह उन पर आक्रमण करता है। इसके अतिरिक्त वह हमारे देवताओं का अपमान करके हमारा मनोबल क्षीण करना चाहता है।"

आनन्दपाल ने कहा, "परन्तु अब हम उसे ऐसा नहीं करने देंगे। इस बार उसने भी यह भली प्रकार समझ लिया होगा। इस समय उसे हमारे देवालय आकाश के नक्षत्रों की भांति अगम तथा अप्राप्य लग रहे होंगे।"

"हमें इस स्थिति को स्थायी बना देना चाहिए, महाराज," चन्द्रशेखर ने कहा, "और उसका एकमात्र उपाय है आक्रमण। हमें अविलम्ब अपनी सम्पूर्ण शक्ति से आक्रमण करके महमूद को सदा के लिए कुचल देना चाहिए।"

"मेरी भी यही इच्छा है जिसे मैं न जाने कब से हृदय में संजोए हूँ। अब उसकी पूर्ति का समय निकट आ गया प्रतीत होता है। अभी तक मेरे समक्ष ऐसी कठिनाइयाँ थीं कि मैं आक्रमण नहीं कर पा रहा था। परन्तु चन्देल सेना के आगमन से स्थिति भिन्न हो गयी है। अब हम आक्रमण की योजना बना सकते हैं और मालव सेना के आते ही उसे कार्यान्वित भी कर सकेंगे।"

"हम प्रत्येक सेवा तथा उत्तरदायित्व के लिए प्रस्तुत हैं, महाराज," चन्द्रशेखर ने कहा, "अतएव मालव सेना की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है। हमारे पास पर्याप्त सेना है, और आक्रमण में पहले से ही बहुत विलम्ब हो चुका है। महाराज हमें आदेश दें, हम प्रातःकाल ही आक्रमण में अग्रणी बन सकते हैं।"

आनन्दपाल ने मापक दृष्टि से क्षण भर चन्द्रशेखर की ओर देखकर कहा, "तुम जो कह रहे हो वह कर भी सकते हो। मुझे इसमें रंचमात्र संदेह नहीं है। परन्तु आक्रमण का नेतृत्व हम स्वयं करना चाहते हैं। शाही राज्य पर गजनवियों का ऋण अधिक है, हमें उससे उऋण होना है।"

"यदि महाराज आक्रमण का नेतृत्व करेंगे तो हमारे सैनिकों को और भी अधिक प्रसन्नता होगी, उनका उत्साह बढ़ेगा," विजयसिंह ने कहा।

आनन्दपाल ने कहा, "यात्रा से थकी हुई चन्देल सेना पर हम आक्रमण का भार नहीं डालना चाहते हैं। उसमें गक्खरों की अनियमित सेना हमारी सहायता

 CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए पर्याप्त होगी। चन्देलों को हम एक पार्श्व की रक्षा का उत्तरदायित्व सौंपेंगे। कठिनाई यह है कि दूसरे पार्श्व की सुरक्षा के लिए हम किसी पर विश्वास नहीं कर सकते। इसी कारण हमें मालव सेना की प्रतीक्षा करनी पड़ रही है।"

"अभी उस पार्श्व की रक्षा कौन कर रहा है?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"इस समय वहाँ गक्खर नियुक्त हैं।"

चन्द्रशेखर ने क्षण भर विचार करने के पश्चात् कहा, "महाराज आक्रमण करने में अधिक विलम्ब न करें। उस पार्श्व की सुरक्षा के लिए गक्खरों के स्थान पर गोपाद्रि तथा श्रीपथ की सेनाओं का प्रयोग किया जा सकता है।"

"विश्वसनीय रहेंगी?" आनन्दपाल ने पूछा।

"यह मेरा उत्तरदायित्व है, महाराज," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।

आनन्दपाल ने एक बार फिर ध्यान से चन्द्रशेखर की ओर देखा और कहा, "तब हम तुरन्त आक्रमण करने की योजना बना सकते हैं। परन्तु इस विषय पर अधिक पूर्णता के साथ विचार करना आवश्यक है। रात्रि में हम फिर मंत्रणा करेंगे।"

रात्रि में फिर मंत्रणा हुई जिस में आनन्दपाल के मंत्रियों तथा सैनिक अधिकारियों ने भी भाग लिया। इसके परिणामस्वरूप अगले दिन चन्देल सेना ने भारतीय शिविर के उत्तरी छोर पर अपना दायित्व सँभाल लिया। गोपाद्रि तथा श्रीपथ की सेनाएँ दक्षिणी छोर पर नियुक्त कर दी गयीं और गक्खर वहाँ से हटकर आनन्दपाल के निकट मध्य में आ गये।। इस पुनर्नियोजन पर कान्यकुब्ज क्षेत्रों में बड़ी टीका-टिप्पणी हुई, परन्तु उसकी चिन्ता किये बिना आनन्दपाल और चन्द्रशेखर आक्रमण की पूर्व-व्यवस्था में संलग्न रहे। वे पूर्ण रूप से सुनियोजित आक्रमण करना चाहते थे जिसमें विफलता की सम्भावना कम-से-कम रह जाए।

परन्तु योजना पूर्ण होने से पूर्व एक ऐसी घटना हो गयी कि आनन्दपाल को विवश होकर तुरन्त आक्रमण करना पड़ा। यह घटना भारतीय शिविर के उत्तरी छोर पर हुई जहाँ चन्देल सेना नियुक्त थी।

४

चन्देल सेना जिस स्थान पर नियुक्त की गयी थी वह शिविर-केन्द्र से लगभग एक कोस उत्तर में तथा सुरक्षा की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण था। वहाँ छोटी-छोटी पहाड़ियों के बीच से मार्ग बनाकर बहती हुई नदी की धारा एक स्थान पर इतनी क्षीण हो गयी थी कि अश्वारोही छलांग लगाकर सरलतापूर्वक इस पार से उस पार पहुँच सकता था। शत्रु पक्ष नदी पार करने के लिए इस स्थान का प्रयोग कर सकता था, अतएव इसकी सुरक्षा का विशेष महत्व था। चन्द्रशेखर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने उत्तरदायित्व सँभालते ही इसकी पूरी व्यवस्था भी कर दी थी। चन्देल सेना नदी के किनारे-किनारे सम्पूर्ण क्षेत्र में फैला दी गयी थी और स्थान-स्थान पर, कहीं वृक्षों की ओट में तो कहीं शिलाओं के पीछे अथवा—यदि सम्भव हुआ तो खाइयाँ खोदकर शत्रु की गति-विधियों पर दृष्टि रखने के लिए चौकियाँ स्थापित कर दी गयी थीं। जिस स्थान पर नदी का पाट सबसे अधिक संकीर्ण था वहाँ चन्द्रशेखर ने उसके पश्चिमी तट पर भी एक सुदृढ़ चौकी स्थापित कर दी थी और सैनिकों की सुविधा के लिए वृक्षों के दो सीधे तने रखवाकर एक अस्थायी सेतु की भी व्यवस्था कर दी थी।

उस दिन चन्द्रशेखर तथा विजयसिंह प्रातःकाल ही अपनी चौकियों का निरीक्षण करने निकल गये थे। वैसे यह कार्य चन्द्रशेखर का था, और उसमें विजयसिंह की कहीं कोई आवश्यकता अथवा उपयोगिता नहीं थी। परन्तु लग-भग एक मास से साथ रहते-रहते विजयसिंह को अपने साथी से स्नेह-सा हो गया था और वह अनेक कार्यों में केवल मित्रतावश चन्द्रशेखर का साथ बँटा लिया करता था। इसमें उसे संतोष के साथ अनुभव का लाभ भी हो रहा था क्योंकि उसके लिए एक बड़े युद्ध में भाग लेने का यह पहला अवसर था।

दूर-दूर तक फैली हुई अपनी सारी चौकियों का निरीक्षण करने के पश्चात् जब दोनों मित्र लौटे तब तक सूर्य भी पूर्व की नीची पहाड़ियों के ऊपर आ चुका था। यदा-कदा वृक्षों से अंकित ये पहाड़ियाँ हिन्दुकुश शृंखला की पहली सीढ़ी पर स्थित उसकी भूमिका मात्र थीं। ये अधिक ऊँची अथवा विषम नहीं थीं और दूर से धरती की पीठ पर उभरे हुए अनेक कूबड़ों-सी प्रतीत होती थीं। इनसे आरम्भ होकर नदी के तट तक फैला हुआ क्रमिक ढ़ाल कभी अवश्य हरीतिमा से आवृत्त रहा होगा परन्तु एक मास से भी अधिक समय तक असंख्य अश्वों की उदर-पूर्ति करने के पश्चात् अब उसका मूल भूरा रंग उभरकर ऊपर आ गया था जिसमें यत्र-तत्र बिखरे हुए छोटे-बड़े अनेक शिला-खंड उसे एक विस्तृत खंडहर का स्वरूप प्रदान कर रहे थे। नदी के पश्चिमी तट का दृश्य इससे कुछ भिन्न था। उस ओर पहाड़ियों की एक शृंखला धारा के लगभग समानान्तर और उसके इतने निकट खड़ी थी कि वह नदी में से ही निकली हुई प्रतीत होती थी। इन पहाड़ियों के पीछे एक संकीर्ण ढाल था जो कुछ वृक्षों तथा अनेक झाड़ियों से ढका हुआ था। उसके पश्चात् पहाड़ियों की दूसरी शृंखला आरम्भ हो जाती थी।

चन्द्रशेखर तथा विजयसिंह ने अपने-अपने अश्वों की वल्गा अनुचरों के हाथ में दी ही थी कि एक सैनिक भगता हुआ उनके निकट आया और शीघ्रतापूर्वक अभिवादन करने के पश्चात् चन्द्रशेखर से कहने लगा, "देव, दो तुरुष्क अश्वारोही अभी उस ओर गये हैं।" वाक्य समाप्त करते-करते उसे ध्यान आया कि उसने दिशा-निर्देश तो किया ही नहीं है और वह उत्तर की ओर हाथ उठाकर फिर बोला, "उस ओर।"

चन्द्रशेखर ने इंगित दिशा में देखते हुए कहा, "उस ओर तो अभी हम भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गये थे। तुम इतने उत्तेजित क्यों हो ? शान्त होकर पूरी बात बताओ।"

सैनिक ने शान्त होने का प्रयास करते हुए पूरी बात बतायी। वह गत तीन दिनों से नौ अन्य सैनिकों के साथ नदी के पश्चिमी तट पर स्थित चौकी में नियुक्त था। आज प्रातःकाल जब वह पहाड़ी के दूसरी ओर ढाल पर निवृत्त होने के पश्चात् लौट रहा था तो उसे अपने पीछे से आती हुई अश्व-चाप सुनाई पड़ी। उस समय वह निःशस्त्र था तथा अपनी चौकी से इतनी दूर था कि सहायता के लिए पुकार भी नहीं लगा सकता था। अतएव वह वहीं एक घनी झाड़ी में छिपकर बैठ गया। कुछ समय पश्चात् उसने दक्षिण की ओर से दो अश्वारोहियों को आते हुए देखा। उन्हें अपनी ही ओर आते देखकर उसने साँस रोक ली। वे उसे देख नहीं पाये और जिस झाड़ी में वह छिपा था उसके बहुत निकट से होते हुए उत्तर की ओर चले गये। उनके शरीर शिर से पैर तक कवच से ढ़के हुए थे और उनकी सज्जा बता रही थी कि वे विशिष्ट व्यक्ति हैं। उनके अश्व बहुत अच्छी जाति के तथा खड्ग रत्न जटित थे। जो व्यक्ति आगे-आगे चल रहा था वह मध्यम आकार-प्रकार का था। परन्तु दूसरे का आकार सुदीर्घ था और उसके हाथ में एक चमकता हुआ भाला भी था। दोनों मौन और धीरे-धीरे, यथा सम्भव कम शब्द करने का प्रयास करते हुए, आगे बढ़ रहे थे। सैनिक सांस रोककर झाड़ी में छिपा हुआ उन्हें देखता रहा। जब वे दृष्टि से ओझल हो गये और उसे विश्वास हो गया कि उनके पीछे और कोई नहीं है, तब वह झाड़ी के भीतर से निकलकर चौकी पर आया और वहाँ अपने साथियों को सतर्क करने के पश्चात् सूचना देने के लिए भागता हुआ इस पार आया था।

यह विवरण सुनते-सुनते चन्द्रशेखर की मुद्रा में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। उसकी उदासीनता विलीन हो गयी और विवरण समाप्त होते ही उसने दबी हुई उत्तेजना के स्वर में कहा, "तुम पूर्ण निश्चय के साथ कह सकते हो कि केवल दो ही व्यक्ति उत्तर की ओर गये हैं ? और कोई तो नहीं था ?"

"नहीं, देव। केवल दो ही थे," सैनिक ने उत्तर दिया।

"आश्चर्य है ! उनके आगे अथवा पीछे कुछ और व्यक्ति अवश्य गये होंगे। तुमने जैसे व्यक्तियों का वर्णन किया है वे ऐसी यात्रा अकेले कभी नहीं करते।"

सैनिक ने कहा, "परन्तु उस मार्ग से तीसरा कोई व्यक्ति नहीं गया है, देव। यह मैं निश्चय के साथ कह सकता हूं"

क्षण भर विचार करने के पश्चात् चन्द्रशेखर ने कहा, "अच्छा, तुम अपने स्थान पर चलो, और बहुत सतर्क रहना। अपने साथियों से भी कह देना कि सतर्क रहें। मैं शीघ्र ही उस ओर आ रहा हूँ।"

सैनिक प्रणाम करके चला गया। चन्द्रशेखर ने तुरन्त अपने कुछ अधीनस्थ अधिकारियों को बुलाकर सेतु के दोनों ओर की चौकियों पर और सैनिक भेजने तथा अपनी सम्पूर्ण सेना को सतर्क करने का आदेश दिया। तत्पश्चात उसने विजयसिंह की ओर घूमकर कहा, "मुझे तुरन्त उस पार जाना होगा।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विजयसिंह बड़े ध्यान से अपने साथी की परिवर्तित मुद्रा को देख रहा था, पर उसके कार्य में तनिक भी हस्तक्षेप नहीं कर रहा था। अब प्रत्यक्ष रूप से सम्बोधित किये जाने पर उसने पूछा, "क्या यह हमारे पार्श्व पर आक्रमण की भूमिका है ?"

"हो सकती है," चन्द्रशेखर ने व्यस्त स्वर में उत्तर दिया, "और नहीं भी हो सकती है। उस पार जाकर ही अनुमान लगाना सम्भव होगा।"

"मैं भी चलूँ ?" विजयसिंह ने कहा।

"अनावश्यक है। मैं अकेला संभाल लूँगा।"

"मेरे साथ चलने में तुम्हें कोई असुविधा होगी ?"

"मेरी सुविधा अथवा असुविधा का प्रश्न नहीं है", चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "परन्तु जहाँ एक पर्याप्त हो वहाँ दो प्राणों का दाँव लगाना जितना आवश्यक है उसी अनुपात में अनुचित भी होगा।"

विजयसिंह क्षण भर मौन खड़ा-खड़ा कुछ सोचता रहा, फिर उसने चन्द्रशेखर की ओर देखते हुए निश्चय के स्वर में घोषणा की, "मैं तुम्हारे साथ चल रहा हूँ। कब क्या उचित है और कब क्या नहीं, यह विवाद का विषय है। इस पर युद्ध के पश्चात् तुम्हारा-मेरा शास्त्रार्थ होगा। परन्तु इस समय तुम्हें अकेले नहीं जाने दूँगा"। यह कहता हुआ वह अपने अश्व की ओर बढ़ा और कूद कर उस पर आरूढ़ हो गया।

कुछ क्षण पश्चात् नदी की ओर चलते हुए मार्ग में विजयसिंह ने अनायास प्रश्न किया "तुम्हें अपने प्राणों का तनिक भी मोह नहीं है क्या ?"

"नहीं", चन्द्रशेखर ने सामने शून्य में निहारते हुए संक्षिप्त उत्तर दिया।

"फिर तुम मेरे लिए इतने चिन्तित क्यों हो ?"

चन्द्रशेखर ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। सम्भवतः वह कोई उत्तर देना नहीं चाहता था। परन्तु विजयसिंह उत्तर पाना ही चाहता था। अतएव कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के पश्चात् उसने फिर कहा, "बोलो, तुम मेरे लिए इतने चिन्तित क्यों हो ?"

चन्द्रशेखर की उदासीनता फिर लौट आयी थी। लगता था वह सम्पूर्ण बाह्य जगत् से विमन होकर, चारों ओर फैले सम्पूर्ण यथार्थ से पलायनोन्मुख होकर, अपने भीतर की किसी अज्ञात गहराई में खो गया हो। इसी मनःस्थिति में मुखर चिन्तन-सा करते हुए उसने कहा, "लगता है मनुष्य होकर चिन्ता से मुक्त होना असम्भव है।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् ?" चन्द्रशेखर ने दुहराया, और फिर पूर्ववत् सामने देखते हुए कहना प्रारम्भ किया, "सत्य तो यह है कि मैं स्वयं नहीं जानता हूँ। मैंने कभी इस प्रश्न पर विचार नहीं किया है। केवल इतना जानता हूँ कि मैं अपने विषय में चिन्ता नहीं करना चाहता। करता भी नहीं हूँ। सम्भवतः इसी कारण औरों की

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिन्ता अधिक सताने लगी है। प्रकृति इसी प्रकार अपना संतुलन कर लेती है। चिन्ता करना मनुष्य का भाग्य है, अतएव उसे चिन्ता अवश्य करनी पड़ेगी। यदि अपने लिए नहीं करेगा तो प्रकृति औरों के लिए करा लेगी। हम धारा को बांधकर रोक देने का प्रयास करते हैं, परन्तु धारा का प्रवाह नहीं रुकता। केवल उसकी दिशा बदल जाती है।"

विजयसिंह इस जीवन-दर्शन से विशेष प्रभावित नहीं हुआ। परन्तु उसने विरोध में कुछ न कहकर उसने पूछा, "तुम अपने विषय में चिन्ता क्यों नहीं करते हो?"

मेरा जीवन अपना है, किसी की धरोहर नहीं है।"

चन्द्रशेखर अत्यधिक गम्भीर होता जा रहा था, अतएव वातावरण को कुछ हलका करने के उद्देश्य से विनोद करते हुए विजयसिंह ने कहा, "लगता है पत्नी से लड़कर आये हो, क्यों?"

परन्तु चन्द्रशेखर की गम्भीरता में अन्तर नहीं आया। उसने कहा, "तुम्हारा अनुमान सत्य नहीं है। मैं अविवाहित हूँ।"

"अविवाहित हो! अभी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है?" विजयसिंह ने आश्चर्य के स्वर में कहा।

"नहीं", विजयसिंह के आश्चर्य का आनन्द लेते हुए चन्द्रशेखर ने कहा, "मेरा विवाह नहीं हुआ है। आगे भी नहीं होगा।"

"आगे भी नहीं होगा! क्यों?"

"मैं करूँगा ही नहीं।"

"बड़ी विचित्र बात है! तुम विवाह क्यों नहीं करोगे? कहीं कोई प्रेमिका है क्या?"

"नहीं, मेरी कोई प्रेमिका नहीं है। पहले कभी भी नहीं थी। एक मूर्ख लड़की अवश्य थी जिसके साथ मैं विवाह करना चाहता था। परन्तु वह मेरी प्रेमिका नहीं थी।"

"वह तुमसे प्रेम नहीं करती थी?"

चन्द्रशेखर ने एक अस्पष्ट उसांस लेकर कहा, "उस समय तो लगता था कि वह मुझसे बहुत प्रेम करती है। परन्तु अब संदेह होने लगा है।"

"और तुम?" विजयसिंह ने पूछा, "तुम उससे प्रेम करते थे?"

"वह मुझे अच्छी लगती थी, और मैं चाहता था कि वह सदा मेरी, और केवल मेरी होकर रहे। यदि प्रेम की यही परिभाषा है तो मैं प्रेम करता था।"

"फिर तुम्हारा विवाह क्यों नहीं हुआ?"

"उसके पिता नहीं चाहते थे। उन्होंने उसका विवाह कहीं और कर दिया, जिसकी सूचना मुझे विवाह हो जाने के पश्चात् मिली। तभी से मेरा अपने लिए चिन्ता करना छूट गया है, और तभी से मैं दूसरों के सम्बन्ध में, विशेष रूप से ऐसे लोगों के सम्बन्ध में जो जीवन में मुझसे अधिक भाग्यशाली हैं, अधिक चिन्ता करने लग गया हूं।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"उसका विवाह कहाँ हुआ है ?"

"यह मुझे ज्ञात नहीं है। और बस, अब मैं तुम्हारे किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दूंगा। यह प्रसंग मेरे लिए रुचिकर नहीं है।" यह कहकर चन्द्रशेखर आगे बढ़ गया।

विजयसिंह ने फिर कोई प्रश्न नहीं पूछा, और न अपना अश्व आगे बढ़ाकर उसके समकक्ष चलने का प्रयास ही किया। इसका एक कारण यह भी था कि अब सेतु बहुत निकट आ गया था। दोनों मौन आगे-पीछे चलते हुए शीघ्र ही उसे पार कर नदी के पश्चिमी तट पर स्थित अपनी चौकी में पहुंच गये। वहाँ उन्हें सूचना मिली कि दोनों तुरुष्क अश्वारोही अभी तक लौटकर जाते हुए नहीं देखे गये हैं। चन्द्रशेखर के पूछने पर दल के नायक ने यह भी बताया कि अन्य कोई व्यक्ति उत्तर की ओर नहीं गया है।

इस अन्तर में पूर्वी तट से इस चौकी की रक्षा के लिए भेजे गये लगभग सौ सैनिक आ गये जिनमें कुछ धनुर्धर भी थे। चन्द्रशेखर ने पांच धनुर्धरों को दक्षिण से आने वाले मार्ग पर दृष्टि रखने का निर्देश देकर वाम पार्श्व की पहाड़ी के ऊपर भेज दिया, और शेष को दोनों पहाड़ियों के बीच वाले मार्ग की सुरक्षा के लिए उपयुक्त स्थानों पर नियुक्त कर दिया। इसके पश्चात् अन्य सैनिकों को किसी भी स्थिति के लिए तत्पर रहने तथा आवश्यकता पड़ने पर नियत संकेत द्वारा उससे और सहायता का आवाहन करने का निर्देश देकर वह विजयसिंह की ओर घूमा और कहने लगा, "तुम यदि यहीं रुक जाओ तो इस दल का निर्देशन सँभाल सकते हो। परन्तु मैं जानता हूं तुम मेरा अनुशासन स्वीकार नहीं करोगे और मेरे साथ आगे चलने का आग्रह करोगे।"

विजयसिंह ने मुस्कराकर कहा, "तुम आगे जाओगे ?"

"सोच तो यही रहा हूं।"

"कहाँ तक ?',

"अधिक दूर तक नहीं जाऊँगा" चन्द्रशेखर ने आश्वासन-सा देते हुए कहा, "केवल इन पहाड़ियों के पृष्ठ भाग तक जाना है। उस मार्ग पर दृष्टि रखनी है जिससे तुरुष्क अश्वारोही गये हैं। यदि वे उसी मार्ग से लौटे भी······"

"तो तुम क्या करोगे ?" विजयसिंह ने पूछा।

"इसका निर्णय स्थिति देखकर करूँगा। सम्भव है ललकारना पड़े।,'

"तो मैं तुम्हारे साथ चलने का आग्रह करूँगा," विजयसिंह ने निश्चय के स्वर में कहा। "वे दो होंगे। यदि एक होता तो मैं तुम्हारा अनुशासन स्वीकार करके यहीं रुक जाता। परन्तु वे दो हैं, अतएव हमें भी दो होना चाहिए।"

चन्द्रशेखर के अधरों पर एक हलकी-सी मुस्कान दिखायी पड़ी उसने कहा, "मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। चलो।"

उस स्थान पर उत्तर से दक्षिण की ओर नदी की धारा के समानान्तर दो छोटी-छोटी पहाड़ियाँ थीं जिनकी चौड़ाई किसी भी स्थान पर अधिक नहीं थी। ये दोनों विलग होकर भी परस्पर जुड़ी हुई थीं, अर्थात् जहाँ एक-सा ढाल समाप्त

 CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता था वहीं दूसरी की चढ़ाई आरम्भ हो जाती थी। सेतु के ठीक सामने जहाँ दोनों ढालों का संधिस्थल था वहां पहाड़ियों के पृष्ठ-भाग की ओर जाने के लिए प्राकृतिक मार्ग-सा बन गया था। पहाड़ियों के पृष्ठ-भाग में उनके आधार को छूता हुआ वह संकरा, सर्पाकार मार्ग था जिसका अनुसरण उन दो तुरुष्क अश्वारोहियों ने किया था। दक्षिण से उत्तर की ओर जाने वाला यह मार्ग दोनों पहाड़ियों के बीच पहुँचकर, अर्थात् जिस प्राकृतिक मार्ग का अनुसरण इस समय चन्द्रशेखर और विजयसिंह कर रहे थे उसके साथ अपने संगम स्थल पर, अपेक्षाकृत अधिक चौड़ा हो जाता था। इस स्थान पर पहुँचकर दोनों मित्र रुक गये। चन्द्रशेखर ने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर देखने के पश्चात् उत्तरी पहाड़ी के आधार में स्थित एक चौड़ी कम गहरी गुफा की ओर संकेत करते हुए कहा, "उधर, वहाँ।"

यह गुफा वास्तव में प्राकृतिक नहीं थी। दोनों पार्श्वों में थोड़ी-बाहर की ओर निकलती हुई पाषाण-भित्तियों के आधार पर एक विशाल शिला-खण्ड न जाने कैसे और कब आकर लटक गया था जिस के परिणामस्वरूप लगभग बीस पग लम्बा और इतना ही चौडा एक कक्ष-सा बन गया था, जो केवल एक ओर से खुला था। सम्भव है किसी समय यहां किसी भागवत साधु का साधना-स्थल रहा हो, और दूर-दूर से उसके भक्त दर्शनार्थी यहां आते रहे हों। इस समय भी उस निर्जन क्षेत्र में स्थित वह गुफा वर्षाक्रान्त यात्रियों के लिए एक आदर्श शरण-स्थल और मध्याह्न-काल में चरवाहों के लिए एक आदर्श विश्रामागार थी।

गुफा की ऊँचाई पर्याप्त थी, अतएव दोनों मित्र बिना अश्वों पर से उतरे पर्वत की छाया में जा खड़े हुए। एक संक्षिप्त दृष्टि में सम्पूर्ण गुफा का निरीक्षण कर लेने के पश्चात् विजयसिंह ने चन्द्रशेखर की ओर देखा और कहा, "अब ?"

"प्रतीक्षा," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया "अब हमें सतर्कतापूर्वक और अश्वारूढ़ स्थिति में ही शत्रु के लौटने की प्रतीक्षा करनी होगी। आगे का कार्यक्रम उनके लौटने पर ही निश्चित किया जा सकेगा।"

"और यदि वे न लौटें तो ?"

"दो विशिष्ट तुरुष्क स्वर्गारोहण-अभियान पर नहीं निकले होंगे। जब गये हैं तो लौटेंगे भी अवश्य।"

विजयसिंह ने कहा, "मेरा तात्पर्य यह है कि वे किसी अन्य मार्ग से भी तो लौट सकते हैं।"

"इसकी सम्भावना कम है। यदि अन्य कोई मार्ग होता तो वे हमारे सैनिकों की दृष्टि से बचने के लिए उसका ही प्रयोग करते, इस ओर जाने का अनावश्यक दुस्साहस कदापि न करते। परन्तु ऊपर जाने के लिए उन्होंने इसका प्रयोग किया है, इससे स्पष्ट होता है कि वे कोई अन्य मार्ग नहीं खोज पाये हैं। मुझे विश्वास है कि वे इधर से ही लौटेंगे भी। हमारे सामने इस समय उनकी प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। हमार यह प्रतीक्षा अनन्त नहीं होगी, दीर्घ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी नहीं होगी। वे अधिक दूर नहीं जासकेंगे क्योंकि आगे चलकर यह मार्ग अश्वारोहियों के लिए अगम हो जाता है।"

"यदि प्रतीक्षा करनी ही है," विजयसिंह ने कहा, "तो हमें उस ओर गुफा-द्वार के निकट स्थान ग्रहण करना चाहिए। वहाँ से हम सम्पूर्ण मार्ग पर भली प्रकार दृष्टि रख सकेंगे।"

यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और दोनों गुफा-द्वार के निकट जाकर इस प्रकार खड़े हो गये कि उत्तर तथा दक्षिण, दोनों दिशाओं में मार्ग पर दृष्टि रख सकते थे।

कुछ काल तक इसी प्रकार सतर्क मुद्रा में मौन खड़े रहने के पश्चात् विजयसिंह ने सहसा कहा, " मुझे इस प्रकार की मौन निष्क्रियता का अभ्यास नहीं है, मित्र। यदि कोई हानि न हो तो बीच-बीच में थोड़ा बोल लिया करूँ?"

चन्द्रशेखर ने किंचित् मुस्कराकर-उत्तर दिया, "बीच-बीच में थोड़ा बोल लेने से हानि नहीं होगी।"

परन्तु विजयसिंह ने तुरन्त इस अनुमति का लाभ नहीं उठाया और कुछ काल तक गुफा में मौन का ही साम्राज्य रहा जिसमें साँस का स्वर भी स्पष्ट सुना जा सकता था। यह मौन अन्त में चन्द्रशेखर ने भंग किया। उसने कहा, "तुम कुछ बोल नहीं रहे हो?"

विजयसिंह ने कहा,"इच्छा तो बहुत हो रही है, परन्तु बोल नहीं पा रहा हूँ। बात यह है कि मैं तुमसे दो-एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। किन्तु यह निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ कि पूछूं अथवा न पूछूं।"

"क्यों?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"तुम पहले ही कह चुके हो कि वह विषय तुम्हारे लिए रुचिकर नहीं है, इस कारण संकोच हो रहा है।"

"तो मत पूछो," चन्द्रशेखर ने कहा।

"मैं भी समझता हूँ कि यही अधिक उचित होगा, परन्तु······"

"तो पूछ लो," चन्द्रशेखर ने कहा।

"पूछ लूं? उत्तर दोगे?"

"प्रयास करूँगा।"

"तो सुनो," विजयसिंह ने कहा, "मैं यह जानना चाहता हूँ कि·········कि वह स्त्री यदि अब तुम्हें मिल जाये तो क्या तुम उसके साथ विवाह कर लोगे?"

"प्रश्न ही नहीं उठता," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "क्योंकि मैं अब विवाह करूँगा नहीं, और उसका हो चुका है।"

"तुम बिना विवाह किये भी उसके स्वामी बन सकते हो, और जहाँ तक उसका सम्बन्ध है, मैं समझता हूँ कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। उसका अपहरण किया जा सकता है, और यदि आवश्यक हो तो उसके पति को बीच से हटाया जा सकता है। इस कार्य में मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"धन्यवाद," चन्द्रशेखर ने कहा, "परन्तु तुम मेरे लिए हत्या अथवा अपहरण करो, यह मुझे स्वीकार नहीं है।"

"तो मैं हत्या अथवा अपहरण नहीं करूँगा। और कई उपाय हो सकते हैं, उनमें से किसी का प्रयोग करूंगा। तुम मुझे केवल इतना और बतादो कि उसका विवाह कहाँ और किसके साथ हुआ है। बता सकते हो?"

"नहीं," चन्द्रशेखर ने कहा, "यह मैं नहीं बता सकता हूं क्योंकि मुझे स्वयं ज्ञात नहीं है। यदि ज्ञात होता तो भी सम्भवतः न बताता।"

चन्द्रशेखर मौन हो गया। विजयसिंह भी किसी विचार में डूब गया था। अतएव गुफा में फिर मौन छा गया, और इस बार विलम्ब तक छाया रहा। अन्त में विजयसिंह ने, सम्भवतः किसी निष्कर्षपर पहुंचकर, उसे भंग करते हुए कहा, "मेरी बातों को अन्यथा न समझना, मित्र! मैं तुम्हारे साथ सहानुभूति का प्रदर्शन करके तुम्हारे आत्मसम्मान को ठेस नहीं पहुंचाना चाहता हूँ। मेरे सम्मुख इस समय जो प्रश्न उपस्थित है वह दया अथवा सहानुभूति का नहीं, स्नेह और ममता का है। तुम मेरे मित्र हो। हमारा परिचय अभी अधिक दिनों का नहीं हुआ है। परन्तु स्नेह समय का आश्रित नहीं होता। मैं यह स्वीकार नहीं कर पा रहा हूँ कि तुम्हारे जैसा समर्थ और स्नेहशील व्यक्ति उपाय रहते संसार में जो कुछ भोग्य और करणीय है उस सबके प्रति उदासीन हो जाए। अतएव मैं तुमसे एक बार फिर अनुरोध कर रहा हूं कि······"

"अश्व-चाप!" चन्द्रशेखर ने वाक्य के बीच में ही अपना वर्जनशील हाथ ऊपर उठाकर धीमे स्वर में कहा।

विजयसिंह मौन हो गया। उत्तर की ओर से आता हुआ अश्वचाप का स्वर वास्तव में स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा था।

—५—

चन्द्रशेखर तथा विजयसिंह अविलम्ब गुफा से बाहर निकलकर पहाड़ियों के बीच वाले चौड़े स्थान में आ गये। उस स्थान से आवश्यकतानुसार सहायता का आवाहन सरलतापूर्वक किया जा सकता था।

अश्व-चाप अधिकाधिक निकट आती जा रही थी परन्तु दोनों अश्वारोही अभी दृष्टिगोचर नहीं हुए थे। पहाड़ी, सर्पाकार मार्ग के अनगिनत मोड़ों ने उन्हें छिपा रखा था। इसके अतिरिक्त, अश्व-चाप की लय से यह स्पष्ट था कि वे बहुत धीरे-धीरे आ रहे हैं। परन्तु चन्द्रशेखर को अब यह अल्प-सी प्रतीक्षा भी असह्य प्रतीत हो रही थी। अतएव उसने अपना अश्व दो पग आगे बढ़ाते हुए कहा, "अवरोध मैं करूँगा, और यदि आवश्यकता हुई तो युद्ध भी मैं ही करूँगा।"

परन्तु विजयसिंह ने तुरन्त अपना अश्व उसके समक्ष ले जाकर कहा, "मैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुम्हारा अधीनस्थ नहीं हूँ जिसके लिए प्रत्येक बात में तुम्हारा आदेश मानना आवश्यक हो। मैं यहाँ सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में आया हूँ, और अपनी निर्णय-बुद्धि के अनुसार कार्य करने का अधिकारी हूँ। और मैंने यह निर्णय किया है कि दो सशस्त्र तुरुष्कों का अवरोध करने के लिए एक चंदेल पर्याप्त नहीं है। अवएव मैं तुम्हारे साथ रहूँगा।"

चन्द्रशेखर को इसके उत्तर में कुछ कहने का अवसर नहीं मिला क्योंकि उसी समय लगभग सौ पग के अन्तर पर स्थित मार्ग के अन्तिम मोड़ पर दोनों तुरुष्क अश्वारोही दिखायी पड़ गये। चन्द्रशेखर और विजयसिंह, दोनों की दृष्टि लगभग एक साथ उन पर पड़ी, और वहीं केन्द्रित हो गयी। मध्यम आकार-प्रकार वाला तुरुष्क इस समय भी आगे था।

दोनों तुरुष्क अश्वारोहियों ने भी देख लिया था कि आगे का मार्ग अवरुद्ध है। अतएव वे भी अंतिम मोड़ पर खड़े हो गये थे। परन्तु यह स्थिति सम्भवतः उनके लिए सर्वथा अप्रत्याशित नहीं थी, क्योंकि उनके व्यवहार में सम्भ्रम का लेश मात्र भी परिलक्षित नहीं हुआ। रुकते ही आगे वाले अश्वारोही ने पीछे घूमकर अपने साथी से कुछ कहा जिसका स्वीकारात्मक उत्तर उसने सिर हिलाकर दिया। इस संक्षिप्त-सी मंत्रणा के पश्चात् आगे वाले अश्वारोही ने अपना अश्व एक ओर को करके मार्ग दे दिया और उसका साथी, जो वास्तव में भीमकाय था, अपने अश्व को वढ़ाकर आगे आ गया।

उसे आक्रमण के लिए तत्पर देखकर चन्द्रशेखर ने कहा, "वह अकेला ही आ रहा है। मैं उसके लिए पर्याप्त हूँ। तुम पीछे का ध्यान रखना।"

उसके स्वर में कुछ ऐसा था कि विजयसिंह इस बार विरोध नहीं कर सका। वह चुपचाप एक ओर को हट गया और दर्शक वनकर द्वंद्व-युद्ध की प्रतीक्षा करने लगा। परन्तु युद्ध आरम्भ होने से पूर्व अचानक उसे चन्द्रशेखर द्वारा दिये गये अन्तिम निर्देश का ध्यान आ गया और उसने एक विहंगम दृष्टि पीछे, अर्थात् दक्षिण की ओर डाली। वहाँ दूर-दूर तक मनुष्य तो मनुष्य पशु का भी कोई चिह्न न था। परन्तु दूर तक सर्वेक्षण करने के पश्चात् लौटती हुई उसकी दृष्टि सहसा एक वृक्ष तक आकर वहाँ अटक गयी। यह वृक्ष मार्ग से थोड़ा पश्चिम की ओर हटकर एक छोटे-से टीले पर स्थित था और उस समय घनी, हरी पत्तियों से ढ़का हुआ था। विजयसिंह को क्षणांश के लिए इस हरीतिमा के बीच कुछ उजला-सा दिखायी पड़ा, जो तुरन्त ही बादल में बिजली की भाँति विलीन हो गया। विजयसिंह ने अपनी दृष्टि उस स्थान पर केन्द्रित कर दी, परन्तु फिर कुछ दिखायी नहीं पड़ा और उसे विश्वास होने लगा कि यह उसका दृष्टि-भ्रम मात्र था। तब उसने अपनी दृष्टि फिर चन्द्रशेखर की ओर घुमायी।

चन्द्रशेखर द्वंद्व-युद्ध के लिए तत्पर चट्टान-सा खड़ा था और उत्तर की ओर से उसका प्रतिद्वंद्वी वह भीमकाय तुरुष्क अश्वारोही आक्रमण के लिए उद्यत आँधी-सा आगे बढ़ता चला आ रहा था। उसका शरीर कवच से भली प्रकार सुरक्षित था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
अपना चमकता हुआ भाला उसने आड़ा करके दाहिने हाथ में पकड़ रखा था।

विजयसिंह के लिए अब किसी और दिशा में देखना तो दूर रहा, पलक झपकाना भी असम्भव हो गया था।

विद्युत्गति से आगे बढ़ता हुआ तुरुष्क पल भर में चन्द्रशेखर के बहुत निकट आ गया और ऐसा लगा कि अब दोनों अश्व तथा अश्वारोही परस्पर गुंथ कर एक हो जाएँगे। परन्तु चन्द्रशेखर ने अन्तिम क्षण में अपने अश्व को तनिक दाहिने मोड़कर एड़ लगा दी और भाले के प्रहार को अपनी ढाल पर झेल लिया। उधर विजयसिंह ने साँस ली।

पलक झपकते ही फिर दोनों प्रतिद्वंद्वी घूमकर परस्पर आक्रमण के लिए उद्यत हो गये। इस बार चन्द्रशेखर ने भी अपना भाला संभाल लिया था। दोनों लगभग एक साथ और समान गति से एक-दूसरे की ओर झपटे। विजयसिंह फिर साँस रोककर उनके टकराने की प्रतीक्षा करने लगा।

परन्तु तुरुष्क अश्वारोही इस बार चन्द्रशेखर के निकट तक नहीं पहुँच पाया भाग्य इस समय उसके साथ नहीं था। वेग से दौड़ रहे उसके अश्व का एक पैर दुर्भाग्यवश एक गढ़े में पड़ गया जिसके परिणामस्वरूप उसका संतुलन-विगड़ गया। वह अपने आपको संभाल नहीं पाया और अपने आरोही सहित भूमि पर गिर पड़ा। अश्व तो जैसे गिरा था वैसे ही उठकर खड़ा भी हो गया, परन्तु आरोही प्रयास करके भी तुरन्त उठ नहीं पाया। उधर चन्द्रशेखर आगे बढ़ता हुआ उसके शिर पर जा खड़ा हुआ और ललकार कर बोला, "उठो और युद्ध करो!"

तभी निकट कहीं पत्तियाँ हिलने की हलकी-सी आहट सुनकर विजयसिंह की दृष्टि अपने आप उस वृक्ष की ओर घूम गयी जहाँ कुछ क्षण पूर्व उसे बिजली-सी चमकने का आभास हुआ था। इस बार भ्रम का प्रश्न नहीं रह गया था। पत्तियों के हरे आकाश में चमकती हुई बिजली लगभग स्थिर हो गयी थी। विजयसिंह सम्मोहित-सा उसे निहारने लगा।

इसके पश्चात् कुछ ही क्षणों में कई घटनाएँ लगभग एक साथ बड़ी शीघ्रता के साथ घटित हो गयीं।

सबसे पहले पत्तियों के बीच स्थिर वह बिजली गतिमान हुई और वृक्ष से टूटकर उस ओर बढ़ी जहाँ चन्द्रशेखर अश्वारूढ़ खड़ा अपने भूमि पर पड़े हुए प्रतिद्वंद्वी को ललकार रहा था।

लगभग उसके साथ ही विजयसिंह ने अपने अश्व को एड़ लगायी। वह सीधा कुछ अन्तर पर खड़ हुए चन्द्रशेखर के अश्व से जा टकराया जिसके परिणामस्वरूप चन्द्रशेखर उसकी पीठ पर से अपदस्थ होकर अपने प्रतिद्वंद्वी के निकट जा गिरा। वृक्ष से टूटी हुई बिजली अपना लक्ष्य चूक कर एक शिला-खंड सेजा टकरायी और धरती पर गिरकर चमकने लगी। वह एक भाला था जो चन्द्रशेखर के शिर को लक्ष्य बनाकर फेंका गया था।

उधर दक्षिणी पहाड़ी के ऊपर से एक वाण छूटा जिसे विजयसिंह भी नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देख पाया। परन्तु जब उसके तुरन्त पश्चात् वृक्ष की शाखाओं के बीच से एक भयानक चीत्कार हुआ तब उसकी दृष्टि उस ओर उठ गयी। उसने देखा हरे रंग के वस्त्र पहने हुए एक व्यक्ति पके फल-सा वृक्ष से नीचे गिर कर धरती पर पड़ा छटपटा रहा है।

चन्द्रशेखर की स्थिति समझने में अधिक समय नहीं लगा। वह विजयसिंह की ओर कृतज्ञता की दृष्टि से देखता हुआ तुरन्त खड़ा हो गया। उसका प्रतिद्वंद्वी अब भी धरती पर पड़ा हुआ था। उसे -सम्भवतः गिरने में अधिक चोट आ गयी थी। चन्द्रशेखर ने अपना भाला सँभालते हुए उसे फिर ललकारा, "मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। यदि सामर्थ्य हो तो उठो और युद्ध करो।"

धरती पर पड़े हुए भीमकाय तुरुष्क ने एक बार फिर उठने का असफल प्रयत्न किया और तज्जनित पीड़ा से कराहकर अपना शिर नीचे झुका लिया।

"इसे अब तुमसे लड़ने का कोई हक़ नहीं रहा है।"

चन्द्रशेखर ने पीछे घूमकर देखा। यह स्वर दूसरे तुरुष्क अश्वारोही का था जो न जाने कब चुपचाप आकर खड़ा हो गया था।

"क्यों ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

दूसरे तुरुष्क ने कहा, "हमारे यहाँ इस किस्म के मुकाबलों का ऐसा ही क़ायदा होता है। ये मुक़ाबले दिलेरी और महारत शाया करने की ग़रज़ से लड़े जाते हैं, जान लेने या जान देने के लिए नहीं। लिहाज़ा जिस वक्त यह जमीन पर गिरकर तुम्हारे ऊपर वार करने और तुम्हारा वार बचाने के काबिल नहीं रह गया उसी वक्त तुम्हारी फ़तह साबित हो गयी। क़ायदे के मुताबिक अब यह तुमसे नहीं लड़ सकता और इसकी तलवार पर तुम्हारा हक हो गया है।

"यदि नहीं लड़ सकता तो यह अब मेरा बंदी है," चन्द्रशेखर ने कहा, "क्योंकि यह युद्ध है, प्रतियोगिता नहीं है।"

"मगर हम इसे महज एक मुकाबला मानते हैं।"

"मैं इसे युद्ध के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानूँगा। प्रतियोगिता की स्थिति भिन्न होती है, और उसके अपने नियम होते हैं जिनका यहाँ पालन नहीं किया गया है, चन्द्रशेखर ने वृक्ष से गिरे हुए मृत तुरुष्क सैनिक की ओर देखकर कहा।

"तुम्हारी यह शिकायत जा है," तुरुष्क अश्वारोही ने उत्तर दिया। "हम तस्लीम करते हैं कि मुकाबले के दरम्यान उस कमबख़्त की दख़्लंदाज़ी सरासर नाजायज थी। हमें खुद इसका सख़्त अफ़सोस है। मगर वह नालायक अपनी हिमाक़त की वाजिब सज़ा पा चुका है, जिसकी हमें दिली खुशी है। हम यक़ीन करते हैं कि उसके साथी उसकी मौत से सबक हासिल करेंगे। मगर इस सबके बावजूद हम मौजूदा झगड़े को महज एक मुकाबला मानते हैं। लिहाज़ा तुम इसे क़ैद नहीं कर सकोगे।"

"नहीं कर सकूंगा ?" चन्द्रशेखर ने चुनौती के स्वर में कहा," मुझे कौन रोकेगा ?"

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"हम रोकेंगे," तुरुष्क ने अधिकार पूर्ण स्वर में उत्तर दिया, "अगर तुम क़ायदे के खिलाफ़ काम करने की कोशिश करोगे तो हम तुम्हें रोकेंगे। हमारे पास इतनी ताक़त है नौजवान।"

चन्द्रशेखर का अश्व निकट ही खड़ा था। कूदकर उसकी पीठ पर बैठता हुआ वह बोला, "यदि यह युद्ध का निमंत्रण है तो मैं सहर्ष ,स्वीकार करता हूँ।"

परन्तु तुरुष्क अश्वारोही ने युद्ध आरम्भ करने की तनिक भी तत्परता नहीं प्रदर्शित की। वह कुछक्षण तक निश्चेष्ट, मौन खड़ा-खड़ा स्थिर दृष्टि से चन्द्रशेखर की ओर देखता रहा, मानों उसे तौल रहा हो। शिरस्त्राण के नीचे से झाँकती हुई उसकी आँखों में एक ऐसी चमक, एक ऐसी तीक्ष्णता थी कि चन्दशेखर को शीघ्र ही एक विचित्र प्रकार की असुविधा का अनुभव होने लगा, जिसे छिपाने का प्रयास करते हुए उसने फिर ललकारा, "आओ, तुम भी अपनी शक्ति की परीक्षा कर लो। मैं अब भी इसे युद्ध ही मानता हूँ, फिर भी तुम्हारे पास भाला नहीं है इस कारण मैं इस अस्त्र का प्रयोग नहीं करूँगा।" यह कहते हुए उसने अपना भाला एक ओर फेंक दिया।

परन्तु तुरुष्क अश्वारोही इस पर भी युद्ध के लिए अग्रसर नहीं हुआ। पूर्ववत् अपने स्थान पर खड़े-खड़े उसने गम्भीर, निर्णय के स्वर में कहा, "मुझे तुमसे ऐसी ही उम्मीद थी, नौजवान। मेरे हाथ में भाला नहीं है, लिहाज़ा तुमने अपना भाला फेंक दिया है। इसी क़ायदे से हमें भी अपना जिरह-बख़्तर उतार देना चाहिए। मगर हम ऐसा नहीं कर रहे हैं। इसका मतलब समझते हो ?"

"हाँ, समझता हूँ," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।

"क्या ?"

"तुम डर गये हो, या अपने कुछ साथियों के आने की प्रतीक्षा कर रहे हो और तब तक मुझे बातों में उलझाये रखना चाहते हो।"

तुरुष्क ने हँसकर कहा, "तुम्हारे दोनों ख़्याल ग़लत हैं, नौजवान। मैं किसी के आने का इन्तजार नहीं कर रहा हूँ। मैं ख़ौफ़ज़दा भी नहीं हूँ। अगर इस बारे में तुम्हें ज़रा भी शक हो उसे अभी दूर कर लो। मैं तुम्हें वार करने की इजाजत देता हूँ। मगर मैं तुम्हारे ऊपर वार नहीं करूँगा।"

"तो तुम अपसे इन साथी को बचा भी नहीं सकोगे," चन्द्रशेखर ने कहा। "यह अब मेरा बंदी है।"

"क्या हमने तुम्हें पहले नहीं बताया कि इसकी हिफ़ाज़त के लिए हमारे पास काफ़ी ताकत है ? मगर तुम शायद उन इन्सानों में से हो जो देखे वग़ैर किसी चीज़ पर यकीन नहीं करते। तो लो, हम अभी दिखाये देते हैं।" यह कर तुरुष्क अश्वारोही ने अपना दाहिना हाथ शिर से ऊपर उठाया और चिल्लाकर अपनी भाषा में कुछ आदेश दिया, जिसके परिणामस्वरूप देखते-देखते सौ से अधिक तुरुष्क सैनिकों का एक दल पश्चिम की एक पहाड़ी के पीछे से निकलकर अपने भाले ऊँचे किये हुए शीघ्रतापूर्वक मार्ग की ओर बढ़ने लगा। वे अभी ढ़ाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर ही थे कि उनके पीछे पिपीलका-दल की भाँति सहस्रों और सैनिक भी निकल कर खुले में आ गये थे। परन्तु उनके 'आवाहक' ने उन्हें अधिक निकट नहीं आने दिया। फिर हाथ उठाकर उन्हें रुकने का संकेत करते हुए वह चन्द्रशेखर की ओर बोला, "हम बखूबी जानते हैं कि तुम भी इसी तरह अपने सिपाहियों को बुलाकर खड़ा कर सकते हो। मगर उससे हासिल कुछ नहीं होगा। महज़ खून-खराबा होगा, सैंकड़ों सिर कटेंगे, हज़ारों ज़ख्मी होंगे, फिर भी तुम इसे कैदी बनाकर नहीं ले जा सकोगे।"

जितने तुरुष्क सैनिक खुले में आ चुके थे उनकी संख्या देखकर चन्द्रशेखर का आत्म-विश्वास भी डगमगाने लगा था। उसके अपने सैनिक बिखरे हुए थे। पुल के निकट जितने सहज उपलब्ध थे उनकी अपेक्षा तुरुष्कों की संख्या कहीं अधिक थी। अतएव उसने बात टालते हुए कहा, "युद्ध से हम डरते नहीं हैं। परन्तु यहाँ सेनाओं को बीच में लाना आवश्यक नहीं है। सेनाओं को अलग रखकर हम द्वंद्व-युद्ध द्वारा सहज ही इस प्रश्न का निर्णय कर सकते हैं।"

तुरुष्क अश्वारोही ने कहा, "लेकिन हम तुम्हारे साथ न लड़ने का फ़ैसला कर चुके हैं। क्यों, इसे तुम शायद अभी नहीं समझ सकोगे। तुम्हारी उम्र का था तब मैं भी नहीं समझता था। मगर अब मैं इस नतीजे पर पहुँच चुका हूँ कि जांबाजों की अपनी अलग कौम होती है, और अगर नहीं होती है तो होनी चाहिए। लिहाज़ा अब हम मुल्क, मज़हब और कौम की हुदूद से ऊपर उठकर दिलेरी और जांबाज़ी की इज्ज़त करते हैं। तुम्हारे मुल्क में शायद उसकी उतनी कद्र नहीं होती जितनी होनी चाहिए। मगर हमारे यहाँ होती है। इसका सबूत हमारी फ़ौज है जिसमें तुम्हारे मुल्क और मज़हब के लोग भी ऊँचे ओहदों परहैं। खैर, मुख्त-सर बात यह है कि तुम एक दिलेर इन्सान हो और हम तुम्हारी इज्ज़त करते हैं। हम तुमसे लड़ने के लिए नहीं, तुम्हारी दोस्ती के लिए ख्वाहिशमंद हैं।"

यह कहकर वह मौन हो गया और चन्द्रशेखर के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। परन्तु चन्द्रशेखर के लिए यह स्थिति सर्वथा अकल्पित थी। अतएव उसने अपने आप को कोई निश्चय करने में असमर्थ पाकर सहायता के लिए विजयसिंह की ओर देखा।

परन्तु उसे ऐसा करते हुए देखकर तुरुष्क अश्वारोही ने विजयसिंह के कुछ कहने से पूर्व ही अपना शिरस्त्राण उठाते हुए कहा, "उधर देखने से कुछ भी हासिल न होगा, दोस्त। इधर मेरी तरफ़ देखो। मुझे पहचानते हो?"

जो मुख चन्द्रशेखर ने देखा वह स्वस्थ तो था किन्तु सुन्दर किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता था। उसके अंगों में अनुपात का अभाव नहीं था और सम्भव था वह कभी सुन्दर भी रहा हो। परन्तु माता शीतला उस पर अपने प्रकोप के ऐसे सघन और गहरे चिह्न अंकित कर गयीं थीं कि उसका सारा सौंदर्य क्षत-विक्षत हो गया था, और अब उसमें दो बड़ी-बड़ी अत्यधिक चमकीली आँखों के अतिरिक्त कुछ भी उल्लेखनीय नहीं रह गया था। वे आँखें उस समय चन्द्रशेखर के मुख पर केन्द्रित थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने नाटकीय प्रश्न की समुचित प्रतिक्रिया न देखकर तुरुष्क ने फिर कहा, "अगर नहीं पहचानते हो तो अब पहचान लो। मैं महमूद हूँ।"

इस घोषणा की अपेक्षित प्रतिक्रिया हुई। सूचना इतनी अप्रत्याशित थी कि चन्द्रशेखर और विजयसिंह दोनों आश्चर्य-चकित अपने सामने खड़े अश्वारोही का मुख देखते रह गये, और चन्द्रशेखर के मुख से केवल एक शब्द निकला, "सुल्तान!"

"हाँ, मगर तुम्हारे लिए नहीं," महमूद ने अपने अधिकारपूर्ण स्वर में यथा सम्भव मिठास घोलते हुए कहा, क्योंकि तुम हमारे हमक़ौम हो। हम हर दिलेर इन्सान को अपना हमक़ौम समझते हैं, जवांमर्द को अपना अज़ीज़ मानते हैं। इसका सुबूत तुम्हें कुछ दिन हमारे साथ रहकर आसानी से मिल सकता है। हमारी फ़ौज में तुम्हारे जैसे जांबाज़ों के लिए हमेशा गुंजाइश रहती है।"

इतना कह कर वह फिर मौन हो गया और चन्द्रशेखर के मुख पर अपने प्रस्ताव की प्रतिक्रिया देखने लगा।

चन्द्रशेखर पक्ष-परिवर्तन के इस प्रत्यक्ष प्रस्ताव को सुनकर तिलमिला उठा था। उसका मुख रक्तवर्ण हो गया था और जब वह बोला तो उसकी वाणी काँप रही थी। उसने उचित अभिमान के स्वर में कहा, "भारतीय वीरता की अपनी परम्परा है जिससे सुल्तान सम्भवतः परिचित नहीं हैं। हम निर्बल और असहाय को कभी नहीं सताते हैं, सुल्तान के समान दूसरों के धर्म पर आघात नहीं करते हैं, सुल्तान के समान युद्ध को व्यवसाय नहीं बनाते हैं, और सुल्तान के समान सेना जोड़ कर दस्यु-वृत्ति नहीं करते हैं। हम केवल अपने सम्मान और देश के गौरव के लिए लड़ते हैं, और युद्ध में भी धर्म का आचरण करते हैं। सुल्तान ने मुझे अपनी सेवा के योग्य समझा इसके लिए मैं आभारी हूँ, परन्तु हम भारतीय वीर अत्याचारियों को अपना शत्रु मानते हैं, उन्हें स्वामी अथवा मित्र कभी नहीं बना सकते।"

महमूद ने अपने शब्द में मधुरता और आग्रह की मात्रा बढ़ाते हुए कहा, "इस किस्म के अहम फ़ैसलों में जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए, नौजवान। ऊपर से तूफानी दिखने वाले समन्दर में क्या गोहर नहीं छिपे होते हैं? क़हक़शां के पीछे क्या ज़िन्दगी नहीं छिपी होती है? जो मुझे महज जालिम और बुतशिकन समझते हैं वे दर-अस्ल मुझे जानते ही नहीं हैं। मेरी फ़ौज में बहुत-से तुम्हारे हमवतन भी ऐसे हैं जो तुम्हारी राय से इत्तिफाक नहीं करेंगे। उन्होंने मुझे नज़दीक से देखा है। तुम भी जब नज़दीक से देखोगे तो इस ग़लतफ़हमी से नजात पा लोगे। हमने तुम्हारे रूबरू जो पेशकश की है वह बहुत सोच-समझकर की है। तुम्हें भी बहुत सोच-समझकर फ़ैसला करना चाहिए। लिहाज़ा तुम मसले पर बख़ूबी ग़ौर कर लो। अपने दोस्त से भी मशवरा कर लेना। फ़ैसला फ़ौरन ज़रूरी नहीं है, आगे कभी हो सकता है।"

"मुझे अथवा मेरे मित्र को किसी प्रकार का अभाव नहीं है," चन्द्रशेखर ने थोड़ा तनकर उत्तर दिया और क्षण भर रुककर फिर कहा, "इसके अतिरिक्त,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारी चन्देल सेना में क्रय-विक्रय का प्रचलन नहीं है ।"

परन्तु महमूद पर इस तीखे व्यंग की कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया नहीं हुई । उसने बड़े संयत स्वर में कहा, "हम तुम्हारे जज्बात की इज्जत करते हैं, नौजवान । हम बखूबी समझते हैं कि हर मुल्क का अपना अलग तौरो-तरीक़ा होता है । मगर हम यह भी जानते हैं कि वह तौरो-तरीक़ा नौजवानी के नज़रिये की तरह वक्त के साथ तब्दील होता रहता है । लिहाजा हम इस वक्त तुम्हारे साथ इस सवाल पर और बहस नहीं करेंगे । मगर हम तुम्हारी दिलेरी के क़ायल हैं और तुमसे बेहद खुश हैं । लिहाजा तुम हमारी दोस्ती क़ुबूल करो या न करो, मगर हम हमेशा तुम्हें अपना दोस्त और अज़ीज ही समझेंगे । इस वक्त भी हम अपनी खुशी का इज़हार करते हुए तुम्हें कुछ तोहफ़ा देना चाहते हैं, और तोहफ़ा भी तुम्हारी पसंद का ही देना चाहते हैं । बोलो, क्या दें ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "सुल्तान बड़े उदार हैं । आपकी उदारता की एक कहानी हमारे देश में भी प्रचलित है । परन्तु हमें वास्तव में कोई अभाव नहीं है ।"

चन्द्रशेखर ने उपर्युक्त बात दबे हुए व्यंग के स्वर में कही थी । परन्तु महमूद ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया । वह बोला, "तो तोहफ़ा भी आगे के लिए रखो । जब कभी तुम्हें हमारी ज़रूरत महसूस हो, या तुम समझो कि हम तुम्हारे लिए कुछ कर सकते है, तो हमें खबर करना । मगर खबर ज़रूर करना । वरना हमें हमेशा मलाल रहेगा कि हम अपने एक अज़ीज के लिए कुछ भी नहीं कर पाये ।"

यह कह कहकर महमूद ने दूर खड़े हुए अपने सैनिकों को हाथ से संकेत किया जिसके परिणामस्वरूप उनमें से कुछ आगे बढ़कर घटनास्थल के निकट आ गये । तब महमूद ने अपनी भाषा में उन्हें कुछ निर्देश दिया । सैनिक तुरन्त आहत अश्वारोही के निकट जा खड़े हुए और सहारा देकर उसे उठाने लगे । इधर महमूद ने चन्द्रशेखर को सम्बोधित करके फिर कहना आरम्भ किया, "देखा तुमने ? कितना भारी मज़ाक है ! यह हमारी हिफ़ाज़त करने के लिए साथ आया था और अब हमें खुद इसकी हिफ़ाज़त करनी पड़ रही है । मगर हमें इसका ज़रा भी अफ़सोस नहीं है । वाक़या यह है कि हम बेहद खुश हैं । यह अपने को बड़ा रुस्तम समझा करता था, मगर तुमने इसका सारा ग़ुरूर मिट्टी में मिला कर रख दिया है । हम तुमसे बेहद खुश हैं ।"

"दोष इसके भाग्य का था," चन्द्रशेखर ने कहा, "यह मुझसे नहीं, अपने भाग्य से हारा है ।"

"यह सही है", महमूद ने कहा, "हालांकि जंग में ऐसी बदक़िस्मती पूरी फ़ौज की शिकस्त का बाइस बन सकती है ।"

उधर महमूद के सैनिक उस व्यक्ति को सहारा देकर उसके अश्व पर चढ़ा चुके थे और दक्षिण की ओर चल दिये थे ।

महमूद कहता गया "यह ग़रीब अब मौजूदा जंग में क़तई हिस्सा नहीं ले सकेगा । तुमने उसे इस क़ाबिल नहीं रखा है । मगर हम तुम्हारा और इसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक मुक़ाबला और देखना चाहते हैं। इन्शा-अल्लाह हमें ज्यादा इन्तज़ार नहीं करना पड़ेगा। अच्छा नौजवान, ख़ुदा हाफ़िज़।" यह कह कर उसने अपना अश्व भी दक्षिण की ओर बढ़ा दिया।

परन्तु वह कुछ ही पग चलने के पश्चात् रुक गया और मुड़कर बोला, "अपने सिपाहियों को ताक़ीद कर दो कि किसी क़िस्म की हरकत न करें, वरना उनके एक तीर का जवाब हमारी हज़ार तलवारें देंगी।"

इसके पश्चात् अश्व दौड़ाता हुआ वह शीघ्र ही दृष्टि से ओझल हो गया।

चन्द्रशेखर और विजयसिंह कुछ क्षण तक खड़े-खड़े दक्षिण की ओर देखते रहे। जब महमूद दृष्टि से ओझल हो गया और उसके सैनिक फिर पहाड़ियों की ओट में चले गये तब ये दोनों भी नदी की ओर चले।

चलते-चलते सहसा चन्द्रशेखर ने कहा, "महमूद विचित्र व्यक्ति है!"

उत्तर में विजयसिंह ने केवल एक क्षीण-सा "हाँ" कहा। वह किसी विचार में खो गया था।

६

मध्याह्न होते-होते चन्द्रशेखर इस घटना की सूचना आनन्दपाल को देने के लिए शाही शिविर में पहुच गया। ऐसा करने का परामर्श उसे विजयसिंह ने दिया था। उसका तर्क यह था कि स्वयं महमूद का इस प्रकार स्थल-निरीक्षण के लिए निकलना एक महत्त्वपूर्ण घटना है जिसकी सूचना प्रधान सेनापति के पास अविलम्ब पहुँचनी चाहिए। चन्द्रशेखर स्वयं भी घटना को महत्त्वपूर्ण समझता था, अतएव वह भोजन करने के पश्चात् तुरन्त शाही शिविर की ओर चल पड़ा था। इस बार उसने विजयसिंह को अपने साथ नहीं लिया था, और विजयसिंह ने भी आग्रह नहीं किया था।

शाही शिविर में पहुँचकर चन्द्रशेखर ने आनन्दपाल को पहले की अपेक्षा अधिक प्रसन्न और उत्साहित पाया। दोनों पार्श्व सुरक्षित हो जाने के परिणामस्वरूप आश्वस्त होकर वह अब आक्रमण करने की स्थिति में था। यही उसकी प्रसन्नता का रहस्य था। और आक्रमण की योजना लगभग पूरी हो चुकी थी, इस कारण आज उसके उत्साह की सीमा नहीं थी।

चन्द्रशेखर से घटना का सम्पूर्ण विवरण सुनने के पश्चात् उसने कहा, "तुम्हारे क्षेत्र से इस प्रकार के समाचार की मैं प्रतीक्षा ही कर रहा था क्योंकि अभी कुछ समय पूर्व दक्षिण पार्श्व से ऐसी ही गतिविधियों की सूचना प्राप्त हुई है। स्पष्ट है कि तुरुष्क भी अब निष्क्रियता से ऊब गये हैं और आक्रमण की योजना बना रहे हैं। तुम्हारी ओर स्वयं महमूद के जाने का अर्थ यह है कि वे उस क्षेत्र को अधिक महत्त्व दे रहे हैं। हमें उनका यह सम्भावित आक्रमण रोकना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होगा। जानते हो सम्भावित आक्रमण को रोकने का सर्वोत्तम उपाय क्या होता है ?"

"स्वयं आक्रमण करना," चन्द्रशेखर ने तत्परतापूर्वक उत्तर दिया।

"हाँ, स्वयं शक्तिशाली आक्रमण करना," आनन्दपाल ने कहा, "और अब हमें अविलम्ब इस उयाय का प्रयोग करना होगा। योजना अपनी थी ही। मैं उसे कार्यान्वित करने की दिशा में भी पर्याप्त प्रगति कर चुका हूँ। अब हमें केवल यह निर्णय करना है कि हम शीघ्रतिशीघ्र कब, कहाँ और कैसे आक्रमण कर सकते हैं।"

इस निर्णय की खोज में चन्द्रशेखर को विलम्ब तक शाही शिविर में रुकना पड़ा। अनेक अधिकारी बुलाये गये जिनमें गक्खर सेना के नेतागण भी थे। परामर्श हुए, आक्रमण की नीति निर्धारित की गयी, सम्बन्धित अधिकारियों को आवश्यक निर्देश दिये गये, और इस सबके पश्चात् जब चन्द्रशेखर लौटा तब रात्रि हो चुकी थी।

विजयसिंह उसकी प्रतीक्षा में अभी जग रहा था। स्कंधावार के मध्य भाग में एक दीपक जल रहा था जिसका प्रकाश उसके चारों ओर एक छोटा-सा वृत्त बनाकर उसी में लहरा रहा था। इस वृत्त के बाहर एक कोने में विजयसिंह बैठा था। चन्द्रशेखर के प्रवेश करते ही वह उठकर खड़ा हो गया और संतोष की साँस लेकर बोला, "आगये ! मैं तो चिन्तित होने लगा था और खोज में निकलने वाला था।"

'मैं आक्रमण की योजना कार्यान्वित करने में सेनापति की सहायता कर रहा था। कल आक्रमण होना है।"

"कल ही ?"

"हाँ, कल प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में। आज की रात्रि हमारे लिए विश्राम की नहीं है। अभी अपने अधिकारियों को आवश्यक निर्देश देने होंगे। फिर कुछ समय पश्चात् निरीक्षण के लिए चलना होगा।"

"मैं तत्पर हूँ," विजयसिंह ने कहा, "मुझे क्या करना होगा ?"

"मेरी सहायता, जैसे मैं आनन्दपाल की करके आ रहा हूँ। अर्थात्, साथ रहना होगा परन्तु करना कुछ नहीं पड़ेगा।" यह कहकर चन्द्रशेखर हँस दिया। वह आज प्रातःकाल की घटना के पश्चात् से अपने इस साथी के प्रति एक गहरी आत्मीयता का अनुभव करने लगा था।

शीघ्र ही चन्देल सेना के प्रमुख अधिकारीगण उस स्कंधावार में आ एकत्र हुए और विलम्ब तक उनके साथ परामर्श करने के पश्चात् चन्द्रशेखर ने अपनी योजना प्रस्तुत की तथा सम्बन्धित अधिकारियों को विस्तृत निर्देश दिये। जब वे सब अपने-अपने निर्देश कार्यान्वित करने चले गये तब चन्द्रशेखर ने अपने पैर फैलाते हुए कहा, "अब हम घड़ी-भर विश्राम कर सकते हैं। सो नहीं सकेंगे, परन्तु विश्राम कर सकते हैं। फिर निरीक्षण के लिए निकलना होगा।"

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"मुझे विश्राम की आवश्यकता नहीं है," विजयसिंह ने कहा, "परन्तु तुम्हें होगी। दिन भर से दौड़ रहे हो, थक गये होगे। यदि थोड़ा-सा सो लेते तो अच्छा रहता। मैं जगता रहूँगा और कुछ समय पश्चात् तुम्हें भी जगा लूँगा।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "सोने के लिए ईश्वर की दया से कल फिर रात्रि होगी। तब निश्चिन्त होकर विश्राम और निद्रा, दोनों का आनन्द लेंगे।"

विजयसिंह ने कहा, "हाँ, ईश्वर की दया से कल फिर रात्रि होगी तो अवश्य, परन्तु तब हम निश्चिन्त होकर विश्राम और निद्रा का आनन्द ले सकेंगे, इसका क्या निश्चय है ? क्या उससे पूर्व ही न जाने कितने पूर्णतया निश्चिन्त होकर सो नहीं चुके होंगे ?"

चन्द्रशेखर मुस्कराकर बोला, "तुम्हारा यह पहला बड़ा युद्ध है न ?"

विजयसिंह ने गम्भीरतापूर्वक स्वीकारोक्ति में सिर हिला दिया।

"भय लग रहा है ?" चन्द्रशेखर ने फिर पूछा।

"भय ? नहीं। परन्तु मोह लग रहा है।"

"मेरी दृष्टि में दोनों एक हैं।"

"परन्तु मेरी दृष्टि में भिन्न हैं," विजयसिंह ने कहा।" मैं मृत्यु से भयभीत नहीं हूँ। इसका प्रमाण तुम्हें कल रणक्षेत्र में मिल जाएगा। जिसे तुम कायरता समझ रहे हो वह वास्तव में कायरता नहीं है। वह कातरता है, जिसे मैं मोह कहता हूँ। मुझे क्या करना है यह मैं भली प्रकार जानता हूँ। करूँगा भी वही। परन्तु मन दूसरी दिशा में भाग रहा है। मेरे सौभाग्य ने मुझे भविष्य के प्रति कातर बना दिया है। परन्तु तुम सम्भवतः मेरी वर्तमान मनःस्थिति को नहीं समझ सकोगे।"

"क्यों ?" चन्द्रशेखर ने कहा।

क्षण भर मौन रहने के पश्चात् विजयसिंह ने उत्तर दिया, "ईश्वर ने तुम्हें वह सौभाग्य प्रदान नहीं किया है, इसलिए। और स्पष्ट करूँ ? तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है, तुम किसी के पति नहीं हो, इस कारण मेरी समस्या को नहीं समझ सकोगे।"

चन्द्रशेखर मुस्करा दिया, "मुझे तुम्हारे सौभाग्य से ईर्ष्या नहीं है, मित्र। परन्तु यदि तुम अपनी समस्या स्पष्ट करो तो सम्भव है बिना अधिक समझे भी मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूँ।"

"करोगे ?" विजयसिंह ने कहा। "मुझे इस समय सहायता की आवश्यकता है, और तुम चाहो तो कर सकते हो। परन्तु करोगे ? वचन देकर कह सकते हो ?"

"कहा तो, करूँगा। मैं जो कुछ कर सकता हूँ वह अवश्य करूंगा।"

"मैं निश्चिन्त हो जाऊँ ?"

"हाँ, निश्चिन्त हो जाओ। मैं तुम्हारी प्रत्येक सम्भव सहायता करूँगा। परन्तु तुम अपनी समस्या तो बताओ।"

कुछ क्षण मौन रहने के पश्चात् विजयसिंह ने किंचित् संकोच के स्वर में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया, "समझ नहीं पा रहा हूँ कि कैसे कहूँ। समस्या वास्तव में मेरे सौभाग्य की है। मेरा विवाह हो चुका है। अधिक समय नहीं हुआ है, अभी दो वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं। और हो भी अपने आप गया। मैंने कोई प्रयत्न नहीं किया, कभी इस दिशा में विचार नहीं किया था। परन्तु जब हो गया तो मुझे अपने सौभाग्य पर गर्व होने लगा। उसका, और मेरी वर्तमान कातरता का कारण मेरी पत्नी है। मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता हूँ, उससे विलग नहीं होना चाहता हूँ। बस, यही मेरी समस्या है। वह वास्तव में ऐसी है कि दीपक लेकर खोजो तो भी दूसरी नहीं मिलेगी।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "और उसकी यह अद्वितीयता ही तुम्हें कातर बना रही है?"

"हाँ," विजयसिंह ने स्वीकार किया।

"और फिर भी तुम अपने आपको सौभाग्यशाली कहते हो? सौभाग्यशाली वास्तव में मैं हूँ, क्योंकि मेरा विवाह नहीं हुआ है। नारी पुरुष को कायर बना देती है।"

विजयसिंह ने थोड़ा उत्तेजित होकर कहा, "यह सत्य नहीं है। नारी पुरुष को कायर नहीं बनाती है। इसके विपरीत वह यश और वैभव के अर्जन की प्रेरणा प्रदान करती है। परन्तु तुम यह सब नहीं समझ सकोगे। मैंने पहले ही कहा था कि तुम मेरी वर्तमान मनःस्थिति को नहीं समझ सकोगे। अतएव इस सम्बन्ध में और कुछ कहना व्यर्थ होगा। अब तुम थोड़ा विश्राम कर लो।"

"मेरा यह तात्पर्य नहीं था," चन्द्रशेखर ने अपनी भूल को सुधारने का प्रयास करते हुए कहा, "विश्वास करो, मेरा यह तात्पर्य नहीं था। मैं वास्तव में नारी को नहीं समझता हूँ। परन्तु तुम्हारी समस्या को समझना चाहता हूँ।"

"व्यर्थ होगा," विजयसिंह ने उदासीन भाव से कहा।

"फिर भी प्रयास करना चाहता हूँ।"

"तुम उसे नहीं समझ पाओगे। प्रयास करना चाहते हो तो करके देख लो। परन्तु प्रयास भी केवल मेरी समस्या को ही समझने का करना। नारी को तुम कभी नहीं समझ सकोगे, यह निश्चित है। मैं भी नहीं समझ पाया हूँ। मेरी पत्नी बहुत अच्छी है, सदा प्रत्येक प्रकार से मुझे प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती है। फिर भी मुझे सदा यही लगता है कि मैं उसे पाकर भी नहीं पा सका हूँ। उसके भीतर कहीं कोई गहराई है जो मेरे लिए अगम्य है, सम्भवतः सदा अगम्य रहेगी।"

"यही तुम्हारी समस्या है?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"यह भी है। परन्तु इसका समाधान मैं स्वयं खोज लूँगा। वह मुझसे प्रेम करती है अथवा नहीं, यह उतनी बड़ी समस्या भी नहीं है। वह अपने पत्नीत्व के समस्त कर्तव्यों का पालन करती है, उसमें कभी तनिक-सी भी चूक नहीं होने देती। अतएव इस सम्बन्ध में मैं अधिक चिन्तित नहीं हूँ। मेरी मुख्य समस्या यह है कि मैं उससे बहुत प्रेम करता हूँ। पुरुष को जितने में संतुष्ट हो जाना चाहिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैं उतने में नहीं हो पाता हूँ। मैं उसकी सम्पूर्णता चाहता हूँ, जो मुझे कभी नहीं मिल पाती। मैं चाहता हूँ कि······"

विजयसिंह बोलते-बोलते अचानक मौन हो गया और कुछ क्षण तक इसी प्रकार खोया-खोया बैठा रहा। तत्पश्चात् उसने कुछ सुस्थिर होकर फिर कहना आरम्भ किया, "मैं जब कभी उसके विषय में सोचता हूँ तो मेरा मस्तिष्क इसी प्रकार भटकने लगता है। यह मेरी विवशता है। मुझे मृत्यु का भय नहीं है। परन्तु एक चिन्ता मेरा पीछा नहीं छोड़ती है। मेरे पश्चात् उसका क्या होगा? यदि मैं न रहा तो उसकी रक्षा कौन करेगा! इस विस्तृत संसार में न मेरा कोई ऐसा सम्बन्धी है, न उसका। और वह स्वयं अभी अल्पायु है, और मातृत्व की प्रतीक्षा कर रही है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "ऐसी स्थिति में तुम्हें युद्ध के लिए आना ही नहीं चाहिए था।"

"मैं स्वीकार करता हूँ। मुझे नहीं आना चाहिए था। परन्तु आ गया हूँ तो अब मुख नहीं मोड़ूँगा। स्वेच्छा से, मात्र कर्तव्य-भावना से प्रेरित होकर आया हूँ, तो अब उस कर्तव्य का निर्वाह भी करूँगा। विश्वास रखो, उससे मेरा मोह भी मुझे विचलित नहीं कर सकेगा। केवल उस थाती की चिन्ता नहीं छोड़ पाता हूँ जिसे महोत्सव नगर में छोड़ आया हूँ। उसकी चिन्ता कौन करेगा? यदि यह भार तुम स्वीकार करलो तो मैं निश्चिन्त होकर कर्तव्य-पालन कर सकूँगा।"

"मैं?" चन्द्रशेखर ने विस्मय के स्वर में कहा।

"हाँ, तुम। मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास है। यदि तुम वचन दे दो तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। यदि संसार में मेरा और कोई होता तो मैं कदापि तुम्हें कष्ट न देता। परन्तु मेरा और कोई नहीं है। मात्र तुम हो, जो ईश्वर की कृपा से मिल गये हो। भाई मानकर अथवा मित्र समझकर क्या मेरी इतनी सहायता नहीं करोगे?"

विषम अनिश्चय की स्थिति में चन्द्रशेखर ने कहा, "सहायता के लिए वचन-बद्ध हूँ, यथासामर्थ्य अवश्य करूँगा। परन्तु तुम स्वयं जानते हो कि यह युद्ध है। युद्ध वास्तव में अनिश्चय का ही दूसरा नाम है, इसमें कभी कुछ निश्चित नहीं होता। युद्ध-काल में दिया गया वचन भी बालू की भीत के समान होता है। यहाँ बड़े-बड़े संकल्पों को भी असि की तीक्ष्ण धार क्षण भर में काटकर रख देती है। और मैं युद्ध में कभी अपने को छिपाकर नहीं रखता हूँ। अतएव तुम्हारे संतोष के लिए मैं वचन तो दे सकता हूँ, परन्तु यह आश्वासन नहीं दे सकता कि कल संध्या तक अपने वचन का पालन, तथा तुम्हारी सहायता करने के लिए जीवित बैठा रहूँगा।"

विजयसिंह ने कहा, "उस दशा में दिया गया वचन भी तुम्हारे साथ चला जाएगा। परन्तु यह भी सम्भव है कि बैठे रहो। और यह भी सम्भव है कि मैं स्वयं बैठा रहूँ और तुम्हारी सहायता की आवश्यकता ही न पड़े। सम्भावना के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक मुख होते हैं, मित्र। परन्तु मैं इस समय उनमें से केवल एक को देख रहा हूँ। मैं न रहूँ और तुम रहो, मुझे केवल इस स्थिति के लिए आश्वासन चाहिए। दे सकोगे ?''

क्षण भर विचार करने के पश्चात् चन्द्रशेखर ने कहा, ''इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।''

''यदि मैं न रहा तो मेरी पत्नी के, और मेरी भावी सन्तान के जीवन और सम्मान की रक्षा करोगे ?''

''करूँगा, वचन देता हूँ,'' चन्द्रशेखर ने कहा।

विजयसिंह ने अपनी दोनों बाँहें उसके कंठ में डाल दीं और कहा, ''बस, अब मुझे कोई चिन्ता नहीं है।''

इसके पश्चात् कुछ समय तक दोनों मौन बैठे रहे। चन्द्रशेखर तो सम्भवतः विलम्ब तक इसी प्रकार बैठा रहता क्योंकि दिन भर के परिश्रम के पश्चात् अब वह थकान का अनुभव कर रहा था। परन्तु विजयसिंह सहसा उठकर खड़ा हो गया और अपना खड्ग उठाता हुआ बोला, ''निरीक्षण के लिए नहीं चलोगे ?''

७

आक्रमण का आरम्भ भारतीय पक्ष की ओर से हुआ, परन्तु दूसरी ओर तुरुष्क भी असतर्क नहीं थे। वास्तव में वे भी आक्रमण करने के लिए तत्पर सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रहे थे। लगभग चालीस दिन की निष्क्रियता से ऊबकर महमूद ने उस दिन सीमित आक्रमण करने का निश्चय कर लिया था और उसके पांच सहस्र चुने हुए धनुर्धर आगे की खाइयों में सुसज्जित बैठे थे। महमूद के स्कंधावार में उस समय सभी विशिष्ट अधिकारी एकत्र थे और सुल्तान उन्हें अन्तिम निर्देश दे रहा था।

तभी बाहर भारी कोलाहल आरम्भ हो गया।

आनन्दपाल की ओर से आक्रमण का आरम्भ गक्खरों ने किया था। नंगे सिर, नंगे पैर, ये अदम्य पहाड़ी वीर निःशब्द नदी के शीतल जल में उतर गये। उनके नंगे खड्ग तारों के क्षीण प्रकाश में चमक रहे थे। स्वयं आनन्दपाल पीछे से उनका संचालन कर रहा था।

नदी पार करके जैसे ही उनका पहला दल समतल तट पर पहुँचा, दूसरी ओर से वाणों की एक बाढ़ आयी और कई गक्खर पीड़ा से कराहते हुए धरती पर गिर गये। परन्तु शेष उनकी चिन्ता किये बिना शीघ्रतापूर्वक उस खाई की ओर बढ़े जहाँ से उन पर वाण-वर्षा हुई थी। इस अन्तर में उनका दूसरा, और फिर तीसरा दल किनारे के ढाल पर चढ़कर ऊपर आ गया। खाइयों से वाण-वर्षा होती रही, गक्खर वीर आहत हो-होकर गिरते रहे, परन्तु शेष अपने ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथियों को रौंदते हुए आगे बढ़ते रहे, शीघ्र ही कई सहस्र नग्न खड्ग अग्रिम तुरुष्क खाइयों में चमकने लगे। यह सब इतनी शीघ्रता के साथ हुआ कि तुरुष्क धनुर्धरों को न पीछे से सहायता मिल सकी, न स्वयं पीछे हटने का अवसर ही मिला। ये धनुर्धर दूर से घातक प्रहार कर सकते थे परन्तु असि-युद्ध के लिए तत्पर नहीं थे। परिणामतः गक्खरों ने मनचाहा और भयंकर नर-संहार किया। थोड़े ही समय में उन्होंने कई सहस्र तुरुष्कों का वध करके खाइयों पर अधिकार कर लिया।

तत्पश्चात् वे शिविर-केन्द्र में स्थित महमूद के स्कंधावार की ओर बढ़े।

इसी बीच उषा के प्रथम प्रकाश में आनन्दपाल ने भी नदी पार कर ली। उसके लौह-कवच से भली प्रकार सुसज्जित गज ने नदी के पश्चिमी तट पर पहुँचते ही अपना तूर्य-नाद किया जिसे सुनकर आगे और पीछे, दोनों ओर से जयकार का कर्ण-विदारक उद्घोष हुआ। आगे तीस सहस्र गक्खर थे, पीछे आनन्दपाल की इससे भी बड़ी अपनी नियमित सेना थी।

दूसरी ओर तुरुष्क सेना भी इस समय तक पूर्णतया सावधान हो चुकी थी और महमूद के स्कंधावार के चारों ओर व्यूह बनाकर खड़ी हो गयी थी। प्रथम आक्रमण के विस्मय तथा भयंकर नर-संहार से वह विचलित अथवा अव्यवस्थित नहीं हुई थी, यह उसके अनुशासित होने का प्रमाण था। उसके अनुशासन का केन्द्र-विन्दु सुल्तान महमूद स्वयं इस समय उसका निर्देशन कर रहा था। वह अपने स्कंधावार से बाहर निकलकर एक टीले पर आ खड़ा हुआ था। उसके सभी प्रमुख अधिकारी उसे घेरे खड़े थे और वह उन्हें निर्देश देने में व्यस्त था।

आनन्दपाल के गक्खर वीर अपनी प्रथम विजय के उत्साह में शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ते हुए तुरुष्क व्यूह के निकट तक तो सरलतापूर्वक पहुँच गये, परन्तु इसके पश्चात् उनके लिए आगे बढ़ना असम्भव हो गया और उनका उत्साह क्षीण पड़ने लगा। उन्होंने आशा की थी कि विस्मय से किंकर्तव्यविमूढ़ और आघात से जर्जर तुरुष्क सेना उन्हें पलायनरत मिलेगी और वे शिविर में स्वतंत्रतापूर्वक लूट-मार कर सकेंगे। परन्तु यहाँ दृश्य सर्वथा भिन्न था। तुरुष्क सेना सुव्यवस्थिति तथा व्यूहाकार उनके स्वागत के लिए तत्पर खड़ी थी, और व्यूह भी ऐसा था कि गक्खरों की अनियमित सेना के लिए उसे भेदना असम्भव प्रतीत हो रहा था। उन्होंने कई बार पहले की भाँति कुछ क्षति उठाकर तुरुष्क रक्षा-पंक्ति के निकट तक पहुँचने का प्रयास किया, परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। यहाँ तुरुष्कों की मार अधिक सुसंगठित तथा प्रभावपूर्ण थी। प्रकाश पर्याप्त हो जाने के कारण अब उनके धनुर्धरों को लक्ष्य साधने में कठिनाई नहीं हो रही थी, और गक्खरों के अरक्षित शरीर उनके अचूक वाणों से बिंध-बिंधकर धरती पर गिर रहे थे। परिणामतः गक्खरों ने आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे हटना आरम्भ कर दिया और सहायता तथा निर्देश के लिए आनन्दपाल के पास संदेश भेजा।

आनन्दपाल ने उन्हें अपने स्थान पर रुककर प्रतीक्षा करने का आदेश दिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और अपनी नियमित सेना को आगे बढ़ाया। यह सेना पूर्णतया प्रशिक्षित तथा कवच आदि से भली प्रकार सुरक्षित थी। संख्या में भी वह महमूद की सम्पूर्ण सेना से कम नहीं थी। उसने निर्देशानुसार अर्ध-वृत्त में फैलना आरम्भ कर दिया। आनन्दपाल शत्रु को चारों ओर से भली प्रकार घेरकर तब आक्रमण करना चाहता था।

तुरुष्कों की ओर से पूर्ववत् वाण-वर्षा हो रही थी। परन्तु अब आनन्दपाल की प्रथम पंक्ति के कवचधारी धनुर्धर उस वर्षा का समुचित उत्तर देने लगे थे जिसके परिणामस्वरूप तुरुष्कों की भी क्षति हो रही थी।

महमूद अपने स्कंधावार से वाहर टीले पर खड़ा बार-बार चारों ओर देख रहा था। उसके मस्तक पर चिन्ता की गहरी रेखाएँ थी, परन्तु उन रेखाओं ने उसे और भी अधिक सक्रिय बना दिया था। निरन्तर चारों ओर से संदेश आ रहे थे। वह तुरन्त, बिना अपने मंत्रियों अथवा सैनिक अधिकारियों से परामर्श किये, निर्णय कर लेता था और आवश्यक निर्देश भेज देता था। उसके मंत्री तथा अधिकारीगण अब भी उसे चारों ओर से घेरे खड़े थे। वे अत्यधिक चिन्तित और भयभीत दिखाई पड़ रहे थे। परन्तु महमूद के मुख पर भय का कहीं लेश भी न था। वह पराजय से परिचित नहीं था, उसके अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करता था।

सूर्य उठकर क्षितिज से ऊपर आ चुका था। नदी से वाष्प के छोटे-छोटे बादल आकाश की ओर उठने लगे थे। चारों ओर युद्ध का कोलाहल बढ़ता जा रहा था। आनन्दपाल का आक्रमण आरम्भ हो गया था। उसका वेग तुरुष्कों के दक्षिण पार्श्व की ओर अधिक था। महमूद ने स्थिति को समझकर तुरन्त उस ओर और सहायता भेजने की व्यवस्था की और सेनापति अमीर नस्र को स्वयं वहाँ जाकर निर्देशन सँभालने का आदेश दिया।

अमीर नस्र के चले जाने के पश्चात उसने अपने अन्य अधिकारियों को सम्बोधित करते हुए कहा, "आप हज़रात फ़िलहाल अगर और कुछ नहीं कर सकते हैं तो ख़ुदा-बन्द ताला से कुफ़्र के ख़िलाफ़ फ़तह की दरख्वास्त ही करें।

सहसा व्यूह के मध्य भाग में कोलाहल बढ़ने लगा। महमूद की दृष्टि उस ओर उठ गयी और वह कुछ समय तक उसी दिशा में देखता हुआ कुछ सोचता रहा। फिर उसने दृष्टि अपने सर्वाधिक विश्वस्त सेनापति की ओर घुमायी और कहा, "अल्तुन्तश, तुम फ़ौरन बायाँ बाज़ू सँभालो। हमें उस जानिब से हमला करना होगा। महज क़िलेबंदी से यह जंग फ़तह नहीं होगी।"

अल्तुन्तश के चले जाने के पश्चात् महमूद ने फिर ध्यानपूर्वक उसी दिशा में देखना आरम्भ किया जिधर कोलाहल अधिक हो रहा था। इस बार भी वह बिलम्ब तक शून्य में कुछ खोजता हुआ-सा उस ओर देखता रहा। सहसा उसकी आंखों में एक बिजली-सी कौंधी। उसने अपनी दृष्टि उस बिन्दु से हटाकर अपने चारों ओर दौड़ायी। वह मुजीब नामक एक युवा अंगरक्षक पर पहुँचकर वहाँ

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अटक गयी। सुल्तान ने आँखों से ही अपने अंगरक्षक को निकट आने का संकेत किया। मुजीब तुरन्त निकट आकर सिर नीचा किये हुए खड़ा हो गया।

महमूद ने धीमे स्वर में कहा, "मुजीब हम तुम्हारे तीरंदाज़ी के जौहर देख चुके हैं। ग़जनी को तुम पर नाज़ है। मगर हम एक बार फिर तुम्हारा इम्तहान लेना चाहते हैं। तैयार हो ?"

मुजीब ने सिर थोड़ा और नीचे झुकाकर कहा, "जहांपनाह हुक्म फ़र्माएँ, खाकसार बजा लाएगा।"

"मगर इम्तहान बहुत कठिन होगा," महमूद ने कहा, "और उसी क़दर अहम भी है। यह बख़ूबी समझ लो। कामयाब रहे तो सुर्खरू होगे और जागीर के हक़दार समझे जाओगे। और अगर—खुदा न करे—नाकामयाब रहे तो······ बस इतना समझ लो कि हम नाकामयाबी को कभी, कतई बर्दाश्त नहीं करते हैं।"

"बंदा हर इम्तहान के लिए तैयार है," मुजीब ने कहा।

"तो देखो," महमूद ने कहा, "उधर मेरी उँगली की सिम्त में देखो। वह स्याह पहाड़ दिखाई पड़ रहा है ?"

"हाथी है, जहाँपनाह" मुजीब ने कहा।

"हां, और उस पहाड़नुमा हाथी की पेशगी में दो चिराग टिमटिमा रहे हैं। उन्हें भी देख रहे हो ?"

"हाथी की आँखें हैं, जहाँपनाह।"

"ठीक ! तुम्हें उन चिरागों में से एक को गुल कर देना है। कौन-सा गुल होता है, और उसे गुल करने में तुम्हारे कितने तीर सर्फ होते हैं, इससे हमें कतई सरोकार नहीं है। मगर दो में से एक को गुल हो जाना चाहिए। अगर कामयाबी हासिल न हो तो अपने खंजर का इस्तेमाल करना, वर्ना हमें जहमत उठानी पड़ेगी। समझ गये ?"

मुजीब ने सिर झुकाकर बताया कि वह समझ गया है।

"तो जाओ," महमूद ने कहा। "फ़ासले से निशाना कारगर नहीं होगा। पहाड़ के नज़दीक पहुँचने की कोशिश करो। जितने नज़दीक से निशाना लोगे उतनी ही ज्यादा कामयाबी की उम्मीद कर सकोगे। मगर यह नज़रअन्दाज़ न करना कि फिलहाल तुम्हारी जान गज़नी की अमानत है, लिहाजा कोशिश करने तक उसे महफ़ूज़ रखना तुम्हारा पहला फर्ज़ है। जाओ, खुदा हाफिज। मगर तुम कामयाब रहे तो आज की फतह का सेहरा तुम्हारे सिर होगा।"

मुजीब सिर झुकाकर चुपचाप चला गया। उसके टीले से नीचे उतरते ही महमूद ने अपने चार अन्य अंगरक्षकों को उनके पीछे भेजा। उन्हें आदेश था कि मुजीब को क्षण भर के लिए भी अपनी दृष्टि से ओझल न होने दें और प्रत्येक विपत्ति से उसकी रक्षा करें।

उधर युद्ध प्रति क्षण अधिकाधिक भीषण होता चला जा रहा था।

तुरुष्क व्यूह का दक्षिण पार्श्व आघात सहते-सहते जर्जर हो चला था। अमीर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नस्र एक वीर तथा अनुभवी सेनापति था, परन्तु उस समय उसकी कोई युक्ति सफल नहीं हो रही थी। युद्ध चारों ओर फैल जाने के परिणामस्वरूप अब कहीं से सहायता आने का प्रश्न नहीं रह गया था। परन्तु आक्रमण करने वाली भारतीय सेना समुद्र की भाँति थी, उसकी लहरों का अन्त ही नहीं हो रहा था। लहर आती थी और तुरुष्क रक्षा-पंक्तियों के कूल को गिरा देती थी। अमीर नस्र उन्हें किसी प्रकार फिर उठाकर खड़ा कर देता था। परन्तु उसका यह कौशल अब अधिक समय तक चलता प्रतीत नहीं हो रहा था। स्वयं नस्र भी निश्चय के साथ यह नहीं कह सकता था कि उसका पार्श्व कब तक खड़ा रह सकेगा।

दूसरे छोर पर वाम पार्श्व अभी अपेक्षाकृत शान्त था। वहाँ युद्ध नहीं हो रहा था परन्तु व्यवस्था कम नहीं थी। दोनों ही पक्ष आक्रमण के लिए तत्पर हो रहे थे। अल्तुन्तश ने अपना उत्तरदायित्व सँभाल लिया था और प्रतिरक्षा के लिए व्यवस्थित सैनिकों का आक्रमण के लिए पुर्नियोजन करने में व्यस्त था। दूसरी ओर गक्खर पीछे से आ-आकर एकत्र हो रहे थे। आनन्दपाल ने यह पार्श्व उन्हें सौंप दिया था।

मध्य की स्थिति, तुरुष्कों के दृष्टिकोण से, शीघ्रतापूर्वक गम्भीर होती जा रही थी। इस क्षेत्र में आनन्दपाल की सेना का मुख्य भाग केन्द्रित था, और प्रतिशोध का भूखा आनन्दपाल स्वयं उसका संचालन कर रहा था। तुरुष्कों की ओर से भी यहाँ प्रतिरक्षा की विशेष व्यवस्था थी क्योंकि यह क्षेत्र महमूद के स्कंधावार से अधिक दूर नहीं था। इस समय तक वहाँ आनन्दपाल के अश्वारोहियों द्वारा कई आक्रमण किये जा चुके थे। परन्तु तुरुष्क रक्षा-पंक्तियाँ आक्रमण की प्रत्येक लहर को शिला-खंड की भाँति झेल रही थीं। लहर आती थी, और टकराकर बिखर जाती थी; शिलाखंड अविचलित खड़ा था।

सहसा लहरों का आना रुक गया। शाही सेना के अश्वारोही सैनिक थोड़ा पीछे हटे और मध्य से दो भागों में विभाजित होकर इधर-उधर खड़े हो गये। उनके पीछे खड़े हुए पदातियों ने भी ऐसा ही किया। इस प्रकार बीच में से एक चौड़ा मार्ग बन गया जिसके दोनों ओर आनन्दपाल के अश्वारोही तथा पदाति सैनिक पंक्तिबद्ध, मानों किसी परम सम्मान्य अभ्यागत के स्वागतार्थ, खड़े थे। शीघ्र ही उस पथ पर प्रतिक्षित अभ्यागत भी प्रकट हुए। ये आनन्दपाल की सेना के प्रशिक्षित गजराज थे, जिन्हें अब अवरोध को कुचल देने के लिए आगे लाया जा रहा था। प्रत्येक गज मर्मस्थलों में लौह-वर्म्म से भली प्रकार सुरक्षित एक छोटा-मोटा, चलता-फिरता दुर्ग था। ये गज इस समय अपनी काव्य-विश्रुत गति को विसराकर बड़े वेग से आगे बढ़े चले आ रहे थे।

तुरुष्कों के पास इस आक्रमण का कोई उत्तर नहीं था। इसी कारण भारतीय सेना के इस अंग से उन्हें सबसे अधिक भय लगता था। खुले मैदान में वे अपने सधे हुए अश्वों की क्षिप्रता का प्रयोग करके किसी प्रकार इस आक्रमण का निराकरण कर लेते थे। परन्तु इस समय युद्ध खुले मैदान का नहीं था। तुरुष्क सेना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यूहबद्ध थी और युद्ध नदियों तथा पर्वतों से घिरे सँकरे क्षेत्र में हो रहा था। भागना असम्भव था। पीछे हटना भी सम्भव नहीं था क्योंकि पीछे महमूद का स्कंधावार था।

अतएव तुरुष्क धनुर्धरों ने अपने धनुष सँभाले और निकट आते हुए हाथियों पर वाण-वर्षा आरम्भ कर दी। परन्तु हाथी, भाग्य-चक्र की भाँति अबाध, आगे बढ़े चले आ रहे थे। उन्हें रोकना असम्भव प्रतीत होता था। जिसके पैर अथवा पार्श्व में वाण लगता था वह एक बार अपनी सूंड़ ऊँची करके भयानक गजनाद करता था और फिर द्विगुणित वेग से उन्मत्त डग बढ़ाता हुआ आगे की ओर दौड़ पड़ता था।

इस प्रकार आनन्दपाल की गज-सेना निकट आती गयी और शीघ्र ही तुरुष्क व्यूह की अग्रिम पंक्तियों में मर्मान्तिक चीत्कार के स्वर उठने लगे। आनन्दपाल के अश्वारोहियों ने भी गज-सेना की आड़ लेकर आगे बढ़ना आरम्भ कर दिया। अपने गज पर आरूढ़ आनन्दपाल स्वयं अपनी सम्पूर्ण सेना का संचालन कर रहा था।

परन्तु भाग्य-परिवर्तन की गति विचित्र होती है, और युद्धक्षेत्र में और भी अधिक विचित्र हो जाती है। जो विजय के द्वार पर खड़ा था वह पराजित होता है, और जो पराजय की घड़ियां गिन रहा था वह विजय-श्री का वरण करता है। युद्ध का अनिश्चय युद्ध की विभीषिका से कम नहीं होता है।

ओहन्द के युद्ध में भी भाग्य-परिवर्तन बड़ी विचित्र गति से हुआ।

आनन्दपाल की गज-सेना तुरुष्कों को रौंद रही थी। तुरुष्क मर रहे थे और भागने का मार्ग खोज रहे थे। महमूद टीले पर खड़ा यह दृश्य देख रहा था। उसके मस्तक पर चिन्ता की रेखाएँ बहुत गहरी हो गयीं थीं और उसका अविजित आत्म-विश्वास डगमगाने लगा था।

तभी आगे बढ़ता हुआ आनन्दपाल का गज सहसा खड़ा हो गया। उसकी सूंड़ आकाश की ओर उठी और उसने एक मर्मान्तक चीत्कार किया। उसके पश्चात् वह पीछे की ओर घूम कर इस प्रकार भागा मानो सहस्र यातनाएँ उसका पीछा कर रही हों। वह नदी पर नहीं रुका, नदी पार आकर भी नहीं रुका। वह केवल भागता गया, और उसकी पीठ पर विवश बंदी-सा बना आनन्दपाल समझ भी नहीं पाया कि क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है।

इस घटना ने युद्ध का पांसा पलट दिया। अपने स्वामी तथा सेनापति को इस प्रकार भागते हुए देखकर शाही सैनिकों ने भी उसका अनुकरण किया। गज-सेना, अश्वारोही, पदाति—सब शिर पर पैर रखकर भागे, सब बिना सोचे-समझे भागे। जिसको जिधर मार्ग मिला वह उधर भाग निकला।

और दूसरी ओर तुरुष्क सेना में महमूद का आदेश घूम गया—"पीछा करो। एक भी काफ़िर बच कर न जाने पाए।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८

चन्देल सेना भारतीय प्रतिरक्षा-वृत्त के उत्तरी छोर पर थी, अतएव आनन्द-पाल के अश्व पलायन का समाचार उसे विलम्ब तक प्राप्त नहीं हो सका।

उस छोर पर तुरुष्क आक्रमण की विशेष आशंका थी, अतएव चन्द्रशेखर ने अपनी अधिकांश सेना नदी के पश्चिमी तट पर नियोजित कर रखी थी। इसमें अवसर के अनुसार स्वयं आक्रमण करने की भी सुविधा थी। निश्चय यह हुआ था कि उचित समय पर आनन्दपाल का निर्देश मिलते ही चन्द्रशेखर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से तुरुष्कों के पार्श्व पर आक्रमण कर देगा।

प्रतीक्षा करते-करते मध्याह्न निकट आ गया था परन्तु अभी तक न तो उस ओर तुरुष्कों का आक्रमण हुआ था, न आनन्दपाल का कोई निर्देश ही प्राप्त हुआ था। चन्द्रशेखर व्यग्रतापूर्वक कभी नदी के इस पार आ जाता था तो कभी फिर उस पार लौट जाता था। विजयसिंह छाया की भाँति उसके साथ लगा था, और उससे भी अधिक व्यग्र था। एक बार अपनी व्यग्रता को शब्द देते हुए उसने कहा, "मैं जाकर देख न आऊँ?"

"देखना क्या है?" चन्द्रशेखर ने अकारण झुँझलाकर कहा।

"यही कि स्थिति क्या है। अनिश्चय अब असह्य हो चला है।"

चन्द्रशेखर का स्वर बदला। उसने कहा, "हाँ स्थिति का कुछ पता तो लगना ही चाहिए : मैं अभी किसी सैनिक को भेजता हूँ।"

"सैनिक से प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा," विजयसिंह ने आपत्ति की। "यदि आनन्दपाल से मिलना आवश्यक हुआ तो सैनिक क्या करेगा? मैं स्वयं जा रहा हूँ। सैनिक मेरे साथ चल सकता है।"

चन्द्रशेखर ने इसका विरोध नहीं किया, और विजयसिंह एक सैनिक को साथ लेकर दक्षिण की ओर चला गया।

उसके जाने के कुछ समय पश्चात् चन्देल सेना के पृष्ठ भाग से कुछ सैनिक एक अश्वारोही को पकड़कर चन्द्रशेखर के सामने लाये। वह आनन्दपाल की सेना का था और इस समय अत्यधिक भयभीत तथा अस्त-व्यस्त स्थिति में था। उससे बार-बार पूछने पर चन्द्रशेखर को युद्ध की वर्तमान स्थिति का कुछ आभास हुआ। परन्तु स्पष्ट स्थिति फिर भी नहीं ज्ञात हो सकी क्योंकि अश्वारोही अत्यधिक आतंकित था और स्वयं भी निश्चित रूप से अधिक नहीं जानता था। कभी कहता था कि महाराज आनन्दपाल खेत रहे हैं, तो कभी कहता था कि वे रण-क्षेत्र से पलायन कर गये हैं और सौगंध खाता था कि उसने अपनी आँखों से उन्हें गजारूढ़ भागते हुए देखा है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं रह गया था कि युद्ध हारा जा चुका है। उसने बताया कि तुरुष्क बड़ी संख्या में नदी के इस पार आ चुके हैं और प्राण लेकर भागती हुई भारतीय सेनाओं का पीछा कर रहे हैं।

इतना जानकर चन्द्रशेखर को अपने कर्तव्य का निश्चय करने में अधिक समय नहीं लगा। उसके सामने वास्तव में पलायन के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं था। उसने पहले नदी के पूर्व में जितनी चन्देल सेना थी उसे पीछे हटकर पहाड़ी की ऊंचाई पर स्थान ग्रहण करने का आदेश दिया। इसके पश्चात् उसने नदी के उस पार जाकर वहाँ नियुक्त अपनी शेष सेना को भी पीछे भेजना आरम्भ किया।

परन्तु यह प्रत्यागमन पूरा होने से पहले ही तुरुष्क अश्वारोही वहाँ आ पहुंचे। इसका अर्थ बहुत स्पष्ट था। चन्देलों के अतिरिक्त शेष भारतीय सेना ओहन्द के रणक्षेत्र से पलायन कर चुकी थी।

सौभाग्य से तुरुष्कों का जो दल इस ओर आया था वह अधिक बड़ा नहीं था। उसमें लगभग दो सौ अश्वारोही रहे होंगे। चन्द्रशेखर को इन्हें पीछे खदेड़ देने में तनिक भी कठिनाई नहीं हुई।

परन्तु वह भली प्रकार जानता था कि शीघ्र ही और बड़े दल आएंगे जिन्हें पीछे हटाना इतना सरल नहीं होगा। और ऐसा ही हुआ भी। सारे चन्देल सैनिक नदी पार करने में सफल नहीं हो सके।

जो रह गये थे उन्हें अपने भाग्य पर छोड़कर चन्द्रशेखर ने शेष के साथ तुरुष्कों से लड़ते हुए पीछे हटना आरम्भ किया। उसमें उसके सैनिक लाभ की स्थिति में थे। वे पहाड़ी पर आगे-आगे चढ़ रहे थे और सदा अपना पीछा करने वालों की अपेक्षा अधिक ऊँचाई पर होते थे जिसके परिणामस्वरूप उनके धनुर्धरों को प्रहार करने की अधिक सुविधा होती थी। तथापि पहाड़ी के ऊपर तक पहुँचते-पहुँचते उनमें से अनेक मारे जा चुके थे और उनसे भी अधिक घायल होकर गिर चुके थे।

परन्तु पहाड़ी के ऊपर पहुँचकर चन्द्रशेखर का पक्ष अधिक प्रबल हो गया क्योंकि वहाँ उसकी आधी से अधिक सेना पहले से अपने साथियों की प्रतीक्षा कर रही थी। अतएव वहाँ पहुंचकर चन्द्रशेखर ने पीछे हटने की प्रक्रिया स्थगित कर दी।

उसे रुकते देखकर पीछा करने वाले तुरुष्क भी जहाँ थे वहीं रुक गये। परन्तु वे पीछे नहीं लौटे, जहाँ थे वहीं खड़े रहे। उनके नेताओं ने परस्पर कुछ परामर्श किया जिसके परिणामस्वरूप उनके दो सैनिक शीघ्रतापूर्वक अश्व दौड़ाते हुए ढाल उतर कर दक्षिण की ओर चले गये। इसे चन्द्रशेखर ने भी देखा, और समझा। स्पष्ट था कि पीछे से अधिक सहायता के लिए संदेश भेजा गया है। इससे चन्द्रशेखर सशंकित हो गया। वह जानता था कि अधिक तुरुष्क सेना आ जाने पर उसके लिए भागकर बच निकलना बहुत कठिन हो जायगा।

अतएव उसने अपनी सेना को यथासम्भव शीघ्रता के साथ पहाड़ी के दूसरी ओर नीचे उतरकर उद्भाण्ड का मार्ग पकड़ लेने का आदेश दिया। वह स्वयं थोड़े से धनुर्धरों के साथ पीछे रुक गया, और जब तक सेना पहाड़ी उतर कर मार्ग पर नहीं पहुँच गयी तब तक वाण वर्षा द्वारा पीछा करने वालों को रोके रहा। इसके पश्चात् शीघ्रतापूर्वक अश्व दौड़ाते हुए वह तथा उसके साथी भी पहाड़ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का ढाल उतर कर मार्ग पर आ लगे।

परन्तु मार्ग तक पहुँचते-पहुँचते उसे सहसा विजयसिंह का ध्यान आ गया और उसके मस्तिष्क को एक कष्टकर धक्का लगा। वह सोचने लगा—विजयसिंह निश्चिय ही तुरुष्कों के हाथ पड़ गया होगा और सम्भवतः मारा जा चुका होगा।

अवशिष्ट चन्देल सेना व्यवस्थित, किन्तु द्रुत गति से, भागी चली जा रही थी। चन्द्रशेखर पीछे-पीछे चल रहा था। वह बार-बार पीछे घूमकर देख लेता था। इस प्रकार लगभग दो कोस निकल जाने के पश्चात् यह निश्चित-सा हो गया कि उनका पीछा नहीं किया जा रहा है।

चन्द्रशेखर के मस्तिष्क में इस समय केवल एक विचार बार-बार उठ रहा था। उसका मन कह रहा था कि विजयसिंह अभी मरा नहीं है, वह सम्भवतः घायल हो गया होगा और नदी के किनारे ही कहीं पड़ा एक घूंट जल के लिए तरस रहा होगा। अन्त में उससे नहीं रहा गया। उसने अपने एक सहायक को आवश्यक निर्देश दिये और स्वयं घूमकर अकेले ही फिर रणक्षेत्र का मार्ग पकड़ा।

—९—

चन्द्रशेखर ने धीरे-धीरे सतर्कता पूर्वक फिर पहाड़ी के ऊपर पहुँच पहले टोह ली। तुरुष्क लौट कर जा चुके थे और नीचे का सम्पूर्ण क्षेत्र निर्जन पड़ा था। किसी ओर से कराहने का स्वर भी नहीं आ रहा था। केवल नदी मार्ग के शिला-खडों से टकराती, शब्द करती हुई वह रही थी। शेप सब शान्त था, निश्चल था, निःशब्द था।

चन्द्रशेखर ने अपना अश्व ओट लेकर एक वृक्ष से बाँध दिया और स्वयं सतर्कतापूर्वक पैदल नीचे उतरना आरम्भ किया। परन्तु थोड़ी दूर चलने के पश्चात् उसने अपना विचार बदल दिया। वह पीछे लौट आया और अश्व को खोलकर फिर उस पर आरूढ़ हो गया। नीचे कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ रहा था, अतएव अश्व पर जाने में कोई भय नहीं था।

धीरे-धीरे पहाड़ी से नीचे उतर कर वह उस स्थान पर आया जहाँ युद्ध से पूर्व चन्देल सेना का शिविर था। शिविर का वहाँ अब कोई चिह्न शेप नहीं रह गया था। इधर-उधर आहत सैनिक जरूर पड़े थे, परन्तु वे सब मूक तथा निश्चेष्ट हो चुके थे। जीवन का कहीं कोई चिह्न नहीं था। लगता था तुरुष्कों ने घायल सैनिकों को भी जीवित नहीं छोड़ा था। चन्द्रशेखर को उनके शस्त्रास्त्र भी नहीं दिखाई पड़े। उन्हें तुरुष्क उठा ले गये थे।

चन्द्रशेखर ने कुछ शवों की निकट से परीक्षा की। वे सब निश्चय ही चन्देल सैनिकों के थे। उनमें तुरुष्कों का एक भी नहीं था।

इनमें विजयसिंह का शव मिलने की अधिक सम्भावना नहीं थी क्योंकि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रशेखर ने उसे लौटकर शिविर के निकट तक आते नहीं देखा था। अतएव उसने बड़ी सतर्कता के साथ दक्षिण की ओर बढ़ना आरम्भ किया। कुछ समय पश्चात् उसे अपनी यह सतर्कता अनावश्यक प्रतीत होने लगी क्योंकि जहाँ तक दृष्टि जाती जी वहाँ तक कोई जीवित दिखाई नहीं पड़ रहा था। वन्य-पशु पक्षी भी अभी नहीं आये थे। चारों ओर नीरव शान्ति थी मानों कहीं कुछ हुआ ही न हो।

परन्तु चन्द्रशेखर की सतर्कता वस्तुतः अनावश्यक नहीं थी, इसका प्रमाण उसे शीघ्र ही मिल गया।

दक्षिण की ओर वह बढ़ता हुआ अधिक दूर नहीं जा पाया था कि सहसा ठिठक कर रुक जाना पड़ा। उससे थोड़ी दूरी पर एक जीवित पुरुषाकृति घुटनों के बल पृथ्वी पर झुकी हुई किसी कार्य में व्यस्त थी। चन्द्रशेखर तुरन्त बिना शब्द किये अश्व पर से उतर पड़ा और अश्व को वहीं खड़ा छोड़कर धीरे-धीरे उस आकृति की ओर बढ़ा। वह व्यक्ति अपने कार्य में इतना तन्मय था कि चन्द्रशेखर उसके बहुत निकट तक पहुँच गया फिर भी उसे पता नहीं चला। वह एक तुरुष्क सैनिक था जो एक भारतीय शव के ऊपर झुका हुआ उसके भुजबंध निकालने का प्रयत्न कर रहा था परन्तु न जाने क्यों उसमें सफल नहीं हो पा रहा था। सहसा, चन्द्रशेखर के देखते-देखते, उसने अपने खड्ग से शव की भुजा काट-कर अपनी कठिनाई का समाधान निकाल लिया। यह वीभत्स दृश्य देखकर चन्द्रशेखर का मन न जाने कैसा-कैसा होने लगा और उसका हाथ अपने आप खड्ग पर जा पहुँचा। वर्तमान स्थिति में क्षात्र-धर्म के पालन का प्रश्न अथवा अवकाश नहीं था। प्रश्न केवल यह था कि सामने की इस बाधा को बिना अधिक शब्द किये किस प्रकार दूर किया जाए। यह कार्य चन्द्रशेखर के खड्ग ने पूरा किया। एक प्रहार में ही लोभी तुरुष्क का शिर उसके शेष शरीर से दूर जा गिरा। परन्तु भुजबंध फिर भी उसके हाथ से नहीं छूटा।

चन्द्रशेखर लौटकर फिर अपने अश्व पर आरूढ़ हो गया और आगे बढ़ा। थोड़ा ही आगे जाने के पश्चात् उसे एक बार फिर रुक जाना पड़ा। इसका पहला कारण यह था कि संध्या घनी होने लगी थी और अधिक आगे तक का मार्ग स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ रहा था। परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण दूसरा कारण यह था कि आगे तुरुष्क थे। इसका आभास चन्द्रशेखर को नदी के दोनों ओर कई स्थानों पर अग्नि जलती हुई देखकर मिला। लाल प्रकाश की पृष्ठ-भूमि में चलती-फिरती अनेक मानवाकृतियाँ भी दिखायी पड़ रही थीं।

रुकना आवश्यक हो गया था इस कारण चन्द्रशेखर रुक गया, परन्तु विजय सिंह का कुछ पता पाये बिना उस स्थान से लौट जाना उसे उचित नहीं प्रतीत हुआ। वास्तव में यदि वह लौटने का निश्चय भी करता तो उस समय उसे कार्यान्वित करना लगभग असम्भव था। अंधकार बड़ी शीघ्रता के साथ बढ़ता जा रहा था। अतएव उसने वह रात्रि वहीं कहीं छिपकर व्यतीत करने का निश्चय किया। शीघ्र ही उसने इस कार्य के लिए उपयुक्त स्थान भी खोज लिया। वह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक गुफा थी जो युद्धक्षेत्र से थोड़ा हटकर होने के कारण सुरक्षित, तथा अधिक दूर न होने के कारण, उपयुक्त थी। चन्द्रशेखर ने अपना अश्व गुफा-द्वार से कुछ अन्तर पर एक वृक्ष से बांध दिया और स्वयं गुफा के अन्धकार में जा बैठा।

वह रात्रि चन्द्रशेखर के लिए बहुत बड़ी, बहुत लम्बी सिद्ध हुई।

निद्रा प्रयास करने पर भी उसके निकट नहीं आयी। कुछ दिन भर की थकान के कारण, कुछ भूख-प्यास के कारण जिसका अब उसे तीव्र अनुभव होने लगा था, और सबसे अधिक चारों ओर फैली हुई मृत्यु की नीरवता के कारण, उसकी आँख लग-लगकर फिर खुल जाती थी।

अन्त में प्यास से विकल होकर वह गुफा के बाहर निकल आया और अन्धकार में मार्ग खोजता हुआ धीरे-धीरे नदी की ओर चला। उस समय रात्रि आधी से अधिक व्यतीत हो चुकी थी। चारों ओर चांदनी छिटकी हुई थी, और कल-कल-रव सम्पूर्ण वातावरण में व्याप्त था। वन्य पशु बड़ी संख्या में एकत्र हो चुके थे और सर्वत्र बिखरे हुए शवों के साथ मनमानी करते घूम रहे थे। कभी-कभी खाद्य-सामग्री की बहुलता पर हर्ष प्रकट करते हुए वे सामूहिक संगीत का प्रदर्शन भी करने लगते थे।

चलते-चलते चन्द्रशेखर सहसा ठिठक कर खड़ा हो गया। वन्य पशुओं ने भयभीत पलायन आरम्भ कर दिया था। वे चन्द्रशेखर से दूर नहीं, अपने भोज-क्षेत्र से ही दूर भागे जा रहे थे। उनमें से कई उसके पैरों को छूते हुए, अथवा उसके बहुत निकट से कतरा कर निकलते जा रहे थे। स्पष्ट था कि उनके भय का कारण वह स्वयं नहीं है। उसने दृष्टि गड़ाकर दक्षिण की ओर देखा। परन्तु चन्द्रमा के प्रकाश में जहाँ तक उसकी दृष्टि पहुँच सकी वहाँ तक भागते हुए वन्य पशुओं के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। अतएव उसने सोचा कि ये शवाहारी पशु सम्भवतः अपने अहेरी किसी बड़े पशु की गंध पाकर भाग रहे होंगे। उसका हाथ अपने खड्ग पर जा पहुँचा, और उसने फिर नदी की ओर चलना आरम्भ कर दिया।

परन्तु वह अधिक दूर नहीं जा पाया। उसके पैर फिर एक बार चलते-चलते अपने आप रुक गये। अब सन्देह का प्रश्न नहीं रह गया था। दक्षिण से निकट आती हुई अश्व-चाप स्पष्ट सुनाई पड़ने लगी थी।

चन्द्रशेखर तुरन्त लौट पड़ा और शीघ्रतापूर्वक, पशुओं का अनुकरण करता हुआ, अपनी गुफा की ओर दौड़ चला। अश्व-चाप निकट आती जा रही थी। उसने भी गति बढ़ा दी।

कुछ समय पश्चात् अपनी गुफा के निकट एक शिला-खंड की ओट से उसने कई अश्वारोहियों को यथासम्भव द्रुत गति से उत्तर की ओर जाते हुए देखा। उसे शंका हुई। क्या वे तुरुष्क उसकी ही खोज में हैं? यदि उन्होंने उसे अथवा उसके अश्व को देख लिया तो? वह तुरन्त गुफा के भीतर जाकर छिप गया।

परन्तु इसके कुछ समय पश्चात् उसके लिए गुफा के भीतर बैठे रहना असंभव

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो गया। बाहर भारी कोलाहल होने लगा था। चन्द्रशेखर को ऐसा लगा मानों सम्पूर्ण तुरुष्क सेना प्रयाण कर रही हो। उसने गुफा-द्वार से झाँक कर देखा। उसका अनुमान सत्य था। पंक्ति के पंक्ति तुरुष्क सैनिक सम-गति से उत्तर की ओर चले जा रहे थे। उनका मार्ग गुफा के पर्याप्त अन्तर पर था, अतएव चन्द्रशेखर सतर्कतापूर्वक गुफा से निकलकर बाहर आ गया। अब वह सम्पूर्ण दृश्य स्पष्ट देख सकता था क्योंकि दूधिया चाँदनी अभी भी चारों ओर फैली हुई थी। तुरुष्क सेना उसी पहाड़ी के ऊपर चढ़ती चली जा रही थी जिसे पार करके चन्देल सेना ने पलायन किया था। क्या महमूद उद्भाण्ड पर आक्रमण करने जा रहा है ? चन्द्रशेखर के मस्तिष्क में सहसा यह प्रश्न उठा। परन्तु इस समय उसके सामने इस प्रश्न का उत्तर पाने का कोई उपाय न था।

घड़ी पर घड़ी बीतती गयी और चन्द्रशेखर मंत्रमुग्ध-सा, मौन अपने स्थान पर खड़ा नीचे का दृश्य देखता रहा। तुरुष्क सेना का अन्त ही नहीं होने आ रहा था। चाँदनी धुंधली पड़ गयी, रात्रि का अन्त हो गया, परन्तु तुरुष्क सेना का अन्त फिर भी नहीं हुआ।

चन्द्रशेखर थक कर फिर अपनी गुफा में जा बैठा। और इस बार बैठे ही बैठे उसे नींद आ गयी।

जब उसकी आँख खुली तब सूर्य पूर्व की पहाड़ियों के ऊपर आ चुका था। बाहर अभी कोलाहल हो रहा था, परन्तु उसका स्वर अब दूर से आ रहा था। चन्द्रशेखर ने गुफा से बाहर निकलकर देखा। तुरुष्क सेना की अन्तिम भार-वाहक पंक्ति उत्तर की पहाड़ी के ऊपर चढ़ रही थी। चन्द्रशेखर ने घूम कर पीछे की ओर देखा। वहाँ अब कोई नहीं रह गया था। तब उसने धीरे-धीरे उस पहाड़ी की ओर बढ़ना आरम्भ किया जिसे पार करके तुरुष्क सेना गयी थी। सतर्कता के कारण उसे पहाड़ी तक पहुँचने में, तथा फिर उसके ऊपर चढ़ने में बहुत समय लग गया। परन्तु ऊपर पहुँचकर उसे अपने प्रश्न का उत्तर प्राप्त हो गया, और उसकी एक चिन्ता दूर हो गई। तुरुष्क उद्भाण्ड की ओर नहीं जा रहे थे। वे पहाड़ी से उतर कर उद्भाण्ड की विपरीत दिशा में, अर्थात् उत्तर की ओर जा रहे थे। चन्द्रशेखर आश्वस्त होकर लौट पड़ा।

लौटकर उसने सबसे पहले नदी के तीर पर जाकर जल पिया। जल बहुत शीतल था और उसका प्रत्येक घूंट कंठ से उदर तक एक लकीर-सी खींचता हुआ चला गया।

जल पीकर वह उस स्थान की ओर चला जहाँ गत रात्रि उसने अपने अश्व को छोड़ा था। यह स्थान उस गुफा से अधिक दूर नहीं था जहाँ उसने अपने जीवन की सबसे लम्बी रात्रि व्यतीत की थी। अश्व को खोज कर वह उस पर आरूढ़ हो गया और फिर अपनी खोज में व्यस्त हो गया। परन्तु अब उसका कार्य गत संध्या की अपेक्षा अधिक कठिन हो गया था। रात्रि के विशाल पशु-भोज के पश्चात् अधिकांश शव अब पहचाने जाने की स्थिति में नहीं रह गये थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रशेखर संध्या तक उस विस्तीर्ण क्षेत्र के एकछत्र अधिनायक-सा इधर से उधर घूमता रहा। परन्तु उसकी खोज सफल नहीं हुई। कोई शव ऐसा नहीं मिला जिसे विजयसिंह का करके पहचाना जा सके।

इस प्रकार घूमते-घूमते जब संध्या हो गयी तब उसने वहाँ से लौटने का निश्चय किया।

उसने सोचा था कि रात्रि होने के पूर्व वह किसी ग्राम में पहुँच जायेगा। परन्तु पहाड़ी के इस पार तक आते-आते उसे अपना यह विचार असम्भव प्रतीत होने लगा। अचानक उसे यह स्मरण भी हो आया कि वह बहुत अधिक थका और भूखा है। पूरी दो रात्रि वह सो नहीं पाया था, पूरे दो दिन से उसने कुछ खाया नहीं था।

चलते-चलते अचानक उसकी दृष्टि एक मन्दिर के कलश पर पड़ी। उसने तुरन्त अपना अश्व उसी दिशा में मोड़ दिया।

परन्तु मन्दिर में पहुँचकर उसे अपेक्षित आतिथ्य प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि उस समय वहाँ आतिथ्य करने वाला कोई नहीं था। परन्तु उसकी मुख्य समस्या का समाधान हो गया। मन्दिर के निकट ही एक कुटी थी जिसके भीतर उसे अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त भुना हुआ अन्न भी मिल गया और एक पात्र में जल भी। कुटी के स्वामी का कहीं पता नहीं था। उसका निवासी, मंन्दिर का पुजारी अथवा कोई साधु, सम्भवतः तुरुष्कों के भय से कहीं भाग गया था।

चन्द्रशेखर ने निस्संकोच भुने हुए अन्न का भोज किया, जल पिया, और हाथ शिर के नीचे रखकर शीतल धरती को ही अपना पर्यंक बना लिया। उसे अपने अश्व को बांधने अथवा उसके लिए भोजन और जल की व्यवस्था करने का भी ध्यान नहीं रहा।

—१०—

जब चन्द्रशेखर जगा तब सूर्योदय हो चुका था।

पहले कुछ क्षण तक तो वह यही नहीं समझ पाया कि वह इस समय कहाँ है और इस अपरिचित स्थान में कैसे आ गया है। परन्तु बाहर का प्रकाश धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क में भी प्रवेश करने लगा और कुछ समय पश्चात् उसे एक-एक करके विगत दो दिनों की घटनाओं का स्मरण आने लगा। तब उसने एक बार दृष्टि फिराकर अपने चारों ओर देखा। कुटी में स्थान अधिक नहीं था, और पात्र इत्यादि भी आवश्यकता भर के ही थे। परन्तु उसके एक कोने में कई मृग-चर्म बिछाकर सोने के लिए अच्छी व्यवस्था की गयी थी, जिसकी ओर गत रात्रि में चन्द्रशेखर का ध्यान नहीं गया था। वह रात्रि भर धरती की नंगी गोद में ही सोता रहा था। इसकी सुधि आते ही उसने सहसा अनुभव किया कि इस समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसका अंग-अंग टूट रहा था और सिर पीड़ा से भारी था।

उसने अपने सिर को एक झटका दिया, मानों पीड़ा एक भार हो जिसे झटक कर दूर फेंका जा सकता था। इसके पश्चात् वह उठकर खड़ा हो गया। उसे इस समय शीतल वायु की आवश्यकता थी।

बाहर आते ही उसने अपने अश्व को द्वार पर खड़ा पाया। अश्व ने भी उसे देखा और स्वामी को पहचानकर हर्षसूचक ध्वनि की। वह इस समय स्वच्छ तथा प्रसन्न मुद्रा में था। स्पष्ट था कि स्वामी की विवशता का अनुभव करके उसने अपने भोजन तथा विश्राम की व्यवस्था अपने आप कर ली थी।

चन्द्रशेखर ने अभ्यासवश क्षण भर उसे थपथपाया। फिर वह स्थान का अन्वेषण करने के उद्देश्य से आगे बढ़ा, क्योंकि उसकी कुछ अपनी आवश्यकताएं थीं जिनकी अविलम्ब पूर्ति आवश्यक थी।

मंदिर एक टीले पर स्थित था और अधिक बड़ा नहीं था। उसके चारों ओर एक सघन अमराई थी जिसके ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के बीच में मंदिर लगभग छिपा हुआ था। दूर से केवल उसका शिखर दिखाई पड़ता था। टीले पर चढ़कर मंदिर तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ नहीं थीं, केवल एक क्षीणकाया पगडंडी थी जो वृक्षों के बीच से सर्पाकार मार्ग बनाती हुई ऊपर मंदिर के आधार तक चली जाती थी।

जल की खोज में चन्द्रशेखर की दृष्टि सबसे पहले मंदिर की ओर गयी। वह जानता था कि मंदिर के निकट कहीं कुआँ अवश्य होगा। परन्तु तभी उसे ध्यान आया कि कुटी की भाँति इस समय मंदिर भी जनशून्य पड़ा होगा और कुएँ से जल निकालने की कोई व्यवस्था सम्भवत: उपलब्ध नहीं होगी। अतएव वह ऊपर न जाकर टीले का चक्कर काटता हुआ उसके दूसरी ओर जा निकला।

वहाँ उसकी खोज सफल हुई। उसके सामने स्वच्छ जल का एक सरोवर था जिसके एक ओर स्नानार्थियों की सुविधा के लिए पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। शेष तीनों ओर वह भूरी चट्टानों से घिरा हुआ था। उसके किनारे कई स्थानों पर धूम्र से काले हुए पाषाण-खंड पड़े थे, जिसका अर्थ यह था कि उस स्थान का प्रयोग यात्रियों द्वारा रात्रि-विश्राम के लिए किया जाता होगा।

एक बार फिर चारों ओर दृष्टि डालकर चन्द्रशेखर सीढ़ियाँ उतरता हुआ सरोवर के तट तक जा पहुँचा और अन्तिम सीढ़ी पर बैठकर उसने अपने दोनों पैर जल के भीतर डाल दिये। ऐसा करके उसे सुख मिला, और उसने दोनों हाथों की अंजुलि बनाकर अपने सिर तथा मुख को भिगोना आरम्भ किया। इसका प्रभाव और अच्छा हुआ। जल की शीतलता उसके शरीर में व्याप्त होकर धीरे-धीरे भीतर के ताप का भी शमन करने लगी। इस प्रकार थोड़ा स्वच्छ होने के पश्चात् उसकी इच्छा स्नान करने की हुई। उसने अपना खड्ग एक ओर रख दिया और एक-एक करके ऊपर के वस्त्र उतारने आरम्भ किये। इस कार्य से वह निवृत्त हुआ ही था कि उसे जल में कोई भारी वस्तु गिरने का शब्द सुनाई पड़ा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसकी दृष्टि स्वतः उस ओर उठ गयी जिधर से वह शब्द आया था। तट पर कहीं कोई नहीं था। परन्तु तट के निकट जल के ऊपर कुछ तैर रहा था जो किसी स्त्री के उत्तरीय-सा प्रतीत होता था।

चन्द्रशेखर तुरन्त सरोवर में कूद पड़ा और यथासम्भव शीघ्रता के साथ तैरता हुआ उस स्थान पर जा पहुँचा। उसका अनुमान सत्य निकला। जल के ऊपर तैरता हुआ वह वस्त्र किसी स्त्री का उत्तरीय ही था जिसकी स्वामिनी उस समय जल के भीतर थी। चन्द्रशेखर भी तुरन्त जल में विलीन हो गया और कुछ क्षण पश्चात् अपना बायाँ हाथ उसकी कटि में डाले हुए एक स्त्री को लेकर फिर ऊपर आया। वह स्त्री सचेत थी और किसी प्रकार का प्रतिरोध नहीं कर रही थी।

परन्तु जब दोनों जल के ऊपर आ गये तब उसने अपने आपको मुक्त करने का प्रयास करते हुए कहा, "अब छोड़ दो। मुझे तैरना आता है।"

स्थिति कुछ ऐसी अकल्प्य थी, और उसका स्वर कुछ ऐसा था, कि आश्चर्य के कारण चन्द्रशेखर की पकड़ अपने आप ढीली पड़ने लगी और उसके मुँह से निकल पड़ा, "तैरना आता है! फिर डूबी क्यों जा रही थीं?"

"अब नहीं डूबूँगी," उसने अपने आप को मुक्त करके चन्द्रशेखर के समक्ष तैरते हुए कहा, "परन्तु क्या जिसे तैरना आता हो वह कभी डूब ही नहीं सकता है? यदि वह स्वयं डूबना चाहे तो भी नहीं?"

"परन्तु तुम स्वयं डूबना क्यों चाहती थीं?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"इसकी कथा लम्बी है, इस समय नहीं सुना सकूँगी।"

"संक्षेप में भी नहीं?"

"संक्षेप में इतना समझ लो कि मैं इसे भगवान की इच्छा समझती थी।"

"और अब?"

"अब? अब समझने लगी हूँ कि भगवान अभी मुझे जीवित रखना चाहते हैं। यदि न चाहते होते तो तुम्हें मेरी रक्षा करने के लिए क्यों भेजते? भगवान बड़े विचित्र हैं। कभी कुछ चाहते हैं, कभी कुछ। इसी कारण हम अनेक बार उनकी इच्छा समझ नहीं पाते हैं। परन्तु हम समझें अथवा न समझें, होती सदा वही है। अरे! तुम चुप क्यों हो? बोलते क्यों नहीं हो? होती है कि नहीं?"

इस समय तक दोनों तैरते हुए सीढ़ियों वाले किनारे के निकट पहुंच गये थे। चन्द्रशेखर ने हाथ का सहारा देकर उसे जल से बाहर निकालते हुए कहा, "हाँ, होती है। सदा वही होती है।"

यह कहते हुए वह भी जल से बाहर निकल आया और सबसे नीचे वाली सीढ़ी पर खड़ा हो गया। तब पहली बार उसने अपने सामने खड़ी उस सम्पूर्ण नारी को देखा, और देखकर ठगा-सा रह गया। स्वस्थ, लम्बे शरीर वाली गजदन्तवर्णा वह नवयौवना अपनी वर्तमान सद्यस्नाता स्थिति में सौन्दर्य की सजीव प्रतिमा-सी प्रतीत हो रही थी। उसका मुख लम्बा तथा भरा हुआ था,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके अधर पतले तथा रक्ताभ थे, और उसकी नासिका नुकीली तथा अधरों पर झुकी हुई थी। उसके केश दीर्घ तथा लालिमा का आभास लिए हुए श्यामल थे, और कपोल यौवन के कुंकुम से रंजित। चन्द्रशेखर ने अपनी विस्मित दृष्टि नीचे से ऊपर तक, तथा फिर ऊपर से नीचे तक दौड़ायी। उसके सम्पूर्ण शरीर में क्षीणता तथा पीनता का आदर्श अनुपात था। कटि यदि क्षीण थी तो नितम्ब उतने ही माँसल थे, और उरोज अपनी संज्ञा को सार्थकता प्रदान कर रहे थे। चन्द्रशेखर की दृष्टि ऊपर उठते-उठते उसकी आँखों तक पहुँचकर अटक गयी।

उसकी आँखें अत्यधिक आकर्षक और किसी सीमा तक असाधारण थीं—इतनी फैली हुई कि कानों को छूती प्रतीत होती थीं, इतनी काली कि काजल उनके लिए अनावश्यक था, और इतनी गहरी कि जो उनमें पड़े सो डूब जाए, उन्हीं में खो जाए। परन्तु उनमें खंजन की कवि-प्रतिष्ठित चंचलता नहीं थी। वे असाधारण रूप से स्थिर, कुछ खोई-खोई-सी थीं। उनपर जब पलकें गिरती थीं तो लगता था मानों रंगमंच पर धीरे-धीरे यवनिका-पतन हो रहा हो। चन्द्र-शेखर ने जो एक बार उन्हें देखा तो शिष्टता भूलकर देखता ही रह गया।

उसे इस प्रकार अपनी ओर देखते हुए पाकर वह बोली, "ऐसे क्या देख रहे हो? क्या पहले किसी नारी को नहीं देखा है?"

"नारियाँ तो अनेक देखी हैं परन्तु अप्सरा नहीं देखी थी," चन्द्रशेखर के मुख से हठात् निकल गया।

"क्या तुम्हारे देश में नारियाँ ऐसी नहीं होती हैं? और क्या वहाँ उनके साथ ऐसा ही व्यवहार किया जाता है जैसा तुम इस समय मेरे साथ कर रहे हो? इतना भी नहीं होता कि एक ओर को हो जाओ तो मैं अपने वस्त्र ही निचोड़ लूँ।"

किंचित् अप्रतिभ होकर चन्द्रशेखर ने कहा, "क्षमा करना, इस समय मेरा मस्तिष्क सामान्य स्थिति में नहीं है। अन्यथा ऐसी भूल कभी नहीं होती। परन्तु तुम भी क्या ऊपर उस वृक्ष की ओट लेकर, अथवा उधर उस कुंज में जाकर, अपने वस्त्र नहीं निचोड़ सकती थीं?"

"हाँ, मैं भी ऐसा कर सकती थी" उसने उत्तर दिया, "परन्तु मेरा मस्तिष्क भी इस समय सामान्य स्थिति में नहीं है। होता तो इस सरोवर की शरण क्यों तकती? मेरा मन कितना क्षुब्ध है, और मेरा मस्तिष्क इस समय कितना अव्यव-स्थित है, यह तुम समझ भी नहीं सकते हो। परन्तु पहले अपनी कहो। तुम्हें क्या हुआ है जो तुम्हारा मस्तिष्क सामान्य स्थिति में नहीं है?"

"मैं तुरुष्कों के विरुद्ध युद्ध देखकर आ रहा हूँ," चन्द्रशेखर ने फूले-फूले स्वर में कहा।

"बस? केवल देखकर?"

"लड़कर भी, और हारकर, अनावश्यक रूप से हारकर।"

यह सहज सहानुभूति के स्वर में बोली, "तो क्या हुआ, ऐसा तो होता ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहता है। युद्ध तुम्हारा कर्म है, आज हारे हो तो कल विजय भी प्राप्त करोगे ? इसमें ऐसा क्या है कि तुम आपे में नहीं हो ?''

चन्द्रशेखर ने कहा,''यह तुम नहीं समझ सकोगी।''

''समझाने पर भी नहीं ?'' उसने बड़े सरल भाव से कहा, ''एक बार प्रयत्न करके तो देख लेते।''

''मैं भयानक नर-संहार देखकर आ रहा हूँ,'' चन्द्रशेखर ने कुछ झुँझलाकर कहा, ''सहस्र-सहस्र शव देखकर आ रहा हूँ।''

''उनमें तुम्हारे बाबा का शव तो नहीं था ?''

''नहीं।''

''और इस युद्ध में तुम्हारा सर्वस्व तो नहीं लुटा ?''

''नहीं।''

वह बोली, ''तिस पर भी ऐसी दशा हो गयी है कि मस्तिष्क सामान्य स्थिति में नहीं है ! मेरी सुनोगे ? मैं अपने बाबा का शव देखकर और अपना सर्वस्व लुटाकर आ रही हूँ। तुम मेरे दुःख का अनुमान भी नहीं लगा सकते हो। उसी के कारण मैंने अपने जीवन का अन्त करने का निश्चय किया था, और इस सरोवर की शरण ली थी। परन्तु जब मैं इसमें सफल नहीं हुई और तुम न जाने कहाँ से आकर मुझे जल से निकाल लाये तब मैंने समझ लिया कि ईश्वर की इच्छा अभी मुझे जीवित रखने की है। वह मेरी परीक्षा ले रहा है, देखना चाहता है कि उसने जो कुछ दिया है उसे वहन करने की शक्ति मुझमें है अथवा नहीं। और अब मैंने भी निश्चय कर लिया है कि मैं इस परीक्षा में सफल होकर दिखा दूँगी। जब तक उसकी इच्छा है तब तक जीवित रहूँगी। जो कुछ वह देगा उसे सिर झुकाकर स्वीकार और वहन करूँगी, न रोऊँगी न कभी प्रतिवेदन ही करूँगी।'' यह कहते-कहते उसने दोनों हाथों से अपनी आँखें पोंछ डालीं। उनमें आँसू छलक आये थे।

स्वर में सहानुभूति घोलते हुए चन्द्रशेखर ने पूछा, ''तुम्हारे बाबा तुम्हें बहुत चाहते थे ?''

खोई-खोई दृष्टि से शून्य में निहारते हुए उसने कहा, ''हाँ, बहुत चाहते थे, मेरे बाबा मुझे बहुत चाहते थे। सम्पूर्ण संसार में उनके लिए केवल मैं थी, और कोई नहीं था। वे मेरा मुख देखकर जगते थे और मेरा मुख देखकर सोते थे, मेरे लिए जीते थे और मेरे ही लिए मरे।''

सहानुभूति के साथ-साथ चन्द्रशेखर की जिज्ञासा भी बढ़ती जा रही थी। उसने पूछा, ''तुम्हारे बाबा कब मरे ? कैसे मरे ? क्या अस्वस्थ थे ?''

''नहीं, अस्वस्थ नहीं थे। उनकी मृत्यु स्वाभाविक नहीं हुई। उनकी हत्या की गयी। मेरी इन आँखों के सामने उनकी हत्या की गयी, और मैं कुछ नहीं कर सकी। उन्होंने मुझे बचाने के लिए अपने प्राण दे दिये, मैं उन्हें बचाने के लिए एक उँगली तक नहीं उठा सकी।''

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रशेखर ने कहा, "उनकी हत्या किसने की ? चलो, मैं तुम्हारे साथ चलूँगा। में उस अत्याचारी को दंड दूँगा।"

उसके अधरों पर एक बहुत फीकी-सी मुस्कान उभर आयी। वह बोली, "तुम उसे दंड नहीं दे सकोगे।"

"तुम चलो तो, बताओ तो वह दुष्ट कौन है।"

"व्यर्थ होगा, तुम उसे दंड नहीं दे सकोगे। परन्तु यदि यह जानना चाहते हो कि हत्यारा कौन था तो मैं बता सकती हूँ। मेरे बाबा का हत्यारा एक विदेशी, विधर्मी आततायी था, उनकी हत्या एक तुरुष्क दस्यु ने की जिसे पाना अब तुम्हारे लिए सम्भव नहीं होगा।"

"तुरुष्क दस्यु ने!" चन्द्रशेखर ने साश्चर्य दुहराया।

"हाँ, कल संध्या को कुछ तुरुष्क सैनिक हमारे ग्राम में आये थे। उन्हें अपनी सेना के लिए अन्न की आवश्यकता थी। उनमें से एक हमारे घर भी आया। बाबा उस समय बाहर ही थे। मैं घर के भीतर उनके लिए भोजन की व्यवस्था कर रही थी। अचानक उन्हें उत्तेजित स्वर में बोलते सुनकर मैं भी बाहर आ गयी। वहाँ वह तुरुष्क सैनिक उनसे झगड़ रहा था। मुझे देखते ही वह राक्षस उन्हें छोड़कर मेरी ओर झपटा। मैं घर के भीतर भागी परन्तु उससे बच नहीं सकी। बाबा ने जब मेरी रक्षा का प्रयास किया तो उसने अपना खड्ग निकाल कर उनपर प्रहार कर दिया। बाबा के हाथ में उस समय उनकी लाठी भी नहीं थी। इस प्रकार उस राक्षस ने मेरे बाबा की हत्या कर दी। फिर उसने मुझे दोनों बाँहों में समेट कर उठा लिया, द्वार भीतर से बंद कर लिये और······और जी भरकर मेरा, मेरे नारीत्व का अपमान किया। तुमने मुझे जल से बाहर निकाला है, तुम ईश्वर की इच्छा के माध्यम हो, अतएव तुमसे कुछ नहीं छिपाऊँगी। उसने निर्दयतापूर्वक, बर्बरतापूर्वक मेरे नारीत्व का अपमान किया। मैंने यथा-शक्ति विरोध किया, नखों से नोचा, दाँतों से काटा। परन्तु उसने भी गिन-गिनकर बदला लिया।"

चन्द्रशेखर का मुख लाल हो गया था। उसने अत्यधिक उत्तेजित स्वर में कहा, "यदि मिल जाए तो उसे पहचान तो लोगी? चलो, विलम्ब न करो।" और वह हाथ पकड़कर उसे अपने पीछे घसीटता हुआ सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

वह बोली, "अब तुम्हारे वहाँ चलने से कोई लाभ नहीं होगा।"

"क्यों?"

"मैं स्वयं उसे दंड दे चुकी हूँ।"

"तुम! तुम उसे दंड दे चुकी हो!" चन्द्रशेखर घूमकर खड़ा हो गया।

वह बोली, "हाँ, मैं। मैं उसे उचित दंड दे चुकी हूँ। मैंने उसकी हत्या कर दी है, अपने बाबा की हत्या का बदला ले लिया हैं। मैं उसके साथ संघर्ष करते-करते अचेत हो गयी थी। जब मुझे फिर चेत हुआ तो मैंने देखा वह वहीं मेरे बहुत निकट, सोया पड़ा है। वह मुख से साँस ले रहा था जिसके साथ निकल-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निकल कर मदिरा की दुर्गन्ध उसके चारों ओर फैल रही थी। मैंने अपनी दृष्टि इधर-उधर फिरायी। बाबा का शव अब भी उसी स्थान पर पड़ा था जहाँ वे आहत होकर गिरे थे। दीपक की ज्योति मध्यम होने लगी थी, उसका स्नेह चुक रहा था। मेरी दृष्टि फिर बाबा के शव की ओर घूम गयी। उसे देखते-देखते मुझे न जाने क्या हो गया। अब मुझे केवल इतना स्मरण है कि उस समय मेरे मस्तिष्क ने सोचना बंद कर दिया था। मैं नहीं जानती कि इसके पश्चात् कब और कैसे उस राक्षस का खड्ग मेरे इन हाथों में आ गया और फिर मैंने कहाँ और कितने प्रहार किये। केवल इतना जानती हूँ कि मेरे बाबा के हत्यारे की बंद आँखें फिर नहीं खुलीं। और यह जानती हूँ कि मुझे अपने चारों ओर रक्त ही रक्त दिखाई पड़ रहा था और उसे देख-देखकर मैं हलकी होती जा रही थी, हलकी होती जा रही थी। फिर मैंने खड्ग एक ओर फेंक दिया और अंजुलि भर-भरकर वह रक्त बाबा के शव पर डालना आरम्भ कर दिया।''

चन्द्रशेखर विस्फारित नेत्रों से उसे देख रहा था।

वह कहती गयी, ''मेरी ओर इस प्रकार क्यों देख रहे हो? क्या मैंने उचित नहीं किया? परन्तु मैं और क्या करती? तुम्हीं बताओ, मैं और कर ही क्या सकती थी? मेरा मन कह रहा था कि इससे बाबा की आत्मा को शाँति मिलेगी। अतएव मैं रक्तदान करती गयी, करती गयी, जब तक मुझे रक्त मिला तब तक अजुंली में ले-लेकर उनके शव पर चढ़ाती रही। जब रक्त चुक गया तब मुझे भय लगने लगा। मैं चुपचाप घर से निकल आयी और रात्रि के अधंकार में छिपती-छिपाती यहाँ तक आ गयी। यह स्थान मेरा पहले का देखा हुआ था। बाबा प्रत्येक एकादशी को यहाँ आया करते थे और मुझे भी अपने साथ लाते थे। इस कारण रात्रि में भी मार्ग खोजने में मुझे असुविधा नहीं हुई। वह तो बीच में तुरुष्कों की बड़ी सेना मिल गयी और मुझे विलम्ब तक एक झाड़ी में छिपे रहना पड़ा, अन्यथा में बहुत पहले यहाँ आ गयी होती। अब तुम्हीं निर्णय करो, क्या मैंने जो कुछ किया वह मुझे नहीं करना चाहिए था?''

चन्द्रशेखर ने उसका हाथ छोड़ दिया और प्रशंसापूर्वक दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए पूछा, ''तुम किस वर्ण की हो?''

''क्षत्रिय-कन्या हूँ।''

चन्द्रशेखर ने कहा, ''तुमने वही किया है जो एक क्षत्रिय-कन्या के लिए उचित था, यद्यपि अधिकांश क्षत्रिय कन्यायें भी सम्भवतः ऐसा नहीं कर पातीं। तुम एक वीर बाला हो।''

उसने सिर झुका लिया। उसके कपोलों के पाटल अधिक लाल हो गये।

क्षण भर पश्चात् चन्द्रशेखर ने फिर कहा, ''अच्छा, अब मैं ऊपर जा रहा हूँ, तब तक तुम अपने वस्त्र सुखा लो।''

वह बोली, ''उनकी चिन्ता न करो। अपने आप सूख जाएँगे।''

''तो चलो, मैं चलकर तुम्हें घर छोड़ आऊँगा,'' चन्द्रशेखर ने कहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह गम्भीर हो गयी। बोली, "मैं चलने के लिए प्रस्तुत हूँ। परन्तु तुम मुझे कहाँ ले चलोगे? किसके पास छोड़ोगे? क्या मेरा घर अब तक खड़ा होगा? उसे तुरुष्कों ने कब का भस्मसात् कर दिया होगा। और यदि न भी किया हो तो मुझे अब लौटकर वहाँ नहीं जाना है। वहाँ अब मेरा कोई नहीं है। पहले भी कोई और नहीं था। अकेले बाबा थे, उन्हीं के सहारे रहती थी। अब वे भी नहीं हैं तो किसके सहारे रहूँगी? नहीं, अब मैं लौटकर वहाँ नहीं जाऊँगी।"

"फिर कहाँ जाओगी?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"मैं क्या जानूं? जिसने मुझे मरने नहीं दिया है वह जाने।"

चन्द्रशेखर ने स्पष्ट असमंजस के स्वर में कहा, "परन्तु मेरे लिए इस समय तुम्हें साथ ले चलना सम्भव नहीं होगा।"

"तो मत ले चलो," निश्चित-सा उत्तर मिला।

"मैं सत्य कह रहा हूँ।"

"तो मैं ही कब उसे अन्यथा समझ रही हूँ? क्या मैंने तुमसे कहा है कि मुझे अपने साथ ले चलो? किसी के ऊपर भार बनकर मैं स्वयं नहीं रहना चाहूँगी।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "फिर करोगी क्या? कहाँ जाओगी?"

"इसकी चिन्ता तुम क्यों करो? तुमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया, अब अपना मैं कर लूँगी। कहीं न कहीं स्थान खोज ही लूँगी, कहीं न कहीं चली ही जाऊँगी। एक द्वार बन्द हुआ है तो कहीं न कहीं दूसरा खुल ही जाएगा। ईश्वर की यह सृष्टि बहुत बड़ी है। तुम तनिक भी चिन्ता मत करो, मैं कोई न कोई स्थान अवश्य खोज लूँगी।"

"परन्तु कहाँ?" चन्द्रशेखर ने फिर पूछा।

"कह तो चुकी हूँ कि तुम चिन्ता मत करो", उसने पूर्ववत् निश्चिन्त भाव से उत्तर दिया, "और शंका भी मत करो। मैं अब डूबने नहीं जाऊँगी।" यह कहती हुई वह मुख फेरकर सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

परन्तु चन्द्रशेखर ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "बिना बताये मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगा।"

वह खड़ी हो गयी। बोली, "तो न जाने दो। मैं कहीं नहीं जाऊँगी। परन्तु तुम जो बताने को कह रहे हो वह तभी बता सकूँगी जब पहले स्वयं निश्चय कर लूं। इस समय केवल इतना बता सकती हूँ कि अब प्राण देने का प्रयत्न नहीं करूँगी, और मनुष्यों के बीच नहीं रहूँगी।"

"फिर कहाँ रहोगी?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"यह अभी निश्चित नहीं कर पायी हूँ। परन्तु उसमें तनिक भी कठिनाई नहीं होगी। चारों ओर बन बिखरे हैं, चारों ओर गुफाएं हैं, कंदराएं हैं। कहीं न कहीं स्थान मिल ही जाएगा। बस? अब जाऊँ?"

चन्द्रशेखर कुछ क्षण अनिश्चित्-सा, मौन खड़ा रहा, फिर धीमे स्वर में बोला, "और यदि मैं तुम्हें अपने संग ले चलना चाहूँ।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"तो मैं तुम्हारे संग चलूंगी।"

"परन्तु मनुष्यों के बीच रहना होगा।"

वह बोली, "रह लूंगी। तुम्हारा संरक्षण होगा तो जहाँ रखोगे वहाँ रह लूंगी। परन्तु अकेली, अरक्षित नहीं रहूँगी।"

"चलोगी कैसे?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"तुम्हारे संग चलना है तो यह चिन्ता मैं क्यों करूँ? जैसे तुम ले चलोगे वैसे चली चलूंगी। चलना कहाँ है?"

"यहाँ से उद्भाण्ड, फिर वहाँ से महोत्सव नगर।"

"महोत्सवनगर तो बहुत दूर होगा? तुम कैसे चलोगे?"

"मेरे पास अपना अश्व है।"

"मेरे पास अपने पैर हैं," उसने कहा। "अतएव दो ही उपाय सम्भव हैं। या तो तुम मुझे अपने अश्व पर साथ ले चलो, या मैं तुम्हें अपने साथ पांव-पयादे ले चलूंगी। मुझे किसी दशा में आपत्ति नहीं है।"

चन्द्रशेखर उत्तर में कुछ न कहकर चुपचाप सीढ़ी पर पड़े हुए अपने वस्त्र उठा-उठा-कर पहनने लगा। वस्त्र पहन कर उसने अपना खड्ग कटि में बाँधा और सीढ़ियों पर आगे-आगे चढ़ते हुए कहा, "तो चलो, अब विलम्ब नहीं करना है। शेष सारी चिन्ता मैं कर लूंगा।"

—११—

लौटकर उद्भाण्ड पहुँचने में चन्द्रशेखर को कई दिन लग गये।

वह स्वयं यथासम्भव शीघ्र पहुँचना चाहता था। इसी कारण उसने प्रस्थान करने में तनिक भी विलम्ब नहीं किया। पुजारी की कुटी तक जाना आवश्यक था क्योंकि वह अपने अश्व को वहीं छोड़ आया था। वहाँ पहुँचकर उसे स्मरण आया कि कुटी में कुछ भुना हुआ अन्न अभी शेष था। चन्द्रशेखर ने उसे पाथेय के लिए साथ ले लिया। इसके पश्चात् वह क्षण भर भी वहाँ नहीं रुका, तुरन्त अश्वारूढ़ होकर चल दिया।

बाला अश्व पर उसके पीछे थी। परन्तु वह अच्छी पथसंगिनी नहीं सिद्ध हो रही थी। अश्वारूढ़ होने के पश्चात् वह ऐसी मौन हो गयी थी मानों बोलना ही न जानती हो। चन्द्रशेखर ने एक-दो बार वार्तालाप आरम्भ करने का प्रयास भी किया, परन्तु उसका मौन नहीं टूटा।

मध्याह्न के कुछ पश्चात् वे एक क्षीणकाया किन्तु स्वच्छ जल वाली नदी के किनारे रुके। चन्द्रशेखर ने पहले अपने अश्व को जल पिलाया और फिर स्वयं हाथ-मुँह धोया। परन्तु वह दृष्टि नीची किये, मौन, एक वृक्ष की छाया में बैठी रही। चन्द्रशेखर ने अपना भुने हुए अन्न का पाथेय निकालकर आधा उसे दिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
और शेष स्वयं ले लिया। वह अन्यमनस्क-सी बैठी खाती रही परन्तु अन्त तक अपना भाग समाप्त नहीं कर पायी। फिर दोनों ने जल पिया और पुनः यात्रा आरम्भ कर दी। परन्तु उसका मौन नहीं टूटा। चन्द्रशेखर ने भी उसे तोड़ना उचित अथवा आवश्यक नहीं समझा।

संध्या से कुछ पूर्व वे एक बड़े ग्राम में पहुँचे। सुविधा देखकर चन्द्रशेखर ने रात्रि वहीं व्यतीत करने का निश्चय किया। ग्राम बड़ा था, अतएव आवास मिलने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। जो स्थान उसे मिला वह इतना बड़ा और सुविधा-पूर्ण था कि उसे कक्ष की संज्ञा दी जा सकती थी। चन्द्रशेखर ने उसके लिए कक्ष के भीतर शयन की व्यवस्था करके स्वयं बाहर के दालान में आसन जमाया। इसके पश्चात् वह भोजन की व्यवस्था करने निकला।

वह कक्ष में जाकर चुपचाप लेट गयी, और जो एक बार लेट गयी तो फिर चन्द्रशेखर के उठाने पर भी नहीं उठी। चन्द्रशेखर ने बहुत आग्रह किया परन्तु वह भोजन करने के लिए भी नहीं उठी। चन्द्रशेखर खीझ गया और अन्त में बोला, "यदि तुम ऐसे रहोगी तो मैं तुम्हें अपने साथ नहीं ले चलूंगा। यहीं छोड़कर चला जाऊँगा।"

वह इस पर भी कुछ नहीं बोली, केवल एक विचित्र दृष्टि से अपलक चन्द्रशेखर की ओर देखती रही। उसकी दृष्टि में कुछ ऐसा था कि चन्द्रशेखर अधिक समय तक उसे सहन नहीं कर सका, और प्रातःकाल होते ही यात्रा के लिए तत्पर रहने का संक्षिप्त आदेश देकर बाहर चला गया।

प्रातःकाल हुआ, और चन्द्रशेखर स्वयं यात्रा के लिए तत्पर भी हो गया। परन्तु वह कक्ष से निकलकर बाहर नहीं आयी। चन्द्रशेखर ने बार-बार पुकारा, परन्तु भीतर से कोई उत्तर नहीं मिला। इस पर कुछ चिन्तित होकर चन्द्रशेखर ने द्वार पर धक्का दिया। द्वार भीतर से बन्द नहीं था, तुरन्त खुल गया। अपनी खीझ को शब्द देता हुआ वह कक्ष के भीतर घुसा।

वह अभी लेटी हुई थी और उसकी पलकें मुँदी थीं।

चन्द्रशेखर ने दूर से ही ऊँचे स्वर में कहना आरम्भ किया, "रात्रि में ही कहकर गया था कि सूर्योदय होते-होते यहाँ से चल देना है, और तुम अब तक उठी भी नहीं हो! इस प्रकार क्या हम कभी उद्भाण्ड तक पहुँच सकेंगे?"

उसने धीरे-धीरे अपनी पलकें खोलीं, मानों ऐसा करने में उसे कष्ट हो रहा हो, और हाथ उठाकर संकेत से चन्द्रशेखर को अपने निकट बुलाया। चन्द्रशेखर ने पहली बार लक्ष्य किया कि उससे हाथ की उँगलियाँ लम्बी तथा सुडौल थीं।

चन्द्रशेखर के निकट आ जाने पर वह अत्यन्त क्षीण स्वर में बोली, "रात्रि में तुम यह भी तो कहकर गये थे कि मुझे यहीं छोड़कर चले जाओगे। कहा था न?"

"हाँ, कहा था," चन्द्रशेखर ने स्वीकार किया।

उसने पूर्ववत् अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा, "तो तुम सचमुच चले जाओ। सुनते हो? मुझे यहीं छोड़ दो और तुम चले जाओ। मैं अब तुम्हारे साथ नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चल सकूँगी।"

चन्द्रशेखर ने विस्मय से उसकी ओर दृष्टि उठायी, परन्तु जो कुछ उसने वहाँ देखा उसके पश्चात् उसे न प्रश्न की आवश्यकता रह गयी न उत्तर की अपेक्षा।

उसका मुख तपते हुए अंगारे-सा लाल था और उसने अपनी आँखें फिर भींच ली थीं। उसके अधर सूखे थे और काँप रहे थे। वह बार-बार अपनी जिह्वा से उन्हें तरलता प्रदान करने का प्रयास कर रही थी।

चन्द्रशेखर ने अपना हाथ उसके मस्तक पर रखा, वह जल रहा था। उसने कहा, "तुम्हें तो इस समय भीषण ज्वर है।"

वह आँखें भींचे-भींचे ही बोली, "तभी तो कह रही हूँ कि तुम चले जाओ। मुझे बाबा के पास जाना है, मैं वहाँ जाऊँगी। मैं अब नहीं बचूँगी।"

"बचोगी कैसे नहीं," चन्द्रशेखर ने सान्त्वना के स्वर में कहा, "जिसने कल तुम्हें बचाया था वही आज भी बचाएगा।"

"उसकी इच्छा को कौन समझ पाता है," वह बोली, "परन्तु मुझे लग रहा है कि अब मैं नहीं बचूँगी। बाबा मुझे बुला रहे हैं।"

चन्द्रशेखर बिना कुछ कहे उठकर बाहर चला गया। कुछ क्षण पश्चात् वह एक पात्र में जल लिये हुए फिर लौटा और अपना बायाँ हाथ उसकी ग्रीवा के नीचे डालकर बोला, "लो, थोड़ा जल पी लो। संध्या तक तुम्हारा ज्वर उतर जाएगा, तब कल फिर यात्रा आरम्भ करेंगे। इस समय तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है।"

उसने ग्रीवा को थोड़ा उठाकर जल पी लिया और फिर लेट गयी। चन्द्रशेखर कुछ क्षण मौन खड़ा रहा, फिर वह भी बाहर चला गया।

मध्याह्न होते-होते रोगिणी की दशा और बिगड़ गयी। उसे सन्निपात के लक्षण प्रकट होने लगे और वह कभी-कभी प्रलाप भी करने लगी। उसके ज्वर के साथ-साथ स्वभावतः चन्द्रशेखर की चिन्ता भी बढ़ती जा रही थी।

परन्तु सौभाग्य से वैद्य अच्छे मिल गये। निकट ही रहते थे और जितने सिद्धहस्त थे उतने ही सत्पुरुष भी थे। किसी से सुनकर स्वयं ही आ गये। उन्होंने विलम्ब तक रोगिणी की नाड़ी-परीक्षा करने के पश्चात् घोषणा की, "चिन्ता का विशेष कारण नहीं है। दो दिन लगेंगे।"

चन्द्रशेखर को सहसा इस आश्वासन पर विश्वास नहीं हुआ। उसने आशा और चिन्ता के मिश्रित स्वर में कहा, "दो दिन में यह यात्रा के योग्य हो जाएगी?"

वैद्यराज ने आश्वासन की सौम्य मुस्कान बिखेरते हुए कहा, "उसके लिए दो दिन और। दो दिन ज्वर उतरने में और दो दिन चलने-फिरने योग्य होने में। आज के पाँचवें दिन तुम अपनी यात्रा फिर आरम्भ कर सकोगे। मैं अभी जाकर औषधि भेजता हूं। तुम तनिक भी चिन्ता मत करो। औषधि लाने वाला मेरा शिष्य रात्रि भर रोगिणी की परिचर्या और तुम्हारी सहायता करने के लिए यहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहेगा।"

इस अन्तिम अश्वासन से चन्द्रशेखर को प्रसन्नता हुई, परन्तु उसके साथ ही एक भारी संकोच का भी अनुभव हुआ, जिसे व्यक्त करते हुए उसने कहा, "परन्तु महाराज, हम इस उपकार से उऋण कैसे होंगे ? हमारे पास इस समय साधनों का अभाव है। हम आपका पुरस्कार देने की स्थिति में नहीं हैं।

"मेरा पुरस्कार !" वैद्यराज ने हँसकर कहा, "क्षत्रिय हो न ?"

"हाँ, महराज।"

"तो बताओ, वीर का कर्तव्य क्या होता है ?"

"युद्ध करना।"

"और उसका सर्वोच्च पुरस्कार ?"

"युद्ध में विजय प्राप्त करना, "चन्द्रशेखर ने तत्परतापूर्वक उत्तर दिया।

वैद्य राज बोले, "तुमने मेरे प्रश्न का ठीक उत्तर दिया है। वीर का सर्वोच्च पुरस्कार होता है युद्ध में विजय प्राप्त करना। वीरता की सार्थकता ही विजय में है। परन्तु वीरता युद्धक्षेत्र तक ही सीमित नहीं होती, न उसका प्रदर्शन केवल असि द्वारा किया जाता है। हम भी वीर हैं, यद्यपि हम कभी खड्ग वहन नहीं करते। हमारे शस्त्रास्त्र हमारी औषधियाँ हैं, हम रोग से युद्ध करते हैं और रोग पर विजय को ही अपना सर्वोच्च पुरस्कार मानते हैं। अतएव तुम मेरे पुरस्कार की चिन्ता मत करो। वह तो मुझे मिलेगा ही। हाँ, कुछ लोग यथासामर्थ्य उसके अतिरिक्त भी कुछ दे जाते हैं। वह हमारी आजीविका होती है। परन्तु यहाँ उसका प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि तुम यात्री हो और इस समय हमारे ग्राम के अतिथि हो। अतएव तुम मेरे पुरस्कार की चिन्ता न करो। केवल रोगिणी की चिन्ता करो, और मेरे शिष्य की प्रतीक्षा करो। मैं अभी जाकर उसे भेजता हूँ।"

वैद्यजी चले गये। कुछ समय पश्चात् उनका शिष्य औषधि लेकर आ गया। उसने आते ही उपचार आरम्भ कर दिया।

औषधि अचूक सिद्ध हुई। वह रात्रि भर सोती रही, और वैद्यजी का शिष्य रात्रि भर उसके निकट बैठा रहा। चन्द्रशेखर चाहता तो विश्राम कर सकता था, परन्तु वह भी रात्रि भर कभी भीतर कभी बाहर टहलता हुआ जागता रहा।

प्रातःकाल जब रोगिनी ने आँखें खोलीं तब चन्द्रशेखर अकेला उसके निकट खड़ा था। वैद्यजी का शिष्य बाहर चला गया था। उसे आँखें खोले देखकर चन्द्रशेखर ने उसके मस्तिष्क पर हाथ रखा। इस समय उसका ताप सामान्य से भी कम था। ज्वर जितनी आकस्मिक प्रखरता के साथ चढ़ा था उतनी ही शीघ्रता से उतर भी गया था। चन्द्रशेखर ने संतोष की सांस की लेकर कहा, "तुम्हें क्या हो गया था ?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल एक बार विचित्र-सी दृष्टि से चन्द्रशेखर की ओर देखा और फिर नयनों के कपाट बन्द कर लिये।

वैद्यजी का शिष्य लौटकर आ गया। कुछ समय पश्चात् वैद्यजी भी आये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्होंने रोगिनी की नाड़ी देखी, दो-तीन बार सकारात्मक सिर हिलाया—मानों अपने ही किन्हीं मूक प्रश्नों के उत्तर दे रहे हों—और फिर चन्द्रशेखर की ओर देखकर कहा, "अब तो तुम्हें विश्वास हुआ कि आज के चौथे दिन तुम लोग फिर यात्रा आरम्भ कर सकोगे? परन्तु रोगिणी को आज पूर्ण विश्राम मिलना चाहिए, अन्यथा ज्वर लौट सकता है। मैं अभी उसकी व्यवस्था भी किये देता हूँ।" यह कह-कर उन्होंने अपने उत्तरीय के छोर से खोल कर कोई औषधि निकाली और स्वयं रोगिणी के मुख में रख दी। इसके पश्चात् वे उठकर खड़े हो गये और चन्द्रशेखर से बोले, "अब मैं चल रहा हूँ। अन्य रोगी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। हाँ, यदि यह सो जाए तो जगाना मत। जब तक सोती रहे सोने देना, और तुम निश्चिन्त होकर जो चाहो करना। भोजन तुम्हें आज मेरे यहाँ करना होगा। इसमें चूक न करना, अन्यथा रात्रि जागरण के क्लान्त मेरे शिष्य को ही दौड़ना पड़ेगा। इसकी अब यहाँ कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है, अतएव मैं इसे अपने साथ लिये जा रहा हूँ।" यह कह कर वैद्यजी अपने शिष्य के साथ कक्ष से बाहर निकल गये।

कुछ समय पश्चात् रोगिणी को गहरी नींद आ गयी। चन्द्रशेखर विलम्ब तक पास बैठा उसका मुख निखारता रहा जिस पर अब उसका स्वाभाविक वर्ण थोड़ी मात्रा में लौट आया था। इसके पश्चात् वह बाहर निकल आया। परन्तु वह अधिक समय के लिए वहाँ से दूर नहीं गया, और बार-बार भीतर जाकर उसे देख आता था।

अगले दिन वह उठकर बैठ गयी। उसे पथ्य दिया गया, और उसने दो-एक बार चन्द्रशेखर को देखकर मुस्कराने का प्रयास भी किया। चन्द्रशेखर अब भी बार-बार उसे देखने के लिए भीतर आ जाता था। परन्तु वह अधिकांश समय बाहर रहता था और जब भीतर आता था तो भी कहता कुछ नहीं था। ऐसे ही एक अवसर पर वह कहने लगी, "तुम्हें बाहर घूमना-फिरना बहुत अच्छा लगता है?"

"नहीं तो", चन्द्रशेखर ने किंचित् हतप्रभ होकर कहा, मानो चोर की चोरी पकड़ ली गयी हो।

"तो फिर घड़ी भर मेरे पास आकर क्यों नहीं बैठते हो?" वह उपालम्भ के स्वर में बोली। "मैं यहां अकेली पड़ी-पड़ी ऊब रही हूँ और तुम बाहर डोलते-फिरते हो। क्या तुम्हारे देश में आश्रित के साथ ऐसा ही व्यवहार किया जाता है?"

अपराधी मुद्रा में उसके निकट बैठते हुए चन्द्रशेखर ने हवाला देना आरम्भ किया, "मैं सोचता था तुम्हारे विश्राम में विघ्न नहीं पड़ना चाहिए। वैद्यजी ने भी······"

"वैद्यजी ने जो कुछ कहा था वह मैंने भी सुना था। उन्होंने यह कहा था कि मुझे विश्राम करना चाहिए। परन्तु यह नहीं कहा था कि अकेली पड़ी रहना चाहिए। और यह भी नहीं कहा था कि तुम्हें इधर-उधर घूमते फिरना चाहिए। कहा था?"

निरुत्तर होकर चन्द्रशेखर बोला, "नहीं, यह उन्होंने नहीं कहा था। मैं अपना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपराध स्वीकार करता हूं। अब कहीं नहीं जाऊँगा। बताओ, क्या करूँ?"

"कुछ बातें करो। कुछ ऐसी बातें करो जिनसे मेरा मन बहले।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "तुम्हारा मन कैसी बातों से बहलेगा?"

"यह भी मुझे ही बताना होगा?"

"मन भी तो तुम्हारा ही बहलना है।" चन्द्रशेखर का संकोच धीरे-धीरे कम होता जा रहा था।

वह बोली, "तो पहले यही बताओ कि तुम मुझे छोड़कर चले क्यों नहीं गये?"

"यह मैं स्वयं भी नहीं जानता हूँ।" चन्द्रशेखर ने कहा। यह सत्य था, गत तीन दिनों के भीतर उसके हृदय में इस नारी के प्रति ममत्व की जो भावना उत्पन्न हो गयी थी उसे वह वास्तव में स्वयं भी नहीं समझ पा रहा था।

परन्तु वह नारी अपने प्रश्न का उत्तर पाये बिना संतुष्ट होने वाली नहीं थी। बोली, "यह असम्भव है। तुम्हारी ही बात और तुम्हीं नहीं जानते?"

"परन्तु सत्य यही है," चन्द्रशेखर ने कहा। "यों समझ लो कि मैं जा नहीं सका, इस कारण नहीं गया। क्यों नहीं गया, यह मैं वास्तव में नहीं समझ पा रहा हूँ।"

वह गम्भीर हो गयी और क्षण भर मौन रहने के पश्चात फिर बोली, "मेरी एक बात मानोगे? कहूँ?"

"कहो।"

वह बोली, "तुम अब चले जाओ, मेरा कहना मानकर चले जाओ। मैं हँसी नहीं कर रही हूँ, पूरी गम्भीरता के साथ कह रही हूँ। पहले मैं अस्वस्थ थी, इस कारण तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सके। परन्तु वह कारण अब नहीं रह गया है। अब मैं स्वस्थ हो रही हूँ। दो-चार दिन में चलने-फिरने भी लगूँगी। तुम कल चले जाओ।"

"मुझसे मुक्त होना चाहती हो?" चन्द्रशेखर ने कहा।

वह पूर्ववत् गम्भीर स्वर में बोली, "मैं तुम्हारी बंदिनी ही कब थी जो मुक्त होना चाहूँगी। हाँ, कृतज्ञ अवश्य थी, और जीवन-पर्यन्त रहूँगी। तुम मुझे विवश करके अपने साथ नहीं लाये थे। मैं स्वेच्छा से, एक प्रकार से तुम्हें विवश करके, यहाँ तक साथ आयी हूँ। सोचा था, साथ रहकर तुम्हारी कुछ सेवा करूँगी तो मेरे अस्त-व्यस्त जीवन को सार्थकता मिलेगी। इसी कारण स्वेच्छा से तुम्हारे साथ आयी थी। परन्तु अब देखती हूँ कि सेवा करना तो दूर रहा, मैं तुम्हारे लिए एक कठिन बंधन बन गयी हूँ। यह मुझसे सहन नहीं हो रहा है। अतएव मैंने गम्भीरतापूर्वक विचार करके यह निश्चय किया है कि अब तुम्हारे साथ नहीं चलूँगी तुम कल प्रातःकाल चले जाओ।"

वातावरण को अधिकाधिक गम्भीर होते देखकर उसे हलका करने के उद्देश्य से चन्दशेखर ने कहा, "अच्छा, मैं यदि जा सका तो कल प्रातःकाल चला जाऊँगा,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवश्य चला जाऊँगा। अब कुछ और बात करें ?"

"मैं इस समय और कुछ बात नहीं कर सकूंगी," उसने कहा। परन्तु अगले ही क्षण, मानों अपनी इस घोषित असमर्थता पर लज्जित होकर उसका परिमार्जन करने के उद्देश्य से वह फिर बोली, "हाँ, यदि तुम कुछ कहना चाहो तो मैं सुन सकती हूँ, प्रसन्नतापूर्वक सुनूंगी। तुमने अभी तक मुझे अपने विषय में कुछ नहीं बताया है। बताओगे ?"

विषय परिवर्तन के इस अवसर को चन्द्रशेखर ने दोनों हाथों से पकड़ा और तुरन्त अपना जीवन-वृत्त सविस्तार बताना आरम्भ कर दिया। वह बड़े ध्यान से सुनती रही, केवल सुनती रही, बीच में एक शब्द भी नहीं बोली। अन्त में, जब चन्द्रशेखर ने अपना वर्णन समाप्त कर लिया तब, उसने टिप्पणी की, "तुमने अपने विवाह के सम्बन्ध में कुछ नहीं बताया ? मैंने सुना है तुम्हारे देश में क्षत्रियों के विवाह खड्ग के बल पर होते हैं।"

"मैं अविवाहित हूँ," चन्द्रशेखर ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"अविवाहित हो!"

"हाँ, मेरा विवाह नहीं हुआ है।"

वह क्षण भर कुछ सोचती रही, फिर अपनी दृष्टि चन्द्रशेखर के मुख पर गड़ाकर बोली, "हुआ नहीं है कि तुमने स्वयं नहीं किया है ?"

"एक ही बात है।" चन्द्रशेखर इस प्रसंग से बचना चाहता था।

"तुम किसी स्त्री से प्रेम करते थे ?" नारी-सुलभ अन्तर्दृष्टि से पुरुष के मन में पैठकर उसने पूछा।

चन्द्रशेखर ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

"और उसके साथ तुम्हारा विवाह नहीं हो सका, इस कारण तुम अविवाहित हो ?"

"हाँ," चन्द्रशेखर ने स्वीकार किया।

"परन्तु जिस स्त्री से तुम प्रेम करते थे उसके साथ तुम्हारा विवाह क्यों नहीं हो सका ? क्या वह तुमसे प्रेम नहीं करती थी ? क्या संसार में ऐसी भी कोई अभागिनी है ?"

"वह भी मुझसे प्रेम करती थी", चन्द्रशेखर ने कहा।

"फिर ?"

"उसके पिता ने उसका विवाह और कहीं कर दिया।"

"और उसने कर लिया ? विरोध नहीं किया ? और तुमने भी उसका विवाह और कहीं हो जाने दिया ?"

"मुझे सूचना विवाह हो जाने के पश्चात् मिली," चन्द्रशेखर ने कहा।

"परन्तु वह तो विरोध कर ही सकती थी, जो उसने नहीं किया। मुझे उसके साथ तनिक भी सहानुभूति नहीं है। वह कायर थी। जो स्त्री अपने प्रेम के लिए संघर्ष नहीं कर सकती उसे मैं कायर समझती हूँ। और कुछ नहीं तो अपने प्राण

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो दे ही सकती थी। वह कायर थी।" उसका स्वर उत्तेजित हो गया।

चन्दशेखर ने उसे शान्त करने के उद्देश्य से कहा, "मैं तुमसे सहमत हूँ। वह निश्चय ही कायर थी। परन्तु तुम्हें इस समय उत्तेजित नहीं होना चाहिए।"

संयोग से उसी समय वैद्यजी आ गये, जिसके परिणामस्वरूप यह प्रसंग यहीं समाप्त हो गया। वे अवकाश से थे, विलम्ब तक बैठे रहे और चन्द्रशेखर से चन्देल राज्य तथा खजुराहो के मंदिरों के विषय में अनेक प्रश्न पूछते रहे। वे स्वभाव से बड़े विनोदी थे, और बीच-बीच में अपने मनोरंजक संस्मरण भी सुनाते जाते थे। अन्त में जब वे उठे तो चन्द्रशेखर भी उनके साथ बाहर चला आया।

जब वह लौटा तब रात्रि हो चुकी थी। रोगिणी के लिए पथ्य वह अपने साथ लाया था। आकर शैय्या के निकट बैठ गया और बोला, "पथ्य लाया हूँ।"

वह उठकर बैठ गयी और पात्र चन्द्रशेखर के हाथ से लेती हुई बोली, "और तुम ?"

"मैं तृप्त होकर आया हूँ," चन्द्रशेखर ने कहा। "अपने वैद्यजी देवता पुरुष हैं। तुम्हारा उपचार करते हैं, मुझे भोजन कराते हैं।"

"हम उनसे उऋण किस प्रकार होंगे ?" उसने चिन्ता व्यक्त की।

चन्द्रशेखर ने कहा, "उसका उपाय मैंने कर लिया है। वैद्यजी शीघ्र ही खजुराहो और कालंजर की यात्रा पर आएंगे, तब हम भली प्रकार उनसे उऋण हो लेंगे। हाँ, वैद्यजी आज तुम्हारा नाम पूछ रहे थे।"

"फिर ? तुमने क्या बताया ?"

"क्या बताता ? मैं स्वयं नहीं जानता हूँ।"

"क्या तुमने वैद्यजी से भी यही कह दिया ?"

"नहीं, उनसे कहा कि तुम्हारा नाम अनामा है।"

वह हँस दी और बोली, "ठीक ही तो बताया। मेरा गत जीवन का नाम उसके साथ चला गया। अब मैं वास्तव में अनामा हूँ।"

"परन्तु मुझे यह नाम अच्छा नहीं लगता," चन्द्रशेखर ने आपत्ति की।

वह फिर हँसी और बोली, "तो मैं क्या करूँ ? ? तुम्हारा ही दिया हुआ तो है। फिर भी यदि तुम्हें अच्छा नहीं लगता है तो दूसरा रख लो, मैं आपत्ति नहीं करूँगी। तुमने मुझे नया जीवन दिया है, अतएव नया नाम देने का अधिकार भी तुम्हें ही है।"

क्षणभर विचारमग्न रहने के पश्चात् चन्द्रशेखर ने कहा, "यदि मुझे अधिकार है तो मैं तुम्हारा नाम किन्नरी रखूँगा। स्वीकार है ?"

"मेरे अस्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं है," उसने कहा।

"मेरा तात्पर्य यह था कि यदि यह नाम तुम्हें अच्छा न लगता हो तो मैं और कुछ सोच सकता हूँ। अभी समय है।"

"तुम्हें अच्छा लगता है ?" उसने पूछा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"हाँ, अन्यथा मैं रखता ही क्यों।"

"तो फिर और कुछ मत सोचो।" यह कहकर वह मौन हो गयी।

चन्द्रशेखर भी कुछ सोच रहा था, अतएव कुछ समय तक दोनों ओर से मौन रहा, जिसे अंत में चन्द्रशेखर ने भंग किया। उसने कहा, "मैंने कल प्रातः-काल प्रस्थान करने का निश्चय किया है।"

"कर सकोगे?" वह बोली।

"मैं सारी व्यवस्था भी कर चुका हूँ।"

"यह तुमने बहुत अच्छा किया," उसने धीमे स्वर में टिप्पणी की और क्षण-भर रुककर फिर कहा, "दो-चार दिन में मैं भी यहाँ से चल दूँगी।"

चन्द्रशेखर ने हँसकर कहा, "दो-चार दिन में नहीं, तुम्हें भी कल ही यहाँ से चल देना होगा। और आगे बढ़कर फिर पीछे नहीं लौटा जाता, तुम्हें कल प्रातः-काल मेरे साथ चलना होगा।"

वह निहाल हुए-से स्वर में बोली, "परन्तु मैं कल प्रातःकाल चल कैसे पाऊँगी? अभी तो उठते-बैठते थक जाती हूँ।"

"उसकी चिन्ता न करो। वैद्यजी एक पाक देंगे जिसके सेवन से तुम बहुत शीघ्र फिर पहले जैसी हो जाओगी।"

"जब हो जाऊँगी तब हो जाऊँगी, परन्तु चलना तो कल प्रातःकाल ही है। अभी मुझमें घड़ी भर भी अश्व पर बैठने की शक्ति नहीं है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "उसकी भी चिन्ता न करो। तुम्हें क्षणभर के लिए भी अश्व पर नहीं बैठना होगा। तुम शिविका में चलोगी, जिसका प्रबंध वैद्यजी ने कर दिया है। उसका पारिश्रमिक हमें उद्‌भाण्ड पहुँचकर देना होगा। अब तुम्हें केवल अपने मन को दृढ़ कर लेना है। कठिनाई किसी प्रकार की नहीं होगी।"

"और तुम?" उसने कहा, "तुम कैसे चलोगे?"

"मैं अपने अश्व पर तुम्हारे साथ-साथ चलूँगा।"

"तब तो उद्‌भाण्ड तक पहुँचने में बहुत समय लग जाएगा। ऐसा क्यों नहीं करते कि तुम अश्व पर चले जाओ? मैं शिविका में पीछे से आती रहूँगी।"

चन्द्रशेखर ने दृढ़ निश्चय के स्वर में कहा, "नहीं, किन्नरी, मैं ऐसा नहीं करूँगा। मैं तुम्हें अकेली छोड़कर नहीं जाऊँगा। विलम्ब होता है तो हो, मुझे उसकी इतनी चिन्ता नहीं है। तुरुष्क उस ओर नहीं गये हैं, अतएव विलम्ब से कुछ बनना-बिगड़ना नहीं है। परन्तु यदि मैं तुम्हें अकेली छोड़कर चला जाऊँ और मार्ग में कहीं फिर तुम्हारी ऐसी ही दशा हो जाए, तो बहुत कुछ बिगड़ सकता है। अतएव मैं तुम्हारे साथ चलूँगा, और हमें कल प्रातःकाल प्रस्थान करना है।"

और अगले दिन प्रातःकाल उन्होंने वैद्यजी के चरण छूकर, और उनसे आशीर्वाद पाकर, उद्‌भाण्ड की दिशा में प्रस्थान कर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

—१२—

इस प्रकार शिविका के साथ धीरे-धीरे चलता हुआ चन्द्रशेखर जब उद्भाण्ड पहुँचा तब वहाँ स्थिति स्पष्ट होने लगी थी और उसके करने के लिए अधिक कुछ शेष नहीं रह गया था।

उत्तर से महमूद के सम्बन्ध में विश्वस्त समाचार प्राप्त हो चुके थे। यह चन्द्रशेखर ने मार्ग में ही सुना था कि महमूद ने अपने आक्रमण का अगला लक्ष्य नगरकोट को बनाया था। परन्तु जब उद्भाण्ड आकर उसे नगरकोट के पतन का विस्तृत विवरण सुनने को मिला तो वह महमूद की सामरिक प्रतिभा की प्रशंसा किये बिना न रह सका।

नगरकोट वर्तमान कांगड़ा क्षेत्र में विपाशा और वाणगंगा नदियों के बीच में एक पहाड़ी के शीर्ष पर स्थित था। नदियाँ भी दुर्गम थीं और पहाड़ी भी, इस कारण यह दुर्ग अभेद्य समझा जाता था। उसके भीतर एक मन्दिर था जिसकी समृद्धि लोक-विश्रुत थी। कहा जाता था कि जितनी धन-सम्पत्ति उस अकेले मन्दिर में थी उतनी किसी भारतीय राज्य के कोष में नहीं थी। उसकी यही ख्याति महमूद को उद्भाण्ड से विमुख कर उस ओर खींच ले गयी थी।

साधारण परिस्थितियों में नगरकोट पर विजय पाना महमूद के लिए भी बड़ा कठिन होता। परन्तु उस समय दुर्ग अरक्षित स्थिति में था। उसकी सम्पूर्ण सेना आनन्दपाल की सहायता के लिए गयी थी। महमूद यह जानता था। अतएव वह आंधी की गति से पड़ाव पर पड़ाव डालता राजपूत सेना के लौटने से पूर्व ही नगरकोट के द्वार पर जा खड़ा हुआ। विस्मित, त्रस्त् अरक्षित दुर्ग ने अपने द्वार बंद कर लिये और अपनी सेना के लौटने की प्रतीक्षा करने लगा। महमूद भी घेरा डालकर बैठ गया और उसके धनुर्धर चारों ओर से मृत्यु और विनाश की वर्षा करने लगे। इस विनाश से विचलित होकर दुर्ग ने शीघ्र ही संधि का प्रस्ताव किया जिसके परिणामस्वरूप महमूद अपनी अंगरक्षक सेना के साथ दुर्ग के भीतर गया और वहाँ से मनमानी लूट लेकर लौटा।

कहा जा रहा था कि नगरकोट से उसे सात कोटि स्वर्ण-मुद्राओं, सात लाख चार सौ मन ठोस स्वर्ण तथा चाँदी और बीस मन रत्नों एवं आभूषणों की प्राप्ति हुई। इनके अतिरिक्त वह अनेक उत्कृष्ट कोटि के रत्न-जटित वस्त्रालंकरण, धवल चांदी का बना हुआ एक वृहदाकार मंदिर जिसे सुविधानुसार तोड़ा तथा जोड़ा जा सकता था, कौशेय वस्त्र-निर्मित एक विलक्षण चँदोवा जिसके नीचे कई सहस्र व्यक्ति एक साथ बैठ सकते थे और जिसके आधार-स्तम्भ ठोस सोने-चाँदी के थे, और एक रत्न-जटित बहुमूल्य सिंहासन भी अपने साथ ले गया।

इतना सब पाकर महमूद की तृष्णा कम से कम कुछ समय के लिए संतुष्ट और शान्त हो गयी थी, और वह नगरकोट से सीधा गजनी की ओर लौट पड़ा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इधर उद्भाण्ड में भी स्थिति बहुत स्पष्ट हो चुकी थी। महाराज आनन्दपाल लज्जा और ग्लानि के कारण प्रासाद से बाहर नहीं निकलते थे। पराजय के लिए चारों ओर से उन्हें ही दोषी ठहराया जा रहा था, और स्वयं उनकी प्रजा भी उनकी निन्दा कर रही थी। चारों ओर क्षोभ और संभ्रम का वातावरण था। जिन राज्यों की सेनाएं आनन्दपाल की सहायता के लिए आयीं थीं, उनका असंतुष्ट होना स्वाभाविक था। सेनाएं लौटकर जा चुकी थीं, परन्तु उन राज्यों के प्रतिनिधि अभी उद्भाण्ड में थे। वे आनन्दपाल से भेंट करना चाहते थे, परन्तु सफल नहीं हो पा रहे थे। चन्द्रशेखर उनसे मिला। वे सब बहुत क्षुब्ध थे और आनन्दपाल के लिए निस्संकोच असंयमित भाषा का प्रयोग कर रहे थे। एक ने तो भाग्यहीन शाही शासक को विश्वासघाती और देशद्रोही तक कह डाला।

चन्देल सेना भी प्रस्थान के लिए उत्सुक तथा तत्पर थी और केवल चन्द्रशेखर की प्रतीक्षा में ठहरी हुई थी। उसके लौटने में जो विलम्ब हुआ था उसके कारण सभी बहुत चिन्तित थे। उसके सकुशल लौट आने पर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। चन्द्रशेखर ने आकर अपनी सेना की गणना करायी। विजयसिंह सहित छः सौ से कुछ अधिक सैनिक तथा अधिकारी युद्ध से लौटकर नहीं आये थे।

चन्द्रशेखर उद्भाण्ड के शासनाधिकारियों से मिलने गया। परन्तु वहाँ विचित्र अव्यवस्था का साम्राज्य था। कोई कुछ जानता नहीं था, कोई निर्णय का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने को उत्सुक नहीं था। बार-बार उनसे मिलने के पश्चात् बड़ी कठिनाई से चन्द्रशेखर अपनी सेना के लिए आवश्यक खाद्य-सामग्री तथा मुद्रा प्राप्त करने में सफल हो सका। अन्त में उसने अपने अधीनस्थ अधिकारियों के साथ परामर्श करके महोत्सवनगर के लिए प्रस्थान करने का दिन निश्चित कर दिया, और उसके लिए आवश्यक व्यवस्था होने लगी।

किन्नरी अब लगभग स्वस्थ हो आयी थी। परन्तु उद्भाण्ड पहुँचने के कुछ पहले से ही वह मौन अधिक रहने लगी थी। इतनी मौन तो नहीं रहती थी कि कभी कुछ कहे ही न, परन्तु जितना नितान्त आवश्यक होता था उससे अधिक एक शब्द भी नहीं बोलती थी। वह साधारणतया गम्भीर तथा उदास, कुछ खोई-खोई-सी, कुछ डूबी-डूबी-सी, रहती थी, और चन्द्रशेखर की दृष्टि से बचने का प्रयास करती थी। अपने भोजन इत्यादि के सम्बन्ध में भी वह निपट उदासीन रहती थी जिसके परिणामस्वरूप चन्द्रशेखर को अपने अन्य कार्यों के अतिरिक्त उसकी सारी आवश्यकताओं एवं सुविधाओं का भी ध्यान रखना पड़ता था। वह समझता था कि किन्नरी की वर्तमान उदासीनता उसकी परिस्थितियों में स्वाभाविक है और अधिक समय तक नहीं चलेगी। अतएव वह साधारणतया बड़ी सहानुभूति के साथ उसका ध्यान रखता था और स्वयं यथासम्भव कुछ नहीं कहता था।

परन्तु उद्भाण्ड पहुँचने के दूसरे ही दिन उसका बड़े यत्न से बाँधा हुआ धैर्य का बाँध टूट गया और उसने उपालम्भ के स्वर में कहा, "किन्नरी, तुम तो

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहती थीं कि साथ रहकर मेरी सेवा करोगी ?"

किन्नरी मुख से तो कुछ नहीं बोली, परन्तु उसकी बड़ी-बड़ी आँखें मुखर होकर चन्द्रशेखर की ओर उठ गयीं। उनमें इतनी निरीहता थी, इतनी दयनीयता थी, इतनी अपार व्यथा थी, कि चन्द्रशेखर अपनी दृष्टि स्थिर नहीं रख सका। क्षण भर में उसका सम्पूर्ण क्षोभ द्रवित हो गया, उसका हृदय पश्चात्ताप से भर गया, और उसने अपराधी की भांति अपनी दृष्टि नीची कर ली। किन्नरी कुछ क्षण तक अपलक उसकी ओर निहारती रही, फिर फूट-फूटकर रोने लगी।

चन्द्रशेखर पहले तो किंकर्तव्यविमूढ़ बना खड़ा-खड़ा उसे देखता रहा, फिर आकर उसके निकट बैठ गया और सिर पर हाथ फेरते हुए बोला, "मेरा यह उद्देश्य नहीं था, किन्नरी। मैं तुम्हारे हृदय को दुःखी नहीं करना चाहता था। मेरा विश्वास करो, किन्नरी।"

किन्नरी ने तुरन्त अपनी सांस रोक ली। उसका रोना बंद हो गया और वह अपने उत्तरीय के छोर से आँखें पोंछने लगी। परन्तु बोली एक शब्द भी नहीं।

तब चन्द्रशेखर ने ही स्वर में सहानुभूति घोलते हुए फिर कहा, "मैं केवल यह कहना चाहता था, किन्नरी कि तुम्हें अपना भी कुछ ध्यान रखना चाहिए। अभी तक मुझे अवकाश रहता था, अतएव मैं तुम्हारी चिन्ता किये रहता था और कोई कष्ट नहीं होने देता था। परन्तु अब स्थिति भिन्न हो गयी है। यहाँ मुझे अनेक चिन्ताएँ करनी होंगी, कभी-कभी इतना व्यस्त रहना होगा कि सम्भव है दिन-दिन भर बाहर ही रहना पड़े। ऐसी दशा में यदि तुम अपने प्रति उदासीन बनी रहोगी तो तुम्हारे साथ-साथ मुझे भी बहुत कष्ट होगा।"

नीची दृष्टि किये हुए धीमे स्वर में किन्नरी ने कहा, "अब कभी तुम्हें कष्ट नहीं होने दूँगी।"

"और अपने आपको ?"

"अपने आपको भी नहीं।"

"भोजन नियम से कर लिया करोगी ?"

किन्नरी ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया।

"और अपनी आवश्यकताएँ मुझे बता दिया करोगी ?"

किन्नरी ने फिर सिर हिलाकर स्वीकृति व्यक्त की।

चन्द्रशेखर ने कहा, "तो बताओ इस समय तुम्हें किस वस्तु की आवश्यकता है ?"

"किसी की नहीं", किन्नरी ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

चन्द्रशेखर हँसकर बोला, "सत्य कह रही हो ? इस समय तुम्हें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है ? क्या इस समय तुम्हारे पास पर्याप्त वस्त्र हैं ? स्नान करके क्या पहनोगी ? कि स्नान करोगी ही नहीं ? बोलो, इस समय तुम्हें पहनने के लिए वस्त्रों की आवश्यकता है कि नहीं ?"

किन्नरी ने दृष्टि पूर्ववत् नीची किये हुए केवल सिर हिलाकर स्वीकार किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि उसे इस समय वस्त्रों की आवश्यकता है।

चन्द्रशेखर ने कहा, "तो चलो, मेरे साथ हाट चलो। जो आवश्यकता हो क्रय कर लेना। उठो, चलो।"

परन्तु वह नहीं उठी। बोली, "तुम क्रय कर लाना।"

"मैं कैसे क्रय कर लाऊँगा? मैं क्या जानूँ स्त्रियों की क्या आवश्यकताएँ होती हैं। पुरुषों के वस्त्र कहो तो ला सकता हूँ।"

"जो ले आओगे वही पहन लूँगी," किन्नरी ने कहा।

चन्द्रशेखर निरुत्तर हो गया। बोला, "अच्छा, वस्त्र मैं ही क्रय कर लाऊँगा। परन्तु तुमने जो आश्वासन दिया है उसे तो नहीं भूलोगी?"

इस बार किन्नरी ने नकारात्मक सिर भी हिलाया और मुख से 'नहीं' भी कहा।

चन्द्रशेखर चला गया और जाकर अपने अनेक कार्यों में व्यस्त हो गया। किन्नरी भी अपने आश्वासन को फिर नहीं भूली। वह अपने भोजन इत्यादि की चिन्ता से साथ-साथ चन्द्रशेखर का ध्यान भी रखने लगी। इसके परिणामस्वरूप उदासीनता के साथ उसकी उदासी भी धीरे-धीरे कम होने लगी। चन्द्रशेखर का अधिक समय बाहर व्यतीत होता था। केवल रात्रि में और प्रातःकाल कुछ समय तक वह डेरे पर रहता था। परन्तु किन्नरी में हो रहा परिवर्तन उससे छिपा नहीं रहा, और इसे देखकर उसको प्रसन्नता हुई।

इस प्रकार जब उद्भाण्ड लौटने के आठ दिन पश्चात् संध्या को चन्द्रशेखर ने आकर घोषणा की कि महोत्सव नगर के लिए प्रस्थान का निश्चय हो गया है और उसकी व्यवस्था की जा रही है, तो किन्नरी ने भी प्रसन्नता व्यक्त की और पूछा, "मेरे लिए क्या आज्ञा है? मुझे क्या करना होगा?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "तुम्हें अब अपने घर जाना होगा। उसकी भी व्यवस्था हो रही है।"

परन्तु किन्नरी विग्रह के लिए तत्पर हो गयी। बोली, "मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।"

"क्यों?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

किन्नरी ने कहा, "तुम्हें मुझसे परामर्श किये बिना मेरे सम्बन्ध में कोई व्यवस्था करने का क्या अधिकार है? मैं पहले भी कह चुकी हूँ और फिर कहे देती हूँ कि मैं वहाँ नहीं जाऊँगी, कभी नहीं जाऊँगी। वहाँ मेरा कौन बैठा है? तुम क्या चाहते हो, यह मैं भली प्रकार समझती हूँ। परन्तु तुम भी भली प्रकार समझ लो। मैं प्राण दे दूंगी परन्तु वहाँ नहीं जाऊँगी।"

"कहाँ नहीं जाओगी?" चन्द्रशेखर ने हँसकर पूछा।

"जहाँ तुम भेज रहे हो, वहाँ। यह भी कोई हँसने की बात है जो तुम बैठे-बैठे हँस रहे हो?"

चन्द्रशेखर ने पूर्ववत् हँसते हुए कहा, "हँसने की बात तो है ही। स्वयं मूर्खता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करती हो, और मेरे हँसने पर प्रतिबंध लगाना चाहती हो ?''

वह बोली, ''मैंने मूर्खता की कोई बात नहीं की है। केवल इतना कहा है कि मैं अब अपने घर नहीं जाऊँगी।''

''हाँ, यही कहा है, और यही बात मूर्खता की है। क्या जहाँ तुम मेरे साथ चलोगी वह तुम्हारा घर नहीं है ?''

किन्नरी सहसा खिलखिला कर हँस पड़ी और बोली, ''मैं स्वीकार करती हूँ यह मेरी मूर्खता थी। मैं वास्तव में मूर्ख हूँ। परन्तु अभी मुझे तुम्हारे साथ रहते दिन ही कितने हुए हैं। पाषाण पर चिह्न बनने में समय लगेगा ही।''

चन्द्रशेखर ने कहा, ''तो पाषण ध्यान से सुने औन बार-बार सुने। हमें आज के तीसरे दिन यहाँ से प्रस्थान करना है। हम पहले महोत्सव नगर चलेंगे जो चन्देल साम्राज्य की वैभवशाली राजधानी है। फिर, वहाँ कुछ दिन रुककर, हम अजयगढ़ जाएंगे जहाँ के कुशल शिल्पी देखते-देखते पाषाण में सौन्दर्य अंकित कर देते हैं।''

''मेरे लिए अलग अश्व का प्रबंध कर लिया है ?'' किन्नरी ने पूछा।

''क्यों ?''

''इस बार मैं न शिविका में यात्रा करूंगी न तुम्हारे साथ अश्व पर। मुझे अश्वारोहण का अभ्यास है। देखोगे तो आश्चर्य करोगे।''

चन्द्रशेखर ने कहा, ''परन्तु मैं अपने आश्चर्य को भविष्य के लिए सुरक्षित रखने की अनुमति चाहता हूँ। मैं तुम्हारे लिए व्यवस्था कर चुका हूँ। तुम रथ में चलोगी। इस समय तुम चन्देल सेनापति की संरक्षिता हो, अतएव तुम्हारा वाहन उसकी मर्यादा के अनुकूल ही होगा।''

''तुम भी रथ में चलोगे ?'' उसने पूछा।

चन्द्रशेखर ने कहा, ''नहीं, मैं तुम्हारे रथ के साथ-साथ अपने अश्व पर चलूंगा। मेरे लिए यही उचित होगा।''

''तो ऐसा ही करना,'' किन्नरी ने कहा। ''तुम्हारे लिए जो उचित हो, तुम्हें जिसमें सुविधा हो, तुम्हें जिससे सुख मिले, वही होना चाहिए। मेरे लिए वही कर्तव्य है। बस इतनी प्रार्थना है कि जहाँ मुझसे भूल हो जाए वहाँ तुम सुधार देना, और मुझसे रुष्ट मत होना।''

चन्द्रशेखर उठकर खड़ा हो गया और बोला, ''तुम्हारी प्रार्थना स्वीकृत हुई।''

''परन्तु तुम जा कहाँ रहे हो ?'' किन्नरी ने पूछा।

''जहाँ से आया था वहीं फिर जा रहा हूँ। अभी अनेक बातों की व्यवस्था करनी है। सम्भव है लौटने में विलम्ब हो जाए।''

''और भोजन ?''

''लौटकर करूँगा। इस समय तनिक भी अवकाश नहीं है। वास्तव में अभी मुझे आना ही नहीं चाहिए था। परन्तु प्रस्थान का निश्चय हुआ तो तुम्हें सूचना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देने चला आया था।'' यह कहकर वह घूमा और द्वार की ओर बढ़ने लगा।

परन्तु वह दो पग भी नहीं चल पाया होगा कि पीछे से पुकार हुई। ''सुनो!'' वह घूमकर उसी स्थान पर खड़ा हो गया।

किन्नरी ने कहा, ''सुनो! अब मैं कभी उदास नहीं रहूँगी।''

चन्द्रशेखर ने सुन लिया परन्तु कहा कुछ नहीं। किन्नरी ही फिर बोली, ''बस, एक बात, केवल एक बात, और सुन लो! अब मैं रोया भी नहीं करूँगी। बस, अब जाओ।''

परन्तु चन्द्रशेखर नहीं गया। वहीं खड़ा-खड़ा चिढ़ाता हुआ बोला, ''पहले क्या किसी वैद्य ने रोने को बताया था?''

''इसे तुम नहीं समझ सकोगे,'' किन्नरी ने उत्तर दिया। ''अपना सम्पूर्ण अतीत पीछे छोड़कर नये जीवन में प्रवेश करते हुए पग-पग पर रोना आ ही जाता है। तुम मेरे स्थान पर होते तो तुम्हें भी आता।''

''प्रत्येक स्त्री को एक न एक दिन अपना अतीत पीछे छोड़कर नये जीवन में प्रवेश करना पड़ता है,'' चन्द्रशेखर ने अनावश्यक टिप्पणी की।

किन्नरी सहसा बहुत गम्भीर हो गयी और बोली, ''परन्तु प्रत्येक स्त्री अपना सम्पूर्ण अतीत, अपना नाम तक, पीछे नहीं छोड़ आती है। और प्रत्येक स्त्री जब नये जीवन में प्रवेश करती है तब उसकी आँखों में अनेक इन्द्रधनुषी स्वप्न होते हैं, और उसके हृदय में आकांक्षाओं की शत-शत कलियाँ होती हैं। वह जिस नये गृह में जाती है उसकी स्वामिनी होती है और अपने स्वप्नों से उसे सजाती है। फिर भी अतीत से विदा होते समय वह रो पड़ती है। मेरे पास तो केवल सुधियाँ हैं, स्वप्न एक भी नहीं है। मैं······परन्तु तुम अब जाते क्यों नहीं हो? खड़े क्यों हो?''

चन्द्रशेखर ने कुछ कहने के लिए मुख खोला, परन्तु फिर कुछ सोचकर, वह बिना एक शब्द बोले चुपचाप बाहर निकल गया।

—१३—

महोत्सव नगर में चन्द्रशेखर का स्वागत सबसे पहले शंकर ने किया। वह नगर-द्वार पर पहले से ही उपस्थित था।

सघन श्याम वर्ण वाला, ठिगना और मोटा, शंकर नामधारी यह जीव चन्द्रशेखर का बहुत पुराना भृत्य था। वास्तव में उसका भृत्यत्व चन्द्रशेखर के जन्म से भी अधिक पुराना था। आरम्भ में वह चन्द्रशेखर के दादा, रामनगर के सामन्त विशालदेव का अनुचर था, और बाद में उनके नवजात पौत्र की परिचर्या के लिए नियुक्त कर दिया गया था। तब से वह चन्द्रशेखर की सेवा में ही रहा था। उसने शिशु चन्द्रशेखर को गोद में खिलाया और बाँहों में झुलाया था,

 . Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा स्वयं अश्व बनकर अपने बालक-स्वामी को अपनी पीठ पर अश्वारोहण का अभ्यास कराया था। इस कारण अब वह अपने आपको अपने स्वामी का अभिभावक भी समझता था। वैसे वह मूर्ख था, और अधिकांश मूर्खों की भाँति हृदय से स्वच्छ और निष्कपट था। परन्तु जहाँ स्वामी के हित का प्रश्न होता था वहाँ वह कभी मूर्खता नहीं करता था। दूसरे शब्दों में, वह मस्तिष्क से मूर्ख था परन्तु हृदय से बड़ा बुद्धिमान था। अपने स्वामी के प्रति उसका भाव वात्सल्यपूर्ण और लगाव अटूट था। चन्द्रशेखर भी उसके इस भाव का आदर करता था और उसके साथ परिवार के विशेषाधिकार प्राप्त सदस्य जैसा व्यवहार करता था। अतएव शंकर को नगर-द्वार पर ही अपनी प्रतीक्षा में खड़ा पाकर उसे प्रसन्नता अधिक हुई, आश्चर्य कम हुआ।

परन्तु शंकर की प्रसन्नता का आर-पार नहीं था। दूर से ही चन्द्रशेखर को देखकर वह नाचने-कूदने तथा मुख से भांति-भांति की हर्षसूचक ध्वनियाँ निकालने लगा। द्वार-रक्षक हँसने लगे और आगे चल रहे चन्देल सैनिक घूम-घूमकर यह कौतुक निहारने लगे, परन्तु शंकर के उल्लास-नृत्य में अन्तर नहीं पड़ा। वह तभी रुका जब चन्द्रशेखर ने अपने अश्व पर से उतर कर उसे दोनों बाँहों में भर लिया।

"तू इस समय यहाँ कैसे खड़ा था रे?" चन्द्रशेखर ने उसे मुक्त करते हुए प्रश्न किया।

"तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ा था," शंकर ने उल्लास बिखेरते हुए उत्तर दिया। वह अपनी प्रसन्नता को समेट नहीं पा रहा था।

"तुझे यह कैसे ज्ञात हुआ कि मैं आज आऊँगा?" चन्द्रशेखर ने फिर पूछा।

शंकर बोला, "मैं तो नित्य यहीं खड़ा रहता था। ये रक्षक साक्षी हैं। प्रातःकाल आ जाता था और गोधूलि के पश्चात् तक यहीं रहता था। जानता था तुम शंकर से कह गये हो तो लौटकर अवश्य आओगे। युद्ध का समाचार सुनकर और लोग चिन्तित हो गये थे, परन्तु मैं निश्चिन्त था। मुझे विश्वास था कि तुम लौटकर अवश्य आओगे। मैंने नीलकंठ बाबा की मान्यता मानी थी कि मेरे स्वामी लौट आएँ तो कालंजर जाकर एक सहस्र बिल्व पत्र चढ़ाऊँगा। अब यहाँ शिवरात्रि निकट आ रही है। तभी चलेंगे। इस बार तुम्हें भी मेरे साथ चलना होगा। मैं अकेला नहीं जाऊँगा, चाहे जो हो। तुम दो वर्ष से कालंजर नहीं गये हो। चलोगे तो......"

"पहले हवेली तो चल," चन्द्रशेखर ने टोककर कहा, "कि यहीं से सीधा कालंजर चल देगा? लम्बी यात्रा के पश्चात् हमें जल चाहिए, भोजन चाहिए, विश्राम चाहिए। परन्तु तू है कि यहीं खड़ा-खड़ा अपना पुराण बाँच रहा है।"

"तो चलते क्यों नहीं हो, हवेली में सारी व्यवस्था है।" यह कहकर वह आगे-आगे दौड़ता हुआ चल पड़ा।

"ऐसे नहीं रे!" चन्द्रशेखर ने पुकार कर कहा।

शंकर उलटे पाँवों लौट आया और बोला, "तो कैसे?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रशेखर ने कहा, "तुझे इस रथ के साथ चलना होगा।"

शंकर ने अब पहली बार उस रथ की ओर देखा जो चन्द्रशेखर के साथ ही आकर उसके पीछे खड़ा हो गया था। उसकी सम्पूर्ण मुद्रा में कौतूहल का भाव उभर आया। उसने कहा, "तो मैं इस रथ के साथ चलूँगा। परन्तु इसमें है कौन ?"

"तेरे आँखें नहीं हैं ?" चन्द्रशेखर ने कहा, "जाकर देख क्यों नहीं लेता है ?"

शंकर उत्सुक गति से रथ की ओर बढ़ा, और चन्द्रशेखर ने आरूढ़ होकर अपना अश्व आगे बढ़ा दिया। परन्तु कुछ ही क्षण पश्चात् शंकर फिर भागता हुआ उसके निकट आ पहुँचा और धीमे किन्तु सशंकित स्वर में बोला, "इन्हें क्या हवेली में ले चलोगे ?"

"हाँ," चन्द्रशेखर ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

परन्तु शंकर की आशंका का निवारण नहीं हुआ। वह सिर खुजलाता हुआ धीमे, भेद के स्वर में बोला, "परन्तु हवेली में माताजी हैं।"

"हवेली में माताजी हैं !" चन्द्रशेखर ने साश्चर्य दुहराया।

शंकर ने विजय के संतुष्ट स्वर में कहा, "हाँ। इसी कारण तो मैंने कहा कि इन्हें हवेली में ले चलना उचित नहीं होगा।"

"क्यों उचित नहीं होगा ?" चन्द्रशेखर ने भुँझलाकर कहा। "तू महामूर्ख है। यह एक कुलीन क्षत्रिय-कन्या है, और मेरी आश्रिता है। माताजी के पास तो इसे जाना ही था। परन्तु माताजी के यहाँ होने की बात तूने पहले क्यों नहीं बतायी ? वे कब आयीं थीं ? क्या पिताजी भी यहीं हैं ? कोई विशेष बात हो गयी है क्या ?"

चन्द्रशेखर के स्वर तथा एक साथ किये गये इतने सारे प्रश्नों से आतंकित होकर शंकर ने कहा, "विशेष बात कोई नहीं है। माताजी तुम्हारा समाचार पाने के लिए आयीं थी। पिताजी भी उनके साथ आये थे। वे तो दो दिन पश्चात् कालंजर लौट गये, परन्तु माताजी नहीं गयीं। कहने लगीं जब कुछ समाचार मिल जाएगा तभी लौटकर जाऊँगी।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "परन्तु यह सब तूने मुझे पहले क्यों नहीं बताया। तू महामूर्ख है, पूरा भोलेनाथ है।"

"सो तो मैं हूँ ही। इसी कारण पिता ने मेरा नाम शंकर रखा था।" यह कहते हुए शंकर ने अपनी सम्पूर्ण दंत-पंक्ति उद्घाटित कर दी। ऐसे अवसरों के लिए उपर्युक्त दो वाक्य सदा उसकी जिह्वा पर रहते थे।

"अच्छा, अब तू बिना एक शब्द और बोले यहाँ से प्रस्थान तो कर जा," चन्द्रशेखर ने कहा। "भागता हुआ सीधा हवेली जा और सबसे पहले माताजी को समाचार दे। मैं रथ के साथ पीछे-पीछे आ रहा हूँ।"

शंकर बिना एक शब्द और बोले तुरन्त भागता हुआ वहाँ से चला गया।

किन्नरी भी अपने रथ में बैठी यह सारा कौतुक देख रही थी; किन्तु कुछ दूर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होने के कारण वार्तालाप स्पष्ट नहीं सुन पा रही थी। अतएव उसने शंकर के जाने के पश्चात् चन्द्रशेखर को संकेत करके रथ के निकट बुलाया और पूछा, "यह कौन जीव था? क्या कह रहा था?"

"मेरा अनुचर है, मेरे शैशव से सेवक रहा है," चन्द्रशेखर ने हँसते हुए उत्तर दिया, "और जीव अवश्य है, परन्तु अनेक मनुष्यों से अच्छा है।"

किन्नरी भी हँस दी और बोली, "अवश्य होगा, आरम्भ से ही तुम्हारे साथ जो रहा है। परन्तु कह क्या रहा था?"

"कह रहा था कि माताजी यहीं हैं। मेरी माताजी वैसे कालंजर में रहती हैं, परन्तु आजकल यहीं हैं। तुम्हें भय तो नहीं लग रहा है?"

किन्नरी ने कहा, "नहीं, मुझे माताजी से भय नहीं लगेगा, तुम निश्चिन्त रहो। परन्तु तुम्हें······"

"नहीं-नहीं, भय मुझे भी नहीं लग रहा है," चन्द्रशेखर ने शीघ्रतापूर्वक कहा, "परन्तु थोड़ा संकोच अवश्य लग रहा है। बात यह है कि मैं दो वर्ष से उनके सामने नहीं पड़ा हूँ। युद्ध के लिए जाने से पहले भी चरणस्पर्श करने नहीं गया था।"

"तो अब चरण छूकर क्षमा मांग लेना," किन्नरी ने कहा।

"सो तो करूंगा ही। और माताजी मुझे तुरन्त क्षमा भी कर देंगी, यह मैं भली प्रकार जानता हूँ। मेरी माताजी एक विलक्षण स्त्री हैं, किन्नरी। तुम्हें भी उनसे मिलकर प्रसन्नता होगी। परन्तु अब हमें विलम्ब नहीं करना चाहिए, वे प्रतीक्षा कर रही होंगी।" यह कहकर चन्द्रशेखर ने चालक को रथ आगे बढ़ाने का आदेश दे दिया।

हवेली के सिंह-द्वार पर खड़ी उसकी माता वास्तव में प्रतीक्षा कर रही थीं।

देवी रत्नमाला की आयु पचास वर्ष से अधिक की हो चुकी थी, परन्तु वृद्धावस्था अभी उनके निकट नहीं आयी थी। दमकते हुए भाल के दोनों पार्श्वों में दो-चार केश-तन्तु उजले अवश्य हो गये थे, परन्तु मस्तक अथवा मुख पर कहीं भी संकोच का आरम्भ नहीं हुआ था। वर्ण में थोड़ा परिवर्तन अवश्य हो गया था, उषा अब चन्द्रिका में परिणत अवश्य हो गयी थी, परन्तु इससे उनके सौन्दर्य में गरिमा की वृद्धि ही हुई थी।

चन्द्रशेखर ने निकट पहुँचते ही अश्व से उतर कर माता के चरण स्पर्श किये और वे कुछ कहें इसके पूर्व ही स्वयं कह डाला, "तुम्हारे लिए एक सेविका लाया हूँ। रथ में है।"

रत्नमाला ने एक बार ऊपर से नीचे तक उसे देखा, फिर स्नेह और अधिकार के मिश्रित स्वर में कहा, "तू भीतर चल। मैं उसे लेकर अभी आती हूँ।"

चन्द्रशेखर चुपचाप भीतर चला गया। अजयगढ़ की चन्देल सेना का सेनापति अपनी माता से अब भी डरता था।

रत्नमाला ने आगे बढ़कर स्वयं किन्नरी को रथ से नीचे उतारा। किन्नरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उतरते ही उनके चरण स्पर्श करने के लिए झुकी, परन्तु उन्होंने उसे उठाकर आशीर्वाद देते हुए कंठ से लगा लिया।

किन्नरी निहाल हो गयी। अपनी माता की मृत्यु के समय वह बहुत छोटी थी, और तबसे उसने कभी किसी स्त्री से ऐसा स्नेह नहीं पाया था।

कुछ क्षण पश्चात् उसे हवेली के भीतर ले जाते हुए रत्नमाला ने बड़े स्नेह से पूछा, "तेरा नाम क्या है री ?"

क्षण भर किन्नरी संकोचवश मौन रही, मानों निश्चय न कर पा रही हो कि कौन-सा नाम बताये। फिर उसने अत्यन्त धीमे स्वर में कहा, "किन्नरी।"

"किन्नरी ?" रत्नमाला ने दुहराया।

"हाँ।"

रत्नमाला ने कहा,"तेरा नाम बड़ा सुन्दर है। कंठ भी सुन्दर प्रतीत होता है। तुझे संगीत आता है ?"

"नहीं," किन्नरी ने क्षमा-याचना सी करते हुए कहा।

"नहीं आता है तो आजाएगा," रत्नमाला ने आश्वासन दिया। "मैं स्वयं तुझे संगीत की शिक्षा दूँगी। अन्यथा तेरा नाम कैसे सार्थक होगा ?"

किन्नरी के मन में एक बार आया कि वह इस ममतामयी नारी के समक्ष अपने नाम का सम्पूर्ण रहस्य खोल दे, स्पष्ट कह दे कि किन्नरी मेरा वास्तविक नाम नहीं है, आपके पुत्र का दिया हुआ है। परन्तु फिर कुछ सोचकर वह चुप रह गयी।

तभी उसने रत्नमाला को कहते हुए सुना, "हवेली का यह कक्ष आज से तेरा हुआ। चन्द्रशेखर का उस ओर है। अब तू घड़ी भर विश्राम कर ले। लम्बी यात्रा करके आ रही है, थक गयी होगी। मैं फिर आऊँगी।"

इस प्रकार जब कुछ समय पश्चात्, स्नानादि से निवृत्त होकर चन्द्रशेखर माता के पास पहुँचा तब वे भोजन लिये हुए उसकी प्रतीक्षा कर रहीं थी, परन्तु किन्नरी वहाँ नहीं थी।

रत्नमाला ने उसे देखते ही कहा, "चल, इधर आकर बैठ। पहले भोजन आरम्भ कर।"

आज्ञाकारी बालक की भाँति आसन ग्रहण करके चन्द्रशेखर ने भोजन करना आरम्भ कर दिया।

तब रत्नमाला ने फिर कहा, "हाँ, अब बोल तू क्या कह रहा था ?"

चन्द्रशेखर बोला, "कह रहा था तुम्हारे लिए एक सेविका लाया हूँ।"

"बड़ा योग्य पुत्र है तू !" रत्नमाला ने कहा, अपनी माता का कितना ध्यान रखता है ! अरे मूर्ख, तेरे पिता के राज्य में क्या मुझे सेविकाओं का अभाव है जो तू लाएगा तब मेरी सेवा होगी ? मुझे सेविकाओं की आवश्यकता नहीं है रे। आवश्यकता है एक अच्छी-सी, सुन्दर-सी पुत्रवधू की जिस पर मैं अपने हृदय का स्नेह उँडेल सकूँ, जिसके हाथों में तुझे सौंप कर निश्चिन्त हो सकूँ। तेरे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
पिता के वश की बात होती तो आज मुझे यह अभाव भी न होता। परन्तु इसकी पूर्ति वे नहीं कर सकते। केवल तू कर सकता है। सो तो करता नहीं है, और कहता है कि तुम्हारे लिए एक सेविका लाया हूँ! बड़ा आया है मेरे लिए सेविका लाने वाला!"

रत्नमाला के रुकते ही चन्द्रशेखर ने कुछ कहना चाहा, परन्तु रत्नमाला ने हाथ उठाकर उसका वर्जन करते हुए स्वयं फिर बोलना आरम्भ कर दिया, "तू चुपचाप भोजन करता रह और जो कुछ मैं कह रही हूं उसे सुन। तेरे पास मेरी किसी बात का उत्तर नहीं है, यह तू भी जानता है और मैं भी जानती हूँ। तूने अजयगढ़ से लिखकर तो भेज दिया था कि मैं कभी विवाह नहीं करूँगा, परन्तु मेरे सामने आकर ऐसा कहने का साहस तुझे नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ? क्यों तू तबसे कालंजर के इतने निकट रहकर भी कभी मेरे पास नहीं आया? क्या तू जानता नहीं है? तू भली प्रकार जानता है कि तेरे पास कोई तर्क नहीं है। तू यह भी जानता है कि मेरे सामने तेरा हठ नहीं चल सकेगा।"

"परन्तु मैं हठ······"

"एक बार कह चुकी हूँ कि तू अभी कुछ मत बोल," रत्नमाला ने उसे टोक कर कहा। "पहले मुझे कह लेने दे। मुझे अभी बहुत कुछ कहना है। दो वर्ष में इतना एकत्र हो गया है कि जब तक सब कह न लूंगी तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। तू अभी यही तो कहने जा रहा था न कि तू हठ नहीं कर रहा है? परन्तु तेरा यह असत्य मुझे नहीं पचेगा। यदि तूने पहले से मुझे बता दिया होता तो मैं तेरा विवाह नहीं रचाती। अधिक से अधिक यही हो सकता था कि तेरे पिता को सेना लेकर जाना पड़ता। परन्तु जब एक बार उसका विवाह अन्यत्र हो गया, तब कुछ भी करना उचित नहीं होगा। तू यह क्यों नहीं समझता है कि कुछ भी करना सम्भव नहीं है। और जो सम्भव नहीं है उसके लिए आग्रह करना निकृष्ट कोटि का हठ होता है। कह सकता है कि नहीं होता है? बोल, कह सकता है?"

चन्द्रशेखर ने सम्मोहित स्वर में कहा "नहीं।"

"परन्तु तू फिर भी अपनी भूल स्वीकार नहीं करेगा, यह नहीं समझेगा कि तेरा कभी विवाह न करने का हठ वास्तव में दुराग्रह है, एक बहुत बड़ी मूर्खता है। मैं स्वयं बड़ी हठी हूँ, तेरी माता हूँ। यदि मेरा एक पुत्र और होता तो मैं भी तुझसे कभी विवाह करने को न कहती। परन्तु तू यह कभी नहीं सोचता कि हमारी, तेरे पिता की और मेरी, सम्पूर्ण पूंजी अकेले तुझ में केन्द्रित है। तू यह नहीं सोचता है कि पुत्रवधू के बिना तेरी माता का जीवन कितना अपूर्ण है। तू यह भी नहीं सोचता कि यदि तू कभी विवाह नहीं करेगा तो तेरे पिता का, तेरे गौरवशाली पूर्वजों का, वंश समाप्त हो जाएगा। तूने केवल एक रट लगा रखी है कि तू विवाह नहीं करेगा। परन्तु मैंने भी निश्चय कर लिया है कि मैं अपने पुत्र का विवाह अवश्य रचाऊँगी। दो वर्ष तक यह आशा लिए प्रतीक्षा करती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रही हूँ कि आज नहीं तो कल तेरी सद्बुद्धि अवश्य जगेगी। परन्तु वह नहीं जगी। अब मैं भी प्रतीक्षा नहीं करूँगी। भली प्रकार सुन ले, तेरा यह हठ अब नहीं चलेगा। तुझे हाँ कहना होगा और अभी, इसी समय कहना होगा, अन्यथा मैं.........''

''हाँ कह क्यों नहीं देते हो ?'' द्वार के बाहर से शंकर ने कहा। वह न जाने कब वहाँ आकर खड़ा हो गया था।

रत्नमाला ने क्रोध से उसकी ओर देखकर कहा, ''तेरी सम्मति किसने मांगी रे ? तू यहाँ क्यों आया ?''

''स्वामी को खोजता हुआ आया था,'' शंकर ने उत्तर दिया, ''और इन्हीं से कह रहा था कि माताजी का कहना मान क्यों नहीं लेते हो।''

''अच्छा, अब जा और स्वामी के लिए विश्राम की व्यवस्था कर।''

''पहले ही कर आया हूँ, माता जी,'' शंकर ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी पीली, विषम दंत-पंक्ति का प्रदर्शन करते हुए घोषणा की।

''तो बाहर जाकर अपना सिर फोड़,'' रत्नमाला ने झुँझलाकर कहा।

शंकर सिर सहलाता हुआ धीरे-धीरे वहाँ से चला गया।

तब रत्नमाला ने फिर चन्द्रशेखर को सम्बोधित किया, ''बोल क्या कहता है ? विवाह नहीं करेगा ?''

चन्द्रशेखर ने धीमे स्वर में उत्तर दिया, ''विचार करने के लिए थोड़ा समय तो दे दो, माँ ! अजयगढ़ पहुँचकर शीघ्र ही पत्र लिखूंगा।''

''विचार करने के लिए दो वर्ष का समय बहुत होता है, सो मैं तुझे दे चुकी हूँ। अब तो विवाह का निश्चय तुरन्त होगा, और अजयगढ़ में तेरे द्वारा नहीं, कालंजर में तेरे पिता द्वारा किया जाएगा। जानता है, तेरे पिता ने भी तुझे दो वर्ष से नहीं देखा है। तुझे मेरे साथ कालंजर चलना होगा।''

''अभी तो सेना के साथ अजयगढ़ जाना होगा,'' चन्द्रशेखर ने कहा, ''वहाँ से कालंजर आ जाऊँगा।''

''तुझे मेरे साथ कालंजर चलना होगा। अजयगढ़ के लिए सेनापति की नियुक्ति कर दी गयी है।''

चन्द्रशेखर इस सूचना के नीचे दब गया। बोला, ''और मैं ?''

''तू यहीं राजधानी में रहेगा। तेरे लिए आर्य महामात्य ने कोई अधिक महत्वपूर्ण कार्य सोच रखा है। ऐसा उन्होंने स्वयं तेरे पिता से कहा है। कार्य क्या है, यह वे ही तुझे बताएंगे। तुझे कल प्रातःकाल उनके दर्शन करने जाना होगा।''

चन्द्रशेखर स्तब्ध रह गया। स्थानान्तरण की सूचना इतनी अप्रत्याशित थी कि वह उसे तुरन्त ग्रहण नहीं कर पा रहा था। और जब ग्रहण कर पाया तब उसने अपने भीतर भीषण क्षोभ का अनुभव किया। अजयगढ़ उसे अच्छा लगने लगा था। इसके अतिरिक्त उसका यह सोचना स्वाभाविक था कि यह स्थानान्तरण पश्चिमोत्तर अभियान की असफलता के लिए उसे दिया गया दंड है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु उसने अपने क्षोभ को किसी प्रकार दबाकर माता से केवल इतना कहा, "पिता जी क्यों आये थे ?"

"मुझे लेकर आये थे," रत्नमाला ने उत्तर दिया, "और तेरे लौटने तक यहीं रुकना चाहते थे। परन्तु आर्य महामात्य ने नहीं रुकने दिया। वे, लगता है, किसी नये अभियान की योजना बना रहे हैं। परन्तु वे किस समय क्या करेंगे, यह कोई नहीं जान सकता। तेरे पिता जी को आदेश दिया है कि कालंजर की सेना किसी भी समय प्रयाण के लिए तत्पर मिलनी चाहिए। इसी आदेश का पालन करने के लिए वे कालंजर लौट गये हैं। परन्तु मैं यह निश्चय करके आयी थी कि बिना तुझे साथ लिये लौटकर नहीं जाऊंगी, इस कारण यहीं रुक गयी। अब तेरे साथ चलूँगी। चलेगा न ? माता का इतना कहना भी नहीं मानेगा ?"

"चलूँगा," चन्द्रशेखर ने पराजित स्वर में कहा "कब चलना होगा ?"

"मैं तो अभी, इसी समय चल सकती हूँ। परन्तु तुझे पहले आर्य महामात्य से भेंट करनी है, ऐसा उनका आदेश है। अतएव उसके पश्चात ही कार्यक्रम निश्चित करूँगी। इसके अतिरिक्त यह भी सोचती हूँ कि तू जो इस किन्नरी को अपने साथ ले आया है तो दो-एक दिन रुक कर इसे चन्देल राजधानी ही घुमा-फिरा दूं, तब चलूं। किन्नरी के सम्बन्ध में तेरा क्या विचार है ?"

"मेरा विचार ?" चन्द्रशेखर ने संकुचित होकर कहा।

"हाँ, तेरा विचार। तूने उसके सम्बन्ध में क्या सोचा है ? मुझे अच्छी लगती है। यदि तू उसके संग विवाह करना चाहे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। तेरे पिता जी को भी नहीं होगी, मैं उन्हें सहमत कर लूँगी।"

"परन्तु मैंने तो ऐसा कुछ नहीं सोचा है," चन्द्रशेखर ने कहा, "वास्तव में मैंने कभी इस दिशा में विचार ही नहीं किया है।"

"नहीं किया है तो अब करले। भली प्रकार विचार कर ले। इसके लिए मैं तुझे समय दे सकती हूँ। उसे मैं कालंजर में अपने साथ रखकर संगीत की शिक्षा दूँगी। जब तक तू विचार करके किसी निश्चय पर नहीं पहुँच जाता तब तक वह वहीं रहेगी। जब तू निर्णय कर लेगा तब तेरे पास भेज दूँगी। परन्तु किसी और के साथ नहीं भेजूँगी। तुझे स्वयं आना होगा। समझ गया ?"

चन्द्रशेखर ने सिर हिलाकर बताया कि वह समझ गया है।

रत्नमाला ने कहा, "बस, एक बात और समझ ले, फिर आज तुझ से कुछ और नहीं कहूँगी। मैंने तुझे विचार करने के लिए समय दिया है, और चाहती हूँ कि तू विचार करे। परन्तु विचार तुझे केवल इसी प्रस्ताव के सम्बन्ध में करना है, इससे आगे नहीं। आगे का विचार और निर्णय, सभी कुछ मैं कर चुकी हूं। किन्नरी मुझे अच्छी लगी है। यदि तू उसके साथ विवाह करने का निर्णय करेगा तो मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होगी। मैंने एक दृष्टि में ही परख लिया है, वह तुझे सुखी बना सकती है। परन्तु यदि तू ऐसा नहीं समझता, और इस सम्बन्ध के विरुद्ध निर्णय करता है, तो मैं आग्रह नहीं करूँगी। परन्तु विवाह तुझे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवश्य करना होगा—अन्यत्र करना होगा, जहाँ तेरे पिता जी कहेंगे वहाँ करना होगा। यह भी समझ लिया है ?"

चन्द्रशेखर ने यंत्रवत् सिर हिलाकर बताया कि उसने यह भी समझ लिया है।

रत्नमाला ने कहा, "तो अब जाकर विश्राम कर। परन्तु सोने से पूर्व यह अवश्य देख लेना कि कहीं तेरे आज्ञाकारी अनुचर ने वास्तव में अपना सिर तो नहीं फोड़ लिया है। मैं अब किन्नरी के पास जा रही हूं, वह प्रतीक्षा कर रही होगी।"

जाते-जाते द्वार के निकट से घूमकर रत्नमाला ने फिर कहा, "प्रातःकाल तुझे आर्य महामात्य के दर्शन करने जाना है, यह स्मरण रखना।"

—१४—

प्रातःकाल चन्द्रशेखर महामात्य प्रभास के दर्शन करने उनके आवास पर जा पहुँचा।

चन्देल साम्राज्य के महामात्य और न्याय-दर्शन के सुविख्यात विद्वान आचार्य प्रभास अब बहुत वृद्ध हो गये थे और अपने कार्यालय में विशेष अवसरों पर ही बैठते थे। राज्य की सामान्य व्यवस्था में अब वे केवल आवश्यकता पड़ने पर हस्तक्षेप करते थे। उसका लगभग सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उन्होंने सर्वाधिकरण के हाथों में सौंप दिया था। इस पद पर उस समय जाजुक नामक एक कायस्थ आसीन था जो महामात्य का विश्वासपात्र तथा नीति की अपेक्षा व्यवहार में अधिक कुशल था। वह शासन-चक्र चला रहा था, परन्तु नीतियों का निर्धारण अब भी महामात्य प्रभास ही करते थे।

महाराज गंडदेव शासन का सम्पूर्ण भार इन दो सुयोग्य अधिकारियों के हाथों में सौंपकर स्वयं निश्चिन्त तथा निवृत्त-से हो गये थे। वे शासन के पचड़ों में न पड़कर अपना अधिकांश समय कविता-कामिनी की रस-केलियों में अथवा गुणियों एवं कलावंतों के समाज में व्यतीत करते थे। महामात्य इस स्थिति से बहुत असंतुष्ट रहते थे। वे देख रहे थे कि राज्य के सामन्त तथा अन्य विशिष्ट जन अपने महाराज की इस जीवन-चर्या का अनुकरण कर रहे हैं और यह संक्रामक रोग धीरे-धीरे सामान्य प्रजा में भी फैलता जा रहा है। वे समझते थे कि यह ह्रास की प्रक्रिया का लक्षण है जिसके परिणामस्वरूप अन्ततः शक्तिशाली साम्राज्यों का पतन होता है। उनमें अब इतनी शक्ति नहीं रह गयी थी कि इस घातक प्रवृत्ति से लड़ें और उसका निवारण करें। परन्तु महामात्य हाथ पर हाथ रखकर बैठने वाले व्यक्ति भी नहीं थे। अतएव इस समय वे उत्साही, कर्मठ नवयुवकों का एक दल संगठित करने का प्रयास कर रहे थे। उन्हें विश्वास था कि धीरे-धीरे शक्ति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाली होकर यह दल प्रक्रिया की दिशा बदलने में सफल हो सकेगा। राजनीति के क्षेत्र में अश्रुत-अज्ञात सुमेरगढ़ के नवयुवक स्वामी विजयसिंह को एक बड़े उत्तरदायित्व का पद देकर उन्होंने इसी उद्देश्य से ओहन्द भेजा था। चन्द्रशेखर को अजयगढ़ से निवृत्त करके राजधानी बुलाने के पीछे भी उनका यही उद्देश्य कार्य कर रहा था।

इस समय चन्द्रशेखर के आगमन की सूचना पाकर उन्होंने उसे अपने विश्राम-कक्ष में ही बुला लिया जहाँ चन्द्रशेखर ने उन्हें अपनी शैय्या पर पद्मासन बैठे हुए पाया। उनके एक ओर कुछ पत्र पड़े थे, दूसरी ओर वस्त्र में लिपटी हुई एक पोथी रखी थी। चन्द्रशेखर के लिए महामात्य को इतने निकट से देखने का यह पहला अवसर था, और उसने तुरन्त ही अनुभव किया कि उस वयोवृद्ध व्यक्तित्व में एक विशिष्ट गरिमा थी जिससे अप्रभावित रहना किसी भी व्यक्ति के लिए बड़ा कठिन था।

महामात्य ने शैय्या के निकट पड़ी हुई एक पीठिका की ओर संकेत करते हुए कहा, "आओ वत्स, यहाँ बैठो। मैं कई दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।"

जब चन्द्रशेखर महामात्य के चरण स्पर्श करके उनके द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गया तब उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया, "आज तुम्हें अपने सामने इस प्रकार देखकर मुझे अतीत का स्मरण हो आया है। आज से लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व मैंने इसी प्रकार तुम्हारे पिता को बुलाया था और निर्देश दिये थे। तब मैं इतना वृद्ध नहीं हुआ था, और मेरी आँखों में अनेक स्वप्न बसते थे। उन्हीं स्वप्नों में से एक को कार्यान्वित करने का भार मैंने सोमेश्वर को सौंपा था जिसमें तुम्हारे पिता को किसी सीमा तक सफलता भी प्राप्त हुई थी। तबसे आज तक संसार में न जाने कितना परिवर्तन हो चुका है। परन्तु मेरा वह एक स्वप्न न पूर्ण रूप से साकार हो पाया है, न अस्त अथवा क्षीण ही हुआ है। मुझे स्वयं आश्चर्य होता है कि वह क्यों और किस प्रकार अभी तक वैसा ही बना हुआ है। सत्य वास्तव में बड़ा विचित्र होता है। वह स्वप्न आज भी वैसा ही बना हुआ है, और उसी को साकार करने का अन्तिम प्रयास करने के उद्देश्य से मैंने इस समय तुम्हें यहाँ बुलाया है। क्या तुम मेरे माध्यम बन सकोगे? तुम्हें अपने ऊपर विश्वास है?"

"आर्य आदेश दें, मैं यथासाध्य प्रयास करूँगा," चन्द्रशेखर ने कहा।

महामात्य ने कहा, "आदेश तो दूँगा ही। इसी उद्देश्य से तुम्हें बुलाया है। परन्तु आदेश देने से पूर्व तुमसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ। तुमने उद्भाण्ड से जो विवरण लिखकर भेजा था, प्रश्न उसके सम्बन्ध में है। उसमें तुमने ओहन्द के युद्ध की जो व्याख्या की है उससे मैं पूर्णतया सहमत हूँ। उस युद्ध में भाग्य निश्चय ही महमूद के साथ था। परन्तु तुम्हारे इस कथन से मैं सहमत नहीं हूँ कि आनन्दपाल के हाथी की आँख में बाण महमूद के भाग्य से लगा। क्या तुम्हारे पास अपने इस कथन के समर्थन में कोई प्रमाण है? क्या यह महमूद की सुनिश्चित योजना का परिणाम नहीं हो सकता? महमूद एक समर्थ सेनानायक है, और समर्थ सेना-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नायक कभी केवल भाग्य पर निर्भर नहीं रहते हैं। वे अवसर के अनुसार युक्ति खोज लेने में विशेष कुशल होते हैं।"

चन्द्रशेखर के पास अपने निष्कर्ष के समर्थन में कोई प्रमाण नहीं था। उसने स्वीकार किया कि युक्तिवाली बात अधिक तर्क संगत, अधिक सम्भव है।

महामात्य ने फिर कहा, "कुछ अन्य प्रश्न भी हैं जिनपर तुमने अपने विवरण में समुचित प्रकाश नहीं डाला है। उदाहरण के लिए, आनन्दपाल ने इतनी विशाल सेना लेकर भी चालीस दिन तक आक्रमण क्यों नहीं किया? उद्भाण्ड के द्वार खुले पाकर भी महमूद ने उसपर अधिकार क्यों नहीं किया? संघ-राज्यों के प्रतिनिधि आनन्दपाल से इतने अधिक असंतुष्ट और रुष्ट क्यों हैं?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "महाराज आनन्दपाल के पास विशाल सेना थी। यह सर्वथा सत्य है, आर्य। तथापि उन्होंने चालीस दिन तक आक्रमण नहीं किया, यह भी पूर्णतया सत्य है। परन्तु इसका कारण था, देव। महाराज आनन्दपाल इतनी विशाल संयुक्त सेना के सेनापति होकर भी वास्तव में अकेले और असहाय थे। संघ-राज्यों की जो सेनाएँ सहायता के लिए गयीं थीं वे उनके लिए समस्या बन गयी थीं। उन पर उनका पर्याप्त अनुशासन नहीं था। विश्वास का अभाव दोनों ओर से था। इसका निश्चित कारण मैं नहीं बता सकता, परन्तु वस्तु-स्थिति निश्चित रूप से यही थी। संघ-सेनाओं को आनन्दपाल का विश्वास नहीं था, और आनन्दपाल को संघ-सेनाओं का नहीं था। सम्भवतः इसी कारण वह इतने दिनों तक आक्रमण नहीं कर सके।"

"और अहमूद ने उद्भाण्ड पर आक्रमण क्यों नहीं किया?" महामात्य ने चन्द्रशेखर के रुकते ही दूसरा प्रश्न किया।

चन्द्रशेखर ने कहा, "मेरा अनुमान यह है, आर्य, कि नगरकोट का अतुल वैभव उसे अपनी ओर खींच ले गया। महमूद स्वभाव से लोभी और विलासप्रिय है। उसके आक्रमणों का प्रमुख उद्देश्य भारत की अपार धन-सम्पत्ति को ढोकर गजनी ले जाना और इस प्रकार अपनी राजधानी को वैभवशाली और शक्ति-सम्पन्न बनाना है। यही उसकी सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा है। वह भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करना नहीं चाहता, क्योंकि वह जानता है कि केन्द्र से इतनी दूर एक बार आधिपत्य स्थापित कर लेना सरल हो सकता है परन्तु उसे अधिक काल तक बनाये रखना असम्भव होगा। इसी कारण वह उद्भाण्ड की ओर नहीं गया। वह चाहता तो आनन्दपाल को कुचलकर उद्भाण्ड को अपने अधीन कर सकता था। परन्तु इससे उसे क्या मिलता? इसके विपरीत नगरकोट पर आक्रमण करके उसने जितनी धन-सम्पत्ति हस्तगत की है उतनी उसके अपने कोष में भी नहीं होगी। यह मेरा अनुमान है, देव। मिथ्या भी हो सकता है।"

"सत्य भी हो सकता है," महामात्य ने कहा। "महमूद के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ और व्यक्तियों की भी ऐसी ही धारणा है। परन्तु अब जो प्रश्न मैं तुमसे करने जा रहा हूँ उसका सम्बन्ध आनन्दपाल के चरित्र से है। हमारे पास कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संघ-राज्यों से पत्र आये हैं। उनमें यह संकेत किया गया है कि आनन्दपाल की महमूद के साथ पहले से ही कोई गुप्त संधि थी जिसके कारण आनन्दपाल ने तुरुष्कों पर आक्रमण नहीं किया। उनका कथन है कि युद्ध के पश्चात् महमूद का उद्भाण्ड पर आक्रमण न करना इस धारणा के पक्ष में एक प्रमाण है। इस सम्बन्ध में तुम्हारा क्या मत है ?"

चन्द्रशेखर ने तत्परतापूर्वक कहा, "मैं इस धारणा से सहमत नहीं हूँ, आर्य। उद्भाण्ड में तथा अन्यत्र मैंने जो कुछ देखा और सुना है वह इसका खंडन करता है। उसके आधार पर मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि महाराज आनन्दपाल महमूद से बहुत अधिक घृणा करते हैं और प्रतिशोध के भूखे हैं। वे अपने पिता का आत्म-दाह नहीं भूले हैं। वे अपने पुत्र सुखपाल को भी नहीं भूले हैं जिसे महमूद बलात् धर्मच्युत करके नवासाशाह बना लिया है।"

"वे यह भी नहीं भूले होंगे," महामात्य ने कहा, "कि शाही राज्य बारबार तुरुष्कों द्वारा आक्रान्त हुआ है और उनकी सेना प्रत्येक बार गजनवियों के हाथों पराजित हुई है। अतएव उनके मन में भय पैठ जाना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में वे महमूद से घृणा करते हुए भी उसके साथ अभिसंधि कर सकते हैं।"

"आर्य का कथन सर्वथा उचित है। महाराज आनन्दपाल का आतंकित होना स्वाभाविक है। परन्तु यदि महमूद के साथ उनकी कोई अभिसंधि होती तो वे वैसा आक्रमण कभी नहीं करते जैसा अन्त में उन्होंने किया। वह आक्रमण वास्तव में बड़ा भयानक था, आर्य। पहले ही धावे में पाँच सहस्र से अधिक तुरुष्क धराशायी कर दिये गये थे। यह सूचना मुझे एक ऐसे व्यक्ति से प्राप्त हुई है जिसने स्वयं उस आक्रमण में भाग लिया था। उसके अनुसार विजय-श्री उस समय सम्मुख खड़ी हँसती हुई दिखाई पड़ रही थी। तुरुष्क कट रहे थे, और पीछे हट रहे थे, और भारतीय उद्दाम वेग से आगे बढ़ते चले जा रहे थे। महाराज आनन्द-पाल स्वयं उस आक्रमण का संचालन कर रहे थे। वे अपनी सेना का मात्र संचा-लन ही नहीं, नेतृत्व भी कर रहे थे। अन्यथा उनका गज इस प्रकार आहत न होता। यह प्रतिशोध के प्यासे शत्रु का आचरण है, आर्य। यदि वे आतंकित होते, अथवा महमूद के साथ उनकी किसी प्रकार की अभिसंधि होती, तो क्या वे ऐसा करते ? इस संदर्भ में यह भी विचारणीय है, देव, कि जो राज्य उनके विरुद्ध आरोप प्रस्तुत कर रहे हैं उनकी इस युद्ध में विशेष क्षति नहीं हुई है। अधिक क्षति केवल शाही सेना की और शाही राज्य की हुई है।"

महामात्य बड़े ध्यान से यह व्याख्या सुन रहे थे। जब चन्द्रशेखर अपनी बात पूरी कर चुका तब उन्होंने कहा, "तुम्हारी उक्ति तर्कसंगत प्रतीत होती है। परन्तु मेरे एक प्रश्न का उत्तर अभी तुमने नहीं दिया है। बिना अग्नि के क्या धूम्र का अस्तित्व सम्भव है ? यदि अभिसंधि इतनी असम्भव है तो उसका आरोप क्यों किया जा रहा है ? लगभग सभी संघ-राज्य आनन्दपाल से इतना अधिक रुष्ट क्यों हैं ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"आर्य के इस प्रश्न का उत्तर मेरे पास नहीं है," चन्द्रशेखर ने कहा।

"अनुमान भी नहीं लगा सकते तो ?"

"प्रयास करता हूँ, देव," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।" मेरा अनुमान यह है कि संघ-राज्य संघ-योजना की विफलता का उत्तरदायित्व महाराज आनन्दपाल के सिर पर आरोपित करना चाहते हैं। उनमें से अधिकांश की आस्था संघ-योजना में नहीं है। वे राष्ट्रीय अथवा जातीय भावना से प्रेरित होकर इसमें सम्मिलित नहीं हुए हैं। परन्तु राजनीतिक कारणों से वे इसे छोड़ना भी नहीं चाहते हैं। अतएव स्थिति यह है कि वे संघ में होकर भी वस्तुत: इसमें नहीं हैं। वे सेना भेजते हैं, परन्तु पर्याप्त नहीं भेजते। उनके सैनिक केवल अपने सेनापतियों को जानते हैं। वे प्रधान सेनापति का अनुशासन स्वीकार नहीं करते, और युद्ध में कभी आगे नहीं रहना चाहते हैं। ओहन्द में यही स्थिति थी, जिसे मैं अपनी आँखों से देखकर आ रहा हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि स्थिति के उत्तरदायित्व से महाराज आनन्दपाल को भी सर्वथा मुक्त नहीं किया जा सकता। परन्तु मेरी धारणा यह है कि अधिक दोष उनका नहीं, स्वयं संघ-राज्यों और उनकी सेनाओं का था।"

"क्या तुम्हारा तात्पर्य यह है कि संघ-सेना की योजना विफल हो चुकी है ?" महामात्य ने कहा।

"धृष्टता क्षमा हो, देव," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर मेरी जो धारणा थी वह मैंने आदेश पाकर निवेदन कर दी। आर्य ने पूछा तो मैंने अपना अनुमान भी बता दिया। परन्तु मैं जन्म और कर्म, दोनों से सैनिक हूँ, देव। मेरा व्यवसाय युद्ध है। राजनीतिक निष्कर्ष निकालना मेरा कार्य नहीं है।"

महामात्य की बूढ़ी आँखें चमक उठीं और उनके श्मश्रु-आच्छादित अधरों पर एक धीर-गम्भीर मुस्कान आकर चली गयी। उन्होंने कहा, "मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, वत्स। तुम मेरी आवश्यकताओं के अनुरूप व्यक्ति हो। तुमने सत्य कहा है। राजनीतिक निष्कर्ष निकालना तुम्हारा नहीं, मेरा कार्य है। उसे मैं ही करूँगा। संघ-सेना की योजना सफल नहीं हो सकेगी, इस निष्कर्ष पर मैं बहुत पहले पहुँच चुका था। अन्यथा राजधानी देवनगरी खजुराहो से हटाकर महोत्सवनगर कभी न लाता। यदि कुछ संशय अथवा संदेह था तो अब तुम्हारे प्रत्यक्ष अनुभव ने उसका भी निवारण कर दिया है। परन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसी दशा में हमें करना क्या चाहिए। आनन्दपाल की पराजय ने महमूद के लिए भारत का द्वार खोल दिया है। कल वह मथुपुरी को लूटेगा, कान्यकुब्ज को ध्वस्त करेगा, और खजुराहो तथा महोत्सवनगर में आ खड़ा होगा। क्या हम हाथ पर हाथ धरे उसके आगमन की प्रतीक्षा में बैठे रहें ? क्या हमें उस खुले द्वार को फिर बंद करने का प्रयास नहीं करना चाहिए ?"

"अवश्य करना चाहिए, देव," चन्द्रशेखर ने कहा।

Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"परन्तु कैसे किया जाए ? और कौन करेगा ? मूल प्रश्न ये दो हैं। मेरे मस्तिष्क में संघ-सेना की योजना आयी थी। मैंने उसे कार्यान्वित करने का यथा-सम्भव प्रयास किया। परन्तु वह विफल हो चुका है। संघ छिन्न-भिन्न हो चुका है। उसे फिर से जोड़कर खड़ा करना असम्भव है। हितों और विचारों की संकीर्णता से लड़कर उस पर विजय प्राप्त करना बड़ा कठिन होता है, वत्स।" यह कहते-कहते महामात्य सहसा मौन हो गये और गम्भीर विचार में खो गये।

कुछ समय तक इस प्रकार विचारमग्न, मौन रहने के पश्चात् उन्होंने फिर चन्द्रशेखर की ओर दृष्टि उठायी। यह उसके लिए मौन भंग करने का संकेत था, अतएव उसने धीमे स्वर में कहना आरम्भ किया, "संघ जन्मतः बहुपक्षीय होता है, देव, और जहाँ अनेक पक्ष होते हैं वहाँ द्वेष तथा संघर्ष की सम्भावनाएं भी उसी अनुपात में अधिक होती हैं। अतएव यदि हम द्वार बंद करना चाहते हैं तो हमें केवल अपनी शक्ति पर निर्भर रहकर प्रयास करना चाहिए।"

इस बार महामात्य स्पष्ट रूप से मुस्कराये और संतुष्ट स्वर में बोले, "मैं भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं, वत्स। परन्तु हमारे समक्ष दो बड़ी कठिनाइयाँ हैं—पहली कलचुरियों की और दूसरी आनन्दपाल की। कलचुरियों से हमारी वंशानुगत स्पर्धा है, इसी कारण वे आरम्भ से हमारी संघ-योजना में सम्मिलित नहीं हुए हैं। मुझे उनका तनिक भी विश्वास नहीं है। वे अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जिस दिन हमारी सेना का बड़ा भाग महमूद से युद्ध करने पश्चिमोत्तर सीमान्त की ओर गया उसी दिन हमारे राज्य पर दक्षिण से कलचुरियों का आक्रमण हो सकता है। हमारी दूसरी कठिनाई यह है कि बिना आनन्दपाल का सहयोग प्राप्त किये हमारी कोई योजना सफल नहीं हो सकती, परन्तु आनन्द-पाल का सहयोग प्राप्त करना अब असम्भव प्रतीत होता है। वे इतने आतंकित हो चुके हैं कि अब हमारी किसी योजना में कदाचित ही सम्मिलित हों।

चन्द्रशेखर ने कहा, "हमें महाराज आनन्दपाल की ओर से इतना निराश नहीं होना चाहिए। वे एक स्वाभिमानी शासक हैं। वे पराजित हुए हैं और अत्यधिक लज्जित हैं, परन्तु सदा पद-दलित रहना स्वीकार नहीं करेंगे। हमें उनका सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।"

"तुम करोगे ?" महामात्य ने अपनी दृष्टि उसके मुख पर स्थिर कर दी।

"प्रयत्न तो कर ही सकता हूँ," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "यदि आर्य आदेश दें तो मैं तुरन्त फिर उद्भाण्ड जा सकता हूँ।"

"मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। यदि तुम इस कार्य को अपने हाथ में ले लो तो कलचुरियों को मैं देख लूंगा। परन्तु यदि योजना में पूरी आस्था हो तभी इस महान उत्तरदायित्व को स्वीकार करना। हमारा उद्देश्य तुरुष्कों को देश से बाहर रखना है, और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति का, अपने समस्त साधनों का प्रयोग करेंगे। यह हमारी नीति का आधार है। यदि आनन्द-पाल इससे सहमत हों, अथवा तुम उन्हें सहमत कर सको, तो उनके समक्ष हमारी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओर से संधि का प्रस्ताव रख सकते हो।"

"मुझे योजना में पूर्ण आस्था है, देव, और आशा है कि मैं महाराज आनन्द-पाल को भी सहमत कर लूंगा।"

महामात्य ने कहा, "इसी प्रकार की वार्ता अन्य सीमावर्ती राज्यों के साथ भी की जा सकती है। उनसे भी संधि का प्रस्ताव किया जा सकता है। परन्तु विशेष ध्यान आनन्दपाल की ओर देना होगा।"

"मैं उद्भाण्ड को केन्द्र बनाकर सभी सीमावर्ती राज्यों में जाऊँगा और इस सम्बन्ध में वार्ता करूँगा।"

महामात्य ने प्रसन्न होकर कहा, "तो जाओ, मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं। मुझे विश्वास था, वत्स, कि तुम इस उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लोगे। मुझे यह भी विश्वास है कि तुम इस कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त हो। इसी कारण मैंने तुम्हें स्मरण किया था। इसी कारण तुम्हें अजयगढ़ से निवृत्त किया गया है। तुम्हारा कार्य बहुत कठिन है, यह मैं स्वीकार करता हूँ, और तुम भी भली भाँति समझ लो। अतएव विफल होकर भी साहस मत खोना, जब तक तनिक भी आशा रहे तब तक मनोयोग से प्रयास करते रहना।"

चन्द्रशेखर ने सिर हिलाकर स्वीकार किया कि वह ऐसा ही करेगा।

तब महामात्य ने फिर कहा, "तुम्हें अविलम्ब फिर उद्भाण्ड के लिए प्रस्थान करना होगा और स्वभावतः कुछ काल तक वहीं रहना होगा। जाने से पूर्व मुझसे फिर भेंट करना। मैं तुम्हें कुछ पत्र और आवश्यक निर्देश दूंगा।" यह कहकर उन्होंने निकट रखी हुई पोथी उठा ली।

संकेत बहुत स्पष्ट था, चन्द्रशेखर उठ कर खड़ा हो गया।

चलते समय जब उसने महामात्य के चरण स्पर्श किये तो उन्होंने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

—१५—

महामात्य के आवास से लौटकर चन्द्रशेखर सीधा अपनी माता के कक्ष में गया। वह इस समय बहुत प्रसन्न था। स्वयं महामात्य के मुख से यह सुनकर कि अजयगढ़ से उसकी निवृत्ति दण्ड-स्वरूप नहीं की गयी थी, अब उसके लिए खिन्न रहने का कोई कारण नहीं था। खिन्नता का स्थान अब गर्व ने ले लिया था। महामात्य द्वारा इतनी महत्वपूर्ण भूमिका के लिए निर्वाचित होना किसी भी महत्वाकांक्षी नवयुवक के लिए गर्व का उचित कारण हो सकता था। परन्तु उससे भी अधिक प्रसन्नता चन्द्रशेखर को इस बात की थी कि अपने व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में—अर्थात् अपने विवाह के सम्बन्ध में—तत्काल कोई निर्णय करना अब उसके लिए आवश्यक नहीं रह गया था। उसकी माता ने आते ही उसे जिस

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बन्धन में जकड़ दिया था उससे अब वह मुक्त हो गया था। इस कारण वह अपने नये कार्यक्रम की सूचना सबसे पहले अपनी माता को देना चाहता था।

परन्तु माता के कक्ष में पहुँचकर उसकी भेंट हुई किन्नरी से। वह उस समय वहाँ अकेली बैठी थी।

चन्द्रशेखर ने जो उसे देखा तो देखता ही रह गया।

किन्नरी उस समय राज-कन्या सी लग रही थी। शुभ्र कौशेय वस्त्रों में आवेष्ठित उसकी मालती-लता-सी देह आपादमस्तक रत्नाभूषणों से अलंकृत थी। वेणी में गुंथे हुए कुन्द-कुसुम नीलाकाश में नक्षत्रों के समान झलक रहे थे। कानों में रत्नजटित कर्णफूल झूल रहे थे, कंठ में मुक्ता-माला शोभा पा रही थी। वल्लरी-सी बाँहों में भुजबंध कसे थे और हाथों में कंकण खनक रहे थे। कटिसूत्र की परिधि में संकुचित क्षीण कटि क्षीणतर प्रतीत हो रही थी। परन्तु सारे आभूषणों से अधिक कान्ति किन्नरी के शरीर में थी। उसकी बड़ी-बड़ी कर्णावलम्बित आँखों में जितनी चमक थी उतनी मुक्ताहार के दानों में नहीं थी।

कुछ क्षण तक चन्द्रशेखर के मुख से शब्द ही नहीं निकला। वह किन्नरी को ऐसे निहारता रहा मानो पहचानने का प्रयास कर रहा हो।

उसे इस प्रकार विस्मय-विमूढ़ तथा मौन देखकर किन्नरी हँस पड़ी और बोली, "क्या हुआ ? मौन क्यों खड़े हो ?"

"कुछ सोच रहा हूँ, इस कारण मौन हूँ," चन्द्रशेखर ने कहा। "परन्तु तुम···तुम किन्नरी ही हो न ?"

वह खिलखिला कर हँस पड़ी, मानो शत-शत रजत पैंजनियाँ एक साथ बज उठी हों, और बोली, "क्या तुम्हें संदेह होने लगा है ? परन्तु पहले अपनी तो कहो। सोच क्या रहे हो ?"

"यह सोच रहा हूँ कि तुम यदि किन्नरी ही हो तो मुझे तुम्हारा नाम बदलना होगा। किन्नरी नाम अब पर्याप्त नहीं रह गया है।"

"अब क्या रखोगे ?"

"अब अप्सरा···नहीं, अप्सरा भी पर्याप्त नहीं लगता है···मेनका अथवा उर्वशी रखना होगा"

"तो रख क्यों नहीं लेते ?" किन्नरी ने कहा, "तुम्हें जो अच्छा लगे रख लो, मैं तुरन्त स्वीकार कर लूँगी"

"तुम्हें क्या अच्छा लगता है ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"मुझे ? मुझे तो किन्नरी ही अधिक प्रिय है। किन्नरी बनकर इस नये संसार में आयी हूँ, और अन्त तक वही बनी रहना चाहती हूँ। परन्तु मैं आग्रह नहीं करूँगी, और तुम भी संकोच मत करना। बदलना चाहते हो तो बदल लो, जो तुम्हें रुचे सो रख लो। इससे तनिक भी अन्तर नहीं पड़ेगा, क्योंकि तुम केवल नाम बदल सकते हो, मुझे नहीं बदल सकते। मैं फिर भी वही बनी रहूँगी।"

"परन्तु तुम अब वही रह कहाँ गयी हो ? तुमने तो स्वयं अपने आप को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बदल लिया है।" चन्द्रशेखर ने चिढ़ाया।

"ये आभूषण देखकर ऐसा कह रहे हो ?"

"हाँ, और ये वस्त्र देखकर भी।"

किन्नरी गम्भीर होकर बोली, "तो तुम्हारी दृष्टि इतनी पैनी नहीं है कि वस्त्रों तथा आभूषणों के नीचे तक पहुँचकर वास्तविकता को देख सके, वह आवरण में ही उलझकर रह जाती है। ये वस्त्राभूषण माता जी के हैं। उन्होंने आग्रह करके पहनाये हैं। आभूषण तो उन्होंने स्वयं अपने हाथों से पहनाये हैं। मैं इनमें से कई का नाम भी नहीं जानती हूँ। परन्तु इन आवरणों तथा अलंकरणों के नीचे जो हृदय है वह मेरा अपना है। वह अब भी किन्नरी का है, और सदा किन्नरी का रहेगा। उसे माता जी के वस्त्राभूषण नहीं बदल सकते, तुम्हारे द्वारा दिया गया कोई अन्य नाम भी नहीं बदल सकता।"

इस मधुर भर्त्सना का कोई उत्तर न देकर चन्द्रशेखर ने पूर्ववत् चिढ़ाते हुए फिर कहा, "परन्तु प्रातःकाल से ही इस शृंगार का प्रयोजन क्या है ? क्या किसी विश्वामित्र की तपस्या भंग करनी है ?"

किन्नरी बोली, "विश्वामित्र के नाम पर यहाँ अकेले तुम हो, और तुम्हारी तपस्या मैं सामर्थ्य रखकर भी भंग नहीं करना चाहूँगी। हाँ, तुमने जो प्रयोजन पूछा है सो मैं बता सकती हूँ। यह शृंगार माता जी के आदेश से किया गया है। वे मुझे देवी के दर्शन कराने ले जा रही हैं।"

"और माता जी कहाँ हैं ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"स्नान करने गयी हैं।"

"कितना समय हुआ होगा ?"

"अभी तो गयी हैं। बस वे गयीं और तुम आये।"

क्षण भर मौन रहने के पश्चात् चन्द्रशेखर ने अनायास फिर कहा, "किन्नरी, मैं यात्रा पर जा रहा हूँ।"

"कब ?" किन्नरी ने निरपेक्ष भाव से पूछा।

"सम्भव है कल ही चला जाऊँ।"

"कहाँ जाओगे ? अजयगढ़ ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"उद्भाण्ड जाऊँगा।"

"उद्भाण्ड ?" किन्नरी ने साश्चर्य कहा, "परन्तु अभी कल ही तो उद्भाण्ड से लौटे हो !"

"हाँ, और कल फिर उद्भाण्ड जा रहा हूँ। वहाँ से और स्थानों को भी जाऊँगा। श्रीनगर भी जाना होगा।"

"लौटोगे कब तक ?" किन्नरी का स्वर फिर स्वाभाविक हो गया था।

"यह अनिश्चित है, परन्तु समय लगेगा।"

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"इतनी लम्बी यात्रा में समय तो लगेगा ही," किन्नरी ने बड़े निश्चिन्त भाव से कहा और फिर पूछा, "मेरे लिए क्या लाओगे ?"

चन्द्रशेखर विस्मय से उसका मुख निहारने लगा। उसने सोचा था कि उसके जाने की बात सुनकर किन्नरी चिन्तित और दुखी होगी। परन्तु किन्नरी इस प्रकार बातें कर रही थी मानों वह केवल मृगया के लिए जा रहा हो।

किन्नरी ने फिर कहा, "चुप क्यों हो ? मेरे लिए क्या कुछ नहीं लाओगे ? फिर मैं कैसे समझूंगी कि तुम यात्रा पर गये थे ?"

उसके प्रश्न का कोई उत्तर न देकर चन्द्रशेखर ने कहा, "तुम अकेली यहाँ रह लोगी ?" वह अपने आहत विस्मय को नहीं सँभाल पा रहा था।

किन्नरी ने कहा, "मैं अकेली क्यों रहूँगी ? माताजी मुझे अपने साथ ले जा रही हैं, उनके पास कालंजर में रहूँगी। उनके साथ मुझे तनिक भी कष्ट नहीं होगा। माताजी मुझे संगीत की शिक्षा देंगी। कहती हैं उसके बिना मेरा नाम सार्थक नहीं होगा।'

चन्द्रशेखर ने कहा, "परन्तु तुम मेरे साथ क्यों नहीं चलतीं ? देश-विदेश घूमेंगे, बड़ा आनन्द रहेगा। तुम अपना देश भी एक बार फिर देख लोगी।"

"अपने देश का मोह अब मुझे नहीं है," किन्नरी ने उत्तर दिया।

"क्यों ?" चन्द्रशेखर ने अनावश्यक प्रश्न किया।

"अपना देश बहुत देख चुकी हूँ, अब तुम्हारा देखना चाहती हूँ।"

"अर्थात् तुम मेरे साथ नहीं चलोगी ?" चन्द्रशेखर ने प्रत्यक्ष प्रहार किया।

किन्नरी आहत स्वर में बोली, "ऐसा मैंने कब कहा है ? ऐसा तो मैं कभी सोच भी नहीं सकती हूं। तुम्हारी सेवा और प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हारे साथ किसी समय, कहीं भी चल सकती हूं। तुम माताजी से पूछ लो, वे अनुमति दे दें तो मैं बड़ी प्रसन्नता से तुम्हारे साथ चलूंगी।"

चन्द्रशेखर ने हंसकर कहा, "यदि कोई नया व्यक्ति तुम्हारी बातें सुने तो यही समझेगा कि माता मेरी नहीं, तुम्हारी हैं।"

"मैं उसके भ्रम का तुरन्त निवारण कर दूंगी, किन्नरी ने बड़े सरल भाव से उत्तर दिया, "और उसे बता दूंगी कि माता पहले तुम्हारी है, फिर मेरी हैं। यदि आवश्यकता पड़ी तो यह भी कह दूंगी कि तुम्हारी हैं, इस कारण मेरी हुई हैं। मैं सम्पूर्ण स्थिति स्पष्ट कर दूंगी।"

चन्द्रशेखर ने हंसते हुए कहा, "परन्तु तुम्हारे इस स्पष्टीकरण से सुननेवाले का भ्रम बढ़ेगा ही, घटेगा नहीं। जानती हो वह इसका क्या अर्थ समझेगा ?"

किन्नरी ने बात तथ्य समझकर कही थी। उसके कथन का कुछ लाक्षणिक अर्थ और भी हो सकता है, यह उस समय उसने नहीं सोचा था। परन्तु अब चन्द्र-शेखर के संकेत करते ही यह अर्थ उसकी समझ में आ गया, और उसने लजाकर अपनी दृष्टि नीची कर ली।

चन्द्रशेखर ने स्थिति का आनन्द लेते हुए फिर कहा, "बताओ, क्या अर्थ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समझेगा ?''

किन्नरी बोली, ''यदि सुननेवाला इतना मूर्ख हुआ तो मैं उसे नहीं समझा सकूँगी। तुम्हारे पास भेज दूँगी, तुम समझा देना।''

तभी द्वार के निकट से रत्नमाला का स्वर सुनाई पड़ा। वह कह रही थीं, ''अरे ! तू कब आ गया ? आर्य महामात्य से भेंट हुई कि नहीं ?''

स्वर सुनते ही किन्नरी आदरपूर्वक उठकर खड़ी हो गयी। चन्द्रशेखर ने आगे बढ़कर माता के चरण स्पर्श किये। उसे आशीर्वाद देती हुई वे व्यस्त गति से आकर अपने आसन पर बैठ गयीं। दासी पीछे-पीछे आयी थी, वह उनके केश सँवारने लगी।

तब रत्नमाला ने फिर कहा, ''तू मौन क्यों खड़ा है ? बता, आर्य महामात्य से भेंट हुई कि नहीं ? उन्होने क्या कहा ? तेरा नया उत्तरदायित्व बताया कि नहीं ? उसे जानने को मैं बहुत उत्सुक हूँ।''

चन्द्रशेखर ने संक्षेप में महामात्य प्रभास के साथ अपनी भेंट का यथावश्यक विवरण कह सुनाया।

विवरण सुनकर रत्नमाला के मुख पर निराशा का भाव उभर आया और वे सोच में पड़ गयीं। कुछ समय तक इसी प्रकार विचारमग्न, मौन बैठी रहने के पश्चात् उन्होंने बिना चन्द्रशेखर की ओर दृष्टि उठाये कहना आरम्भ किया, ''इसका अर्थ यह हुआ कि अब तू हमारे साथ कालंजर नहीं चल सकेगा। वैसे मुझे इसकी विशेष चिन्ता नहीं है। मैं तुझे देख ही चुकी हूँ। रहे तेरे पिता, सो वे पुरुष हैं, और उनका धैर्य अपार है। मुझे चिन्ता केवल इस बात की है कि अब मैं कुछ समय तक तेरा विवाह नहीं रचा सकूँगी।''

इसके पश्चात् कुछ क्षण तक उस कक्ष में मौन छाया रहा जिसे भंग करते हुए अन्त में रत्नमाला ने ही फिर कहा, ''प्रत्येक कार्य का एक पूर्व-निश्चित समय होता है। लगता है तेरे विवाह का वह पूर्व-निश्चित समय अभी नहीं आया है। तू लौटेगा कब तक ?''

''इसका निश्चय नहीं है,'' चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।

रत्नमाला ने कहा, ''इतना तो निश्चित ही है कि शीघ्र लौटना नहीं सम्भव होगा। प्रस्थान कब होना है ?''

''महामात्य जी ने शीघ्रातिशीघ्र करने को कहा है। सोच रहा हूँ कल चला जाऊँ।''

''कल नहीं, तेरा प्रस्थान परसों चन्द्रवार को होगा,'' रत्नमाला ने अपनी व्यवस्था दी। ''देवी का दिन यात्रा के लिए अच्छा होता है। और आज अभी तुझे हमारे साथ चंद्रिका माता के मंदिर में शीश नवाने चलना होगा। किन्नरी को भी लिये चल रही हूँ।''

'परन्तु मुझे अभी आवश्यक कार्य से अन्यत्र जाना है.'' चन्द्रशेखर ने आपत्ति की। वह विजयसिंह का कुछ समाचार पाने की आशा में सुमेरगढ़ जाने का विचार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर रहा था।

"माता के सम्मुख शीश नवाने से अधिक आवश्यक अन्य कोई कार्य नहीं हो सकता। अतएव पहले तू हमारे साथ चलेगा। तेरा अन्य आवश्यक कार्य उसके पश्चात् ही हो सकेगा। जाकर देख, शंकर ने रथ सजा लिया है कि अभी नहीं। तू अपने अश्व पर चल सकता है। दर्शन करने के पश्चात् वहीं से चले जाना।"

इस अधिकारपूर्ण आदेश के पश्चात् चन्द्रशेखर को फिर आपत्ति करने का साहस नहीं हुआ।

चन्देलों की कुलदेवी चन्द्रिका माता के मंदिर में जाकर रत्नमाला ने विधिवत् और विलम्ब तक देवी का पूजन किया। तत्पश्चात् उन्होंने माता की विशाल प्रतिमा के सम्मुख ध्यानावस्थित होकर अपनी दोनों आँखें मूँद लीं और विलम्ब तक इसी प्रकार बैठी रहीं। क्षण पर क्षण बीतते गये, परन्तु उनकी आँखें नहीं खुलीं। किन्नरी अपलक उनका सौम्य मुख निहार रही थी। उसके मन में इस ममता-मूर्ति नारी के प्रति श्रद्धा की भावना गहरी होती जा रही थी। निकट खड़ा हुआ चन्द्रशेखर कभी माता को देखता था तो कभी उसकी दृष्टि स्वतः किन्नरी की ओर घूम जाती थी।

अन्त में जब रत्नमाला ने अपनी आँखें खोलीं तब उनके मुख पर असीम संतोष और शान्ति का भाव अंकित हो चुका था। उन्होंने तीन-चार बार शीघ्रतापूर्वक अपनी पलकें खोल मूँदकर अपनी आँखों को दिन के प्रकाश की अभ्यस्त बनाया और फिर स्वयं उठते हुए कहा, "दोनों एक बार फिर माता को नमन करो।"

दोनों ने आँखें मूंदकर, मस्तक धरती पर लगाकर नमन किया।

'अब चलो," रत्नमाला ने आदेश दिया।

मंदिर से बाहर निकलकर अपने रथ की ओर बढ़ते हुए उन्होंने फिर कहा, "मैंने माता से तुम दोनों के लिए प्रार्थना की है और वरदान माँगा है।"

"मेरे लिए भी ?" किन्नरी ने कहा।

"हाँ, पहले तेरे लिए, फिर इसके लिए।"

"मेरे लिए क्या मांगा है, माताजी ?" किन्नरी ने पूछा।

"तेरे लिए एक अच्छा-सा योग्य वर माँगा है," रत्नमाला ने मुस्कराकर कहा।

किन्नरी लजाकर, सिर झुकाकर मौन हो गयी।

"और मेरे लिए ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"तेरे लिए मैंने माता से प्रार्थना की है कि तुझे थोड़ी-सी सद्बुद्धि प्रदान करें। और किसी वस्तु का तुझे अभाव नहीं है जो माँगती।"

"और अपने लिए कुछ नहीं मांगा ?" चन्द्रशेखर ने कहा।

रत्नमाला ने उत्तर दिया, "तेरे लिए माँगकर मैंने अपने लिए भी मांग लिया है। मुझे भी और कोई अभाव नहीं है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके पश्चात् किसी ने कुछ नहीं कहा क्योंकि वे रथ के निकट पहुंच चुके थे। रत्नमाला और किन्नरी उसमें जा बैठीं, और चन्द्रशेखर उन्हें विदा करके सुमेरगढ़ की ओर चल दिया।

सुमेरगढ़ राजधानी के रक्षा-वृत्त पर उत्तर की ओर स्थित प्रसिद्ध स्थान था। अतएव चन्द्रशेखर को उसे खोजने में विशेष कठिनाई नहीं हुई और वहाँ तक पहुँचने में अधिक समय भी नहीं लगा।

वहाँ पहुंचकर उसे अच्छा लगा, क्योंकि स्थान बड़ा मनोरम था। उत्तर तथा दक्षिण में दो छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरा हुआ एक अत्यन्त स्वच्छ जल वाला विस्तृत सरोवर था। उसके पश्चिम में खुली हुई ऊँची भूमि पर खेत लह-लहा रहे थे, तथा पूर्व में स्नान की सुविधा के लिए पत्थर की सीढ़ियों का घाट बनाया गया था। घाट के ऊपर की भूमि समतल तथा घने वृक्षों से ढकी हुई थी जिनके बीच से गढ़ी के लिए मार्ग जाता था। इस मार्ग तथा घाट के बीच वाले स्थान में एक छोटा-सा किन्तु ऊँचा मंदिर था। वहाँ से उत्तर की पहाड़ी पर स्थित गढ़ी का केवल थोड़ा भाग दिखाई पड़ता था। गढ़ी पर दृष्टि पड़ते ही चन्द्रशेखर को विजयसिंह की सुधि आ गयी।

उसने पहले ओहन्द के रण-क्षेत्र में और उसके पश्चात् उद्भाण्ड में विजयसिंह को खोजने का प्रत्येक सम्भव प्रयास कर लिया था। परन्तु उसकी खोज का कोई परिणाम नहीं निकला था। उसे कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिल पाया था जिसने युद्ध के पश्चात् विजयसिंह को जीवित अथवा मृत देखा हो या उसके सम्बन्ध में कुछ सुना हो। अतएव वह इस समय सुमेरगढ़ जा तो रहा था, परन्तु इस बात की उसे तनिक भी आशा नहीं थी कि वहाँ किसी को विजयसिंह के सम्बन्ध में उससे अधिक कुछ ज्ञात होगा।

उसकी यह धारणा सत्य सिद्ध हुई। गढ़ी के द्वार पर ही उसे सूचना मिली कि स्वामी अभी युद्ध से लौटकर नहीं आये हैं और उनका कोई पत्र अथवा समाचार भी गढ़ी में नहीं प्राप्त हुआ है। इस सूचना से चन्द्रशेखर की आशंका लगभग पुष्ट हो गयी। परन्तु वहाँ उस समय कुछ कहना उचित नहीं था। अतएव उसने द्वारपाल को रानीजी की सेवा में पहुँचाने के लिए यह संदेश दिया कि जब तक गढ़ी के स्वामी लौटकर नहीं आते तबतक यदि कोई भी आवश्यकता पड़े तो तुरन्त कालंजर की हवेली में सूचना भेज दी जाए। यह संदेश भीतर भेजकर वह वहाँ से लौट आया।

लौटकर वह यात्रा की व्यवस्था में व्यस्त हो गया, और अगले दिन भी व्यस्त रहा।

किन्नरी को अपने साथ ले जाने के विषय में उसने माता से बात छेड़ी, परन्तु उन्होंने अनुमति नहीं दी। बोलीं, "इतनी लम्बी यात्राओं में स्त्रियों को साथ ले जाना अनेक बार असुविधा का कारण बन जाता है। इसके अतिरिक्त एक अवि-वाहित कन्या को इस प्रकार साथ ले जाना उचित भी नहीं होगा। अपनी सेवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए तू अपने शंकर को साथ क्यों नहीं ले जाता ?''

प्रस्थान से पूर्व चन्द्रशेखर एक बार किन्नरी से एकान्त में मिलना चाहता था। क्यों मिलना चाहता था, यह वह स्वयं भी नहीं समझ पा रहा था। परन्तु उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी। उसकी माता किसी समय किन्नरी को अपनी आँखों से दूर नहीं होने देती थी।

अन्त में प्रस्थान का समय आ गया। उसके अन्य अनुचर तथा रक्षकगण आगे जा चुके थे, केवल शंकर उसके साथ चलने के लिए पीछे रह गया था।

अपने अश्व पर आरूढ़ होने से पूर्व चन्द्रशेखर ने माता के चरण स्पर्श किये। रत्नमाला ने उसका तिलक किया और आशीर्वाद के साथ यह आदेश भी दिया कि यात्रा-काल में यथा-अवसर कुशल क्षेम के समाचार कालंजर अवश्य भेजता रहे।

शंकर ने रत्नमाला के साथ-साथ किन्नरी के भी चरण स्पर्श किये जो मौन पीछे खड़ी थी।

चलते-चलते चन्द्रशेखर की दृष्टि अपने आप किन्नरी की ओर उठ गयी। वह उस समय आंचल के छोर से अपनी आँखें पोंछ रही थी।

—१६—

व्यक्ति का जीवन छोटा होता है, राष्ट्र अथवा जाति का बहुत बड़ा। व्यक्ति के छोटे-से जीवन में प्राय: प्रति दिन अनेकानेक चाहे-अनचाहे परिवर्तन होते रहते हैं। कभी धूप निकल आती है तो कभी बादल छा जाते हैं, कभी फूल खिल उठते हैं तो कभी पत्तियाँ भी झरने लगती हैं। परन्तु राष्ट्र का जीवन विस्तृत नद-सा निरन्तर अपनी सहज मंथर गति से बहता रहता है। परिवर्तन उसमें भी होते हैं। एक लहर उठती है तो एक गिरती है और एक कूल से टकरा कर बिखर जाती है। परन्तु ये परिवर्तन इतने धीरे-धीरे और इतने अप्रत्यक्ष रूप से होते हैं कि नद के प्रवाह पर इसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तव में इन्हें परिवर्तन न कहकर विकास अथवा प्रगति की प्रक्रिया कहना अधिक उपयुक्त होगा। यही नियम है, अधिकांश ऐसा ही होता है।

परन्तु कभी-कभी नियम को सिद्ध करने वाले अपवाद की भाँति, एक ऐसा काल भी आता है जब नद अपनी मर्यादाएं भंग कर देता है और व्यक्ति का जीवन जहाँ का तहाँ खड़ा देखता रह जाता है।

हमारी कथा का अगले डेढ़ वर्ष का काल कुछ ऐसा ही था।

किन्नरी कालंजर पहुँचकर शीघ्र ही रत्नमाला के छोटे-से परिवार में घुल-मिल गयी। उसका अतीत एक दु:स्वप्न की भाँति उसकी सुधि का छोर अवश्य छू जाता था, परन्तु उसकी रेखाएँ अब बहुत धूमिल हो गयी थीं और किन्नरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने उसे एक दुःस्वप्न से अधिक महत्व न देना सीख लिया था। वर्तमान ने उसे जो कुछ दिया था वह इतना प्रचुर था कि किन्नरी उसे सँभालने में ही व्यस्त रहती थी, अतीत के लिए उसके पास अधिक अवकाश नहीं बचता था। रत्नमाला उसे आँखों की पुतली बनाकर रखती थीं। वे उसे संगीत के साथ-साथ नृत्य का अभ्यास भी करा रही थीं, और उसकी प्रगति से संतुष्ट थीं। चन्द्रशेखर की सुधि उसे आती अवश्य थी, परन्तु कभी-कभी रात्रि के अंधेरे एकान्त में ही आ पाती थी। दिन में वह कभी अकेली रह ही नहीं पाती थी, और माता रत्नमाला उसे नृत्य का इतना अधिक अभ्यास करा देती थीं कि रात्रि में वह प्रायः भोजन के पश्चात् शीघ्र ही सो जाती थी। इस प्रकार रत्नमाला के वात्सल्यपूर्ण स्नेह तथा नृत्य-संगीत के अभ्यास के दो कगारों से बंधी उसके जीवन की धारा सम-गति से बह रही थी।

इसी प्रकार इस डेढ़ वर्ष के समय में चन्द्रशेखर के जीवन में भी काल-परिवर्तन तो हुआ, देश-परिवर्तन भी बहुत हुआ, परन्तु रस-परिवर्तन नहीं हुआ। वह उद्भाण्ड गया, नगरकोट गया, कश्मीर गया, स्थानेश्वर, पिल्लिका और अजयमेरु गया। परन्तु उसके जीवन का क्रम एक-सा ही रहा। जहाँ जाता था वहाँ शासकों और शासनाधिकारियों से भेंट करता था, उन्हें समझाता था, उनसे विनती करता था। परन्तु वह सर्वत्र सद्भावना तथा सहयोग के प्रतिदान में अविश्वास, द्वेष और संकीर्णता ही पाता था। उसके प्रस्ताव को प्रत्यक्ष रूप में कोई अस्वीकार नहीं करता था, परन्तु कोई संधि में सम्मिलित होने का वचन भी नहीं देता था। उद्देश्य से सब सहमत थे, सब उसकी प्रशंसा करते थे, परन्तु उसकी प्राप्ति का साधन कोई नहीं बनना चाहता था। महमूद से सभी आतंकित प्रतीत होते थे, और चन्देलों पर विश्वास करने की उत्सुकता कोई नहीं दिखाता था। आनन्दपाल पर किसी को विश्वास नहीं था, तथापि निर्णय का भार सब उन्हीं पर डाल देते थे। चन्द्रशेखर जहाँ जाता था वहाँ उसे लगभग एक-सा उत्तर मिलता था—यदि महाराज आनन्दपाल संधि में सम्मिलित हो जाएँ तो हम भी विचार कर सकते हैं। और महाराज आनन्दपाल किसी प्रकार सहमत नहीं हो रहे थे। दौड़ते-दौड़ते और विफलता के घूंट पीते-पीते चन्द्रशेखर शरीर और मन, दोनों से थक चला था। अंधकार के पीछे छिपी रहने वाली किरण को खोजते-खोजते अब उसे किरण के अस्तित्व में ही संदेह होने लगा था। वह अपने जीवन की एक कटु-कठोर एकरसता से ऊबने लगा था, और जब अधिक ऊब जाता था तो उसका मस्तिष्क शरण खोजता हुआ किन्नरी के पास जा पहुंचता था।

परन्तु दूसरी ओर राष्ट्रों तथा राज्यों के जीवन में परिवर्तन-चक्र बड़ी तीव्र गति से घूम रहा था।

महोत्सवनगर में वृद्ध महामात्य प्रभास ने अपना उत्तरदायित्व पूरा कर लिया था। त्रिपुरी के कलचुरियों की ओर से जो आशंका थी उसका निवारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने के उद्देश्य से उनके विरुद्ध सफलतापूर्वक अभियान किया जा चुका था जिसका नेतृत्व युवराज विद्याधर ने किया था। आक्रमण सहसा और पूर्ण शक्ति के साथ किया गया था जिसके परिणामस्वरूप कलचुरी सेना ने शीघ्र ही घुटने टेक दिये थे और चन्देलों के अनुकूल संधि हो गयी थी। इस प्रकार समस्या का तात्कालिक समाधान हो गया था और कुछ समय के लिए पृष्ठाघात की आशंका नहीं रह गयी थी। परन्तु वैमनस्य की जड़ें स्वभावत: और गहरी हो गयी थीं।

पश्चिम में उद्भाण्ड के शाही नरेश महाराज आनन्दपाल महमूद के प्रति नयी नीति की ओर प्रवृत्त हो रहे थे। उनका संघ-सेना का कवच छिन्न-भिन्न हो चुका था। ओहन्द के पश्चात् संघ-सिद्धान्त में उनकी आस्था क्षीण हो गयी थी, और इधर संघ के सदस्य राज्यों द्वारा जिस प्रकार उनकी अनुदार आलोचना की गयी थी उससे उनका अविश्वास और गहरा तथा व्यापक हो गया था। पहले उन्हें कम से कम चन्देलों का विश्वास था, परन्तु अब अकारण ही वह भी नहीं रह गया था। इसके परिणाम-स्वरूप अब वह अपने आपको अकेला तथा असहाय अनुभव करने लगे थे। इसके अतिरिक्त बार-बार की पराजय तथा अपनी बढ़ती हुई अवस्था के परिणामस्वरूप अब उनका युद्ध करने का उत्साह भी क्षीण हो गया था और वे अपने शेष दिन शान्तिपूर्वक व्यतीत करना चाहते थे। महमूद के प्रति उनकी नयी, अविरोध की, नीति का निर्माण राष्ट्रीय अविश्वास की पृष्ठभूमि में, तथा उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप, हो रहा था।

परन्तु यह ऐसी स्थिति थी जिसे अपने आपसे भी स्वीकार करने में उन्हें स्वाभाविक संकोच होता था। जब उनका अपना स्वाभिमान इसके विचार मात्र से कराह उठता था तो दूसरों के सम्मुख इसे व्यक्त अथवा स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं था। अतएव चन्द्रशेखर जब-जब संधि का प्रस्ताव लेकर उनसे मिला तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कभी उसे अस्वीकार नहीं किया। परन्तु उन्होंने कभी प्रस्ताव को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार भी नहीं किया। वे चन्द्रशेखर के तर्क ध्यानपूर्वक सुनते थे, उनका समर्थन भी करते थे, परन्तु निर्णय स्थगित कर देते थे।

उद्भाण्ड में चन्द्रशेखर के समर्थकों का अभाव नहीं था। स्वयं युवराज त्रिलोचनपाल तथा उनके वीर पुत्र राजकुमार भीम प्रतिशोध और युद्ध के पक्ष में थे, और दृढ़तापूर्वक चन्द्रशेखर का समर्थन कर रहे थे। परन्तु आनन्दपाल पर उसका भी प्रभाव नहीं पड़ रहा था। उनकी स्थिति वास्तव में बड़ी कठिन थी। वे युद्ध के पक्ष में निर्णय करना नहीं चाहते थे, और विपक्ष में कर नहीं सकते थे। अतएव उनका अनिर्णय ही मानों उनका निर्णय था, जिस पर वे दृढ़ थे।

गजनी में महमूद भी उनकी इस स्थिति से पूर्णतया अनभिज्ञ नहीं था। वह एक कुशल सेनानायक होने के साथ-साथ एक अत्यन्त चतुर नीतिज्ञ भी था, और जहाँ बिना रक्त बहाये कार्य सध जाए वहाँ रक्तपात को मूर्खतापूर्ण अपव्यय समझता था। वह भली प्रकार जानता था कि पराजित होने के पश्चात् भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आनन्दपाल की शक्ति अधिक क्षीण नहीं हुई है और उनके साथ प्रत्यक्ष युद्ध में भारी रक्तपात अवश्य होगा। परन्तु भारत का द्वार खोलने के लिए उन्हें मार्ग से हटाना भी आवश्यक था। अतएव महमूद ने आनन्दपाल के क्षीण हो रहे मनोबल से लाभ उठाने का निश्चय किया और अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए एक युक्ति का आश्रय लिया।

इस सुनियोजित युक्ति के प्रथम चरण में गजनी में एक विशाल सेना एकत्र की जाने लगी और हाट-बाट में प्रचार होने लगा कि आगामी अभियान अब तक किये गये सभी आक्रमणों से अधिक भयानक होगा। तुरुष्क राजधानी में सैनिक ही सैनिक दिखाई पड़ने लगे, और चारों ओर आगामी अभियान की चर्चा होने लगी। महमूद जानता था कि यह समाचार शीघ्र ही उद्भाण्ड पहुँच जाएगा। यही वह चाहता भी था। वह उद्भाण्ड में इसकी प्रतिक्रिया देखना चाहता था।

समाचार यथासमय उद्भाण्ड पहुँच गया और वहाँ उसकी प्रतिक्रिया भी किसी सीमा तक महमूद की योजना के अनुसार ही हुई। समाचार सुनकर आनन्द पाल का हृदय काँप उठा। उन्हें अपने पिता महाराज जयपाल का स्मरण हो आया जिन्हें पराजय का कलंक धोने के लिए जीवित चिता पर चढ़ना पड़ा था। आनन्दपाल उस अपमान की पुनरावृत्ति नहीं चाहते थे। अतएव उन्होंने महमूद के साथ संधि की सम्भावनाओं पर विचार-विमर्श आरम्भ कर दिया, और यदि उनका वश चलता तो महमूद की युक्ति के प्रथम चरण में ही उसका वांछित उद्देश्य सिद्ध हो जाता। परन्तु महाराज आनन्दपाल का वश नहीं चला। युवराज त्रिलोचनपाल दृढ़तापूर्वक संधि के प्रस्ताव का विरोध कर रहे थे और अधिकांश शाही सेना उनका समर्थन कर रही थी। अतएव आनन्दपाल को झुकना पड़ा।

चन्द्रशेखर उस समय उद्भाण्ड में ही, तथा आशापूर्वक सक्रिय, था। उसने तुरन्त स्थिति की सूचना महोत्सव नगर भेजी। वहाँ से अविलम्ब उत्तर आया— "युवराज का समर्थन करो। आवश्यकतानुसार सैनिक सहायता का आश्वासन दे सकते हो।"

उधर गजनी में महमूद की योजना का दूसरा चरण आरम्भ हुआ। तुरुष्क वाहिनी द्रुत गति से पूर्व की ओर, सीधी उद्भाण्ड की दिशा में चल पड़ी। उसका संचालन स्वयं महमूद कर रहा था। वह इतनी द्रुत गति से आगे बढ़ी कि जब तक उसके प्रस्थान का समाचार उद्भाण्ड पहुँचे तब तक वह गजनी और उद्भाण्ड के बीच का आधे से अधिक अन्तर पार कर चुकी थी।

उद्भाण्ड में समाचार मिलते ही शीघ्रतापूर्वक प्रतिरक्षा की व्यवस्था की जाने लगी जिसका संचालन युवराज त्रिलोचनपाल कर रहे थे। उनके अनुरोध पर चन्द्रशेखर ने महोत्सवनगर को सहायता के लिए द्रुत संदेश भी भेज दिया। परिस्थिति ने वृद्ध महाराज आनन्दपाल को अपने ही राज्य में, अपने ही नाम से की जा रही व्यवस्था में, मात्र दर्शक बना दिया।

परन्तु उद्भाण्ड पर आक्रमण नहीं हुआ। शाही राजधानी के बहुत निकट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक पहुँचकर महमूद ने सहसा अपनी सेना को दक्षिण की ओर मोड़ दिया। उद्भाण्ड की दिशा में केवल उसका एक दूत आनन्दपाल के लिए सुल्तान का एक पत्र लेकर अत्यन्त गुप्त रूप से गया।

उधर तुरुष्क वाहिनी पूर्ववत् द्रुत गति से दुर्गम वन-पर्वतों तथा मरु-प्रान्तरों को पार करती हुई राजस्थान की ओर निकल गयी। वह अबाध गति से चारों ओर मृत्यु तथा विनाश का तांडव रचाती हुई आगे बढ़ती गयी। उसने खड़े खेत रौंद डाले, भरे-पूरे नगर-ग्राम निर्जन कर दिये, स्त्रियों को अपमानित किया, और आबालवृद्ध किसी को नहीं छोड़ा। महमूद मानों आनन्दपाल को चुनौती दे रहा था, प्रदर्शन द्वारा चेतावनी दे रहा था कि यदि तुम अपना हठ नहीं छोड़ोगे और मेरा अवरोध करने का दुस्साहस करोगे तो तुम्हारे राज्य की भी यही दशा होगी।

और इस प्रकार अपने पीछे विनाश की लीक छोड़ती हुई तथा चारों ओर आतंक फैलाती हुई महमूद की सेना राजस्थान में एक-दो छोटे-मोटे राज्यों को पददलित करने के पश्चात् गजनी की ओर लौट गयी।

इस प्रदर्शन-अभियान का आनन्दपाल पर वही प्रभाव हुआ जिसकी महमूद ने आशा की थी। जब तक आक्रमण का भय रहा तब तक तो वे मौन और निष्क्रिय, दर्शक बने बैठे रहे, और प्रतिरक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था युवराज त्रिलोचन पाल की इच्छा के अनुसार तथा उनके प्रत्यक्ष निर्देशन में होती रही। आनन्दपाल उसमें सक्रिय सहयोग नहीं देते थे, परन्तु हस्तक्षेप भी नहीं करते थे। परन्तु जब तुरुष्क लौट गये और उनके द्वारा किये गये विध्वंस और विनाश के समाचार सुन-सुनकर प्रजा में आतंक फैलने लगा, तब महाराज आनन्दपाल फिर सक्रिय हुए। उन्होंने शासन-चक्र का संचालन फिर अपने हाथों में ले लिया और त्रिलोचनपाल तथा उनके समर्थकों के साथ परामर्श करना भी छोड़ दिया। इसके कुछ समय पश्चात् उनका एक दूत मित्रता की संधि का प्रस्ताव लेकर गुप्त रूप से गजनी गया। महमूद प्रतीक्षा ही कर रहा था। तुरन्त संधि हो गयी। यह सम्पूर्ण कार्य इतने गुप्त रूप से किया गया कि युवराज त्रिलोचनपाल को भी उसकी सूचना संधि हो जाने के पश्चात् ही प्राप्त हो सकी।

चन्द्रशेखर की निराशा का पात्र भरकर छलक उठा। संधि का समाचार महोत्सव नगर भेजते हुए उसने लिखा—"संधि का विवरण अब भी इतना गुप्त रखा जा रहा है कि निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ अत्यन्त विश्वस्त सूत्रों से मुझे केवल इतना ज्ञात हो सका है कि आनन्दपाल की ओर से वार्षिक भेंट तथा महमूद के अभियानों में प्रत्येक सम्भव सहायता तथा सुविधा देने का वचन दिया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि संधि मित्रता की नहीं, अधीनता की है, और एक प्रकार से आनन्दपाल द्वारा पराजय की स्वीकृति है। ऐसी स्थिति में अब यहाँ महमूद के विरुद्ध किसी भी संगठन की सम्भावना नहीं रह गयी है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महामात्य प्रभास मानों पहले से जानते थे कि घटना-क्रम इसी दिशा में मोड़ लेगा। अविलम्ब उनका उत्तर आया, "महोत्सवनगर लौट आओ। परन्तु आने से पूर्व संधि का विस्तृत विवरण प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य करना।"

चन्द्रशेखर ने प्रयत्न किया, और उसमें सफलता भी प्राप्त की। आनन्दपाल ने प्रति वर्ष पचास सुसज्जित हाथी और अन्य बहुमूल्य पदार्थ तथा द्रव्य भेंट स्वरूप गजनी भेजने का वचन दिया था। इसके अतिरिक्त महमूद के प्रत्येक अभियान में दो सहस्र सैनिक भेजने तथासंभरण-व्यवस्था में यथासम्भव सहायता करने का प्रस्ताव उन्होंने अपनी ओर से किया था।

यह सूचना लेकर डेढ़ वर्ष से कुछ अधिक समय तक सुरक्षा की मरीचिका के पीछे भटकते रहने के पश्चात् चन्द्रशेखर ने एक बार फिर महोत्सवनगर के लिए प्रस्थान किया।

१७

महोत्सवनगर लौटकर चन्द्रशेखर ने तुरन्त महामात्य प्रभास से भेंट की।

वसन्त ऋतु थी और प्रभात का समय था। अतएव चन्द्रशेखर को यह जानकर बड़ा विस्मय हुआ कि महामात्य अभी अपने शयन-कक्ष में ही हैं। परन्तु शीघ्र ही जब उसे उनके आदेशानुसार शयन-कक्ष में ले जाया गया तो उसका विस्मय चिन्ता में परिणत हो गया।

महामात्य ने उसे देखते ही कहा, "आओ वत्स, मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। तुम्हारे मुख से अपनी विफलता का विवरण और सुन लेना चाहता हूँ। आओ, इधर मेरे निकट बैठ जाओ, और आरम्भ से आरम्भ करो। मैं पूरा विवरण सुनना चाहता हूँ।"

चन्द्रशेखर ने अनुभव किया कि महामात्य का स्वर अस्वाभाविक रूप से क्षीण तथा वेदना-रंजित है। परन्तु जब वह उनकी शैय्या के निकट आकर बैठा और उसकी दृष्टि उनके मुख पर पड़ी तो वह अवाक् रह गया। उनका मुख विवर्ण था, कपोलों के गह्वर दयनीयता की सीमा तक गहरे हो गये थे, और अस्थियाँ बहुत अधिक उभर आयी थीं। केवल आँखें अब भी पूर्ववत् प्रभापूर्ण थीं, परन्तु उनमें भी अब पहले जैसा पैनापन नहीं रह गया था। महामात्य बोलते समय भी उठकर नहीं बैठे थे, और ग्रीवा से नीचे का उनका सम्पूर्ण शरीर मोटी चादर से ढका हुआ था।

चन्द्रशेखर को अवाक् अपनी ओर निहारते देखकर उन्होंने फिर कहा, "मैं अस्वस्थ हूँ, वत्स। परन्तु मेरा वास्तविक रोग जरा है, जिसका उपचार किसी वैद्य के पास नहीं है। इसका मुझे दुःख भी नहीं है। महाराज धंगदेव ने शतायु होकर शरीर-त्याग किया था। मैं उनकी बराबरी करना नहीं चाहता। ऐसी इच्छा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैंने कभी नहीं की है। हाँ, इतनी इच्छा अवश्य थी कि उनके समान मैं भी जीवन तथा संसार से संतुष्ट होकर ही इनका त्याग करूँ, जो लगता है, मेरे भाग्य में नहीं है। परन्तु ये सब व्यर्थ की बातें हैं। अब इनसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। अतएव तुम अपना विवरण आरम्भ करो। मैं समझ लेना चाहता हूँ कि अपनी किस भूल के कारण मैं दो बार पूरी सामर्थ्य से प्रयत्न करके भी इतने वांछनीय उद्देश्य में सफल नहीं हो पाया हूँ।''

चन्द्रशेखर ने अपना विवरण आरम्भ किया ही था कि महामात्य ने उसे टोककर फिर कहा, ''ध्यान रखना कहीं कुछ छूटने न पाए। और मैं यथास्थान तुम्हारी व्याख्या भी सुनना चाहता हूँ।''

इसके पश्चात् वे मौन हो गये और चन्द्रशेखर ने बोलना आरम्भ किया। वह विवरण देता रहा, वे ध्यानपूर्वक सुनते रहे। अन्त में जब वह अपना विवरण समाप्त करके यह सोच रहा था कि महामात्य अब क्या प्रश्न पूछेंगे तभी उन्होंने अनायास घोषणा की, ''मैं जो कुछ खोज रहा था वह मिल गया। बस, और कुछ हो ही नहीं सकता। यही हो सकता है। यही है।''

''क्या, आर्य ?'' चन्द्रशेखर ने पूछा।

''मेरी विफलता का कारण,'' महामात्य ने उत्तर दिया, ''केवल यही हो सकता है। अन्यथा हमारा प्रयास कभी विफल न होता। हमारा उद्देश्य केवल बांछनीय ही नहीं, प्रत्येक प्रकार से, प्रत्येक दृष्टि से प्रशंसनीय था।''

''इसे कौन अस्वीकार कर सकता है, देव ?'' चन्द्रशेखर ने कहा।

महामात्य कहते गये, ''और इसे भी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि हमने यथासम्भव निःस्वार्थ भाव से अन्त तक उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयास किया। और यह भी निर्विवाद है कि हमारे साधन समर्थ और समुचित थे। फिर भी हम सफल नहीं हो सके। जानते हो हमें सफलता क्यों नहीं मिली ?''

''इसके कई कारण थे, आर्य।''

''कई नहीं थे,'' महामात्य ने प्रत्येक शब्द पर बल देते हुए कहा, ''केवल एक था। वह आज भी है और, लगता है, सदा बना रहेगा। हमारी विफलता और भारत के दुर्भाग्य का वह एकमात्र कारण है हमारे शासक-वर्ग में राष्ट्रीयता की भावना का अभाव। जिस उदार भावना से प्रेरित होकर हमने खजुराहो को देवनगरी बनाया है उसका देश के अन्य शासकों तथा उनके परामर्शदाताओं में अभाव है। जितना धन हमने खजुराहो को देवनगरी बनाने के प्रयास में व्यय किया है उससे गजनी तक अभियान के लिए पर्याप्त वाहिनी एकत्र की जा सकती थी। जितना श्रम हमारे मंदिरों के निर्माण में लगा है उससे दिग्विजय के लिए पर्याप्त शस्त्रास्त्र का निर्माण किया जा सकता था। परन्तु हमने कभी दिग्विजय का विचार भी नहीं किया क्योंकि हम राष्ट्र को राज्य से बड़ा और ऊपर मानते रहे हैं। दुर्भाग्यवश देश के अधिकांश अन्य शासकों का दृष्टिकोण इसके विपरीत रहा है। वे राज्य को ही जानते हैं, उसे ही मानते हैं। राष्ट्र की धारणा ही उनके संकु-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित मस्तिष्कों में नहीं है। वे राष्ट्रीयता का अर्थ ही नहीं समझते हैं। उनका राज्य ही उनका राष्ट्र है, उनका देश है, उनका विश्व है।"

"आर्य का कथन सर्वथा सत्य है।" चन्द्रशेखर ने कहा।

"सत्य तो है ही," महामात्य पूर्ववत् वेदना-रंजित चिन्तन के स्वर में कहते गये, "परन्तु यह सत्य अब तक मुझसे छिपा क्यों था ? अब तक यह मेरे मस्तिष्क में क्यों नहीं आया था ? सम्भवत: जीवन और राजनीति के अन्य अनेक सत्यों की भाँति यह भी इतना प्रत्यक्ष था कि इसकी ओर मेरा ध्यान ही नहीं गया। अप्रत्यक्ष की खोज में रत मस्तिष्क बहुधा प्रत्यक्ष को नहीं देख पाता है। परन्तु यह लक्षण अच्छा नहीं है, वत्स। यह ह्रास का लक्षण है। इसका परिणाम बड़ा भयानक होगा। मेरा क्या, आज हूँ, कल नहीं रहूँगा। यह निश्चित है। मैं उस भयानक परिणाम को देखने के लिए जीवित नहीं बैठा रहूँगा। यह भी निश्चित है कि अपने राज्य की उतनी क्षति नहीं होगी। उसे मैंने इतना शक्तिशाली बना दिया है कि वह अकेला, बिना किसी संधि अथवा सहायता के, तुरुष्कों से अपनी रक्षा कर लेगा। अतएव उसकी अधिक क्षति नहीं होगी। अधिक क्षति होगी दूरदर्शिता से सर्वथा हीन उन शासकों की जो आज कूपमंडूक बने बैठे हैं और अपने-अपने कूप में अपने आपको सुरक्षित समझ रहे हैं। कोई कूप इतना गहरा नहीं है कि उसमें महमूद का प्रवेश असम्भव हो। वह प्रत्येक में जा घुसेगा। वह एक-एक करके सारे मंडूकों को उदरसात् करेगा, एक को भी नहीं छोड़ेगा।"

महामात्य मौन हो गये थे। मौन होते ही उन्होंने अपनी आँखें भी मींच लीं, उन्हें विश्राम की आवश्यकता थी। अतएव चन्द्रशेखर के सामने भी मौन बैठे रहने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था। परन्तु जब कुछ समय तक विश्राम कर चुकने के पश्चात् उन्होंने फिर अपनी आँखें खोलीं और प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा तब उसके लिए कुछ कहना अनिवार्य हो गया। वह बोला, "यह विघटन की प्रवृत्ति है, आर्य, जो कभी किसी के लिए श्रेयस्कर नहीं हो सकती।"

महामात्य कुछ सोचने लगे। कुछ काल तक इस प्रकार मौन रहने के पश्चात् उन्होंने क्षीण स्वर में फिर कहना आरम्भ किया, "देश, जाति और राष्ट्र के लिए श्रेयस्कर वही हो सकता है वत्स, जिसके पीछे कहीं, किसी रूप में, एकता का कोई सूत्र विद्यमान हो। इस प्रकार का मात्र एक सूत्र भी पर्याप्त होता है। परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे देश में इस समय वह भी नहीं है। पहले साम्राज्य का राजनीतिक सूत्र था, वह प्रतिहारों की शक्ति के साथ विलीन हो गया। उससे भी पहले धर्म का था, उसे ब्राह्मणों तथा बौद्धों के संकीर्ण विवादों ने छिन्न-भिन्न कर दिया। इस समय राष्ट्रीयता का हो सकता है, परन्तु उसे देखने के लिए जो उदार दृष्टि चाहिए वह दुर्भाग्यवश हमारे देशवासियों के पास नहीं है। यदि यही दशा रही तो हमारा पतन अवश्यम्भावी है, उसे कोई नहीं रोक सकेगा। विदेशों से आततायी आएँगे और हम उनका अवरोध नहीं कर सकेंगे। वे हमारा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शोषण करेंगे, और हमारे ऊपर शासन करेंगे। हम स्वार्थवश उनकी दासता करेंगे और उसमें ही अपना गौरव मानेंगे। भरतों के इस गौरवशाली, पवित्र देश का यही भविष्य है, वत्स। मैं उसे स्पष्ट देख रहा हूँ।"

चन्द्रशेखर सिर नीचा किये चुपचाप सुनता रहा और जब महामात्य मौन हो गये तब भी कुछ नहीं बोला। वह समझ नहीं पा रहा था कि इस समय और प्रस्तुत संदर्भ में उसे क्या कहना चाहिए। अतएव कुछ काल तक उस कक्ष में मौन का साम्राज्य रहा, जिसके पश्चात् महामात्य ने ही फिर कहना आरम्भ किया, "इसमें तुम्हारा दोष नहीं है, वत्स। तुमने यथासम्भव प्रयास किया है। मैं तुम्हारे विवरण से संतुष्ट हूँ और तुमसे प्रसन्न हूँ। रही सफलता की बात, सो उसकी मैंने तुम्हें भेजते समय भी अधिक आशा नहीं की थी। अतएव तुम्हारी विफलता से मुझे अधिक निराशा नहीं हुई है। तुम्हें भी नहीं होनी चाहिए। तुम्हारे सम्बन्ध में मैंने युवराज विद्याधर से चर्चा की है। तुम सुविधानुसार उनकी सेवा में उपस्थित होना, और अब उन्हें ही अपना संरक्षक समझना। मुझे अब केवल युवराज से आशा रह गयी है। अतएव मेरी इच्छा है कि तुम्हारे जैसे कुछ नवयुवक उनके साथ रहें। अन्यथा वे भी कुछ नहीं कर सकेंगे।"

"आर्य के आदेश का पालन करूँगा," चन्द्रशेखर ने कहा।

महामात्य फिर मौन हो गये। उन्होंने फिर अपनी आंखें मींच लीं और इस बार इतने विलम्ब तक इसी प्रकार लेटे रहे कि चन्द्रशेखर ने समझा वे सो गये हैं

अन्त में जब उन्होंने फिर आँखें खोलीं और बोलना आरम्भ किया तब उनका स्वर कहीं बहुत दूर से, बहुत गहराई से निकल कर आता हुआ प्रतीत हो रहा था। उन्होंने कहा, विधाता की यह बड़ी क्रूर विडम्बना है, वत्स। मैंने अपने दीर्घ जीवन-काल में अनेक कार्य किये और सब में सफलता प्राप्त की, अनेक योजनाएं बनायीं और सब को कार्यान्वित किया। जीवन-पर्यन्त सदा सफलता ने मेरे चरण चूमे, जीवन-पर्यन्त कभी विफलता से मेरा साक्षात्कार नहीं हुआ। परन्तु जीवन के अन्त में, मेरी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण योजना कार्यान्वित नहीं हो पा रही है, और मुझे विफलता का संताप हृदय में लेकर यहाँ से जाना होगा। यदि मुझे कोई खेद है, कोई दुःख है, तो केवल इस बात का, और मेरे इस दुःख को कोई दूर नहीं कर सकता। यह मेरे साथ जाएगा, मृत्यु के पश्चात् भी मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलने देगा।"

"ऐसा न कहें, आर्य!" चन्द्रशेखर के मुख से निकला।

महामात्य के सूखे अधरों पर एक क्षीण-सी मुस्कान उभर आयी। उन्होंने कहा, "मैं सत्य कह रहा हूँ, वत्स। मैं जीवन की यात्रा के छोर पर खड़ा हूँ। मेरा निमंत्रण अब किसी भी क्षण आ सकता है।"

"परन्तु क्या अब इस दिशा में कुछ भी करना सम्भव नहीं है?" चन्द्रशेखर साहस करके पूछा।

"लगता तो ऐसा ही है," महामात्य ने उत्तर दिया, "और यदि कुछ करना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्भव भी हो तो उसे करेगा कौन ? मुझमें अब शक्ति नहीं रह गयी है,…और मेरे पास अब समय भी शेष नहीं है। हाँ, तुम यदि कुछ कर सकते हो तो प्रयास अवश्य करो। मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ होगा। परन्तु तुम सफल नहीं हो सकोगे, मैं जानता हूँ तुम सफल नहीं हो सकोगे। तुम्हारे पास पर्याप्त साधन नहीं हैं। मेरे पास सम्पूर्ण साम्राज्य के साधन थे, फिर भी मुझे विफल होना पड़ा है। मेरा कोई विरोध करने वाला नहीं था, फिर भी मैं सफल नहीं हो सका। तुम्हारे पास साधन नहीं हैं और यदि तुम इस पर भी प्रयास करोगे तो तुम्हारा विरोध होगा, घर से ही विरोध होगा और पग-पग पर होगा। और यदि न भी हो, ईश्वर करे न हो, तो भी तुम सफल नहीं हो सकोगे क्योंकि रोग अब असाध्य हो चुका है। अतएव मेरा परामर्श यह है कि तुम अब इस दिशा में व्यर्थ श्रम न करना। युवराज की यथासामर्थ्य सेवा करना और उनका अनुसरण करना। उन्हीं से मुझे कुछ आशा है।"

"परन्तु आर्य…" चन्द्रशेखर इससे आगे नहीं बढ़ पाया।

"बस," महामात्य ने सिर हिलाकर उसका वर्जन करते हुए कहा, "अब मैं विश्राम करूँगा। जो कुछ कहना था सो कह चुका। अब कुछ सुनना भी नहीं चाहता हूँ। चाहता हूँ विश्राम।" यह कहकर उन्होंने फिर अपनी आँखें मींच लीं और इस बार सिर भी फेर लिया।

चन्द्रशेखर चुपचाप उठकर कक्ष से बाहर निकल आया।

उसका हृदय एक अव्यक्त विषाद से भर गया था, मानों महामात्य की वेदना का एक अंश उसके मन और शरीर में भी व्याप गया हो। एक अपरिचित-सी खिन्नता, एक विचित्र प्रकार की उदासी उस पर छा गयी थी। वह सोचने लगा—मैंने युद्धभूमि में मृत्यु को अनेक बार बहुत निकट से देखा है, अनेक बार उसे ललकारा है, अनेक बार उसका साधन बना हूँ। परन्तु वह मृत्यु इससे भिन्न होती है। वहाँ किसीको अपनी सफलताओं-विफलताओं के विषय में सोचने का अवकाश ही नहीं होता। अस्तित्वों के उस संघर्ष में मारने वाला मारकर आगे बढ़ जाता है, और मरने वाला गिरकर मर जाता है। खड़ा होकर विचार कोई नहीं करता। वहाँ सफलता और विफलता के बीच की सीमा-रेखा बड़ी क्षीण होती है। परन्तु जीवन के युद्ध का पराजित योद्धा सृष्टि का सबसे दयनीय प्राणी होता है।

यह सोचते-सोचते अचानक उसे विजयसिंह की सुधि आ गयी और ओहन्द के युद्ध से पूर्व उसे दिये अपने वचन का स्मरण हो आया। उसने तुरन्त अपने अश्व का मुख उत्तर की ओर, अर्थात् सुमेरगढ़ की दिशा में, मोड़ दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८

सुमेरगढ़ पहुँचकर इस बार चन्द्रशेखर को द्वार-रक्षक से कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई। वह वृद्ध दंडधर कुँवरजी से अत्यन्त विनीत स्वर में कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के लिए कहकर शीघ्रतापूर्वक भीतर चला गया।

चारों ओर का दृश्य इतना मनोरम था कि उस स्थान पर खड़े होकर प्रतीक्षा करना चन्द्रशेखर को अधिक नहीं अखरा। सिंह-द्वार के सामने, अर्थात् पूर्व की ओर, केवल एक छोटी-सी पहाड़ी और थी। उसके अतिरिक्त जहाँ तक दृष्टि जाती थी वहाँ तक समतल भूमि का विस्तार था। इस दृश्य में आकाश की नीलिमा, वृक्षों की हरीतिमा तथा सरसों के फूले खेतों की वासन्ती पीतिमा का अद्‌भुत सम्मिश्रण हुआ था। चन्द्रशेखर के दाहिनी ओर सरोवर था जिसके एक भाग में श्वेत तथा रक्तवर्ण कमल खिले थे। वासन्ती पवन अपनी लोक-विश्रुत मन्थर गति से सरोवर की लहरों के साथ अठखेलियाँ करता हुआ बह रहा था। परन्तु कभी-कभी उसका एक प्रबल झोंका आकर आस-पास के वृक्षों को झकझोर जाता था और सरोवर के जल को आंदोलित कर देता था।

चन्द्रशेखर को अधिक समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। वृद्ध दंडपाल शीघ्र ही लौट आया। परन्तु वह अकेला नहीं लौटा। उसके पीछे अन्तःपुर की एक दासी भी थी। दंडपाल ने द्वार पूरा खोलते हुए कहा, "कुँवरजी भीतर पधारें। अन्तःपुर में रानीजी श्रीमान का स्मरण कर रही हैं।"

निमंत्रण इतना अप्रत्याशित था कि चन्द्रशेखर के लिए अपने आश्चर्य को छिपाना कठिन हो गया, और स्थिति ऐसी थी कि उसे शिष्टतापूर्वक अस्वीकार नहीं किया जा सकता था। अतएव वह चुपचाप, मन-ही-मन भाँति-भाँति के अनुमान लगाता हुआ दासी के पीछे-पीछे चल दिया।

बाहर के विस्तृत प्रांगण को पार करके उसने गढ़ी के भीतरी, आवास-खंड में प्रवेश किया। इसके पश्चात् कई दीर्घाओं को पार करके, कभी इस ओर तो कभी उस ओर घूमता हुआ वह एक सुसज्जित कक्ष में पहुँचा। वहाँ दासी खड़ी हो गयी और बोली, "कुँवरजी यहाँ आसन ग्रहण करें, मैं जाकर रानीजी को सूचना देती हूँ।"

दासी चली गयी और चन्द्रशेखर कक्ष में अकेला रह गया। परन्तु उसने आसन ग्रहण नहीं किया। इसके विपरीत वह घूम-घूमकर स्थान का और उसकी सज्जा का निरीक्षण करने लगा। कक्ष बड़ा तथा खुला हुआ था और सुरुचिपूर्वक सजाया गया था। परन्तु उसमें निरीक्षण के लिए अधिक सामग्री नहीं थी। अतएव चन्द्रशेखर ने शीघ्र ही अपने आप को उसके दूसरे छोर पर द्वार के ठीक सामने स्थित वातायन के निकट खड़ा हुआ पाया। बाहर, बहुत नीचे, सरोवर लहरें ले रहा था। स्पष्ट था कि यह कक्ष गढ़ी के एक कोण में पहाड़ी के कगार पर स्थित था। चन्द्रशेखर वहीं खड़ा हो गया और बाहर का दृश्य देखने लगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु शीघ्र ही कक्ष में किसी के प्रवेश करने की आहट पाकर वह पीछे घूमा। प्रवेश करने वाली एक स्त्री थी जिसके अनवगुंठित मुख पर दृष्टि पड़ते ही चन्द्रशेखर के मुख से हठात् निकल पड़ा, "लक्ष्मी ! तुम !"

लक्ष्मी नाम से सम्बोधित की गयी जिस स्त्री को देखकर चन्द्रशेखर को इतना अधिक आश्चर्य हुआ था वह स्वयं इस समय बहुत प्रसन्न थी और शीघ्रता-पूर्वक वातायन की ओर बढ़ती चली आ रही थी। वह एक नवयुवती थी जिसे अनेक दृष्टियों से सुन्दरी कहा जा सकता था। उसका वर्ण किंचित् श्यामल किन्तु लावण्यपूर्ण था, और मुखाकृति विशेष रूप से आकर्षक थी। उसका मुख भरा हुआ था तथा कपोलों में दोनों ओर स्वाभाविक भँवर थे जिन्हें अपने अस्तित्व के लिए हास की अपेक्षा नहीं थी। उसकी चपल, काली आँखें सदा हँसती रहती थीं, और उसके परिपक्व बिम्बाधरों में एक विशिष्ट प्रकार का विकास था जिससे हास का आभास होता था। उसके अंग-प्रत्यंग का अनुपात इतना पूर्ण था कि शरीर की स्थूलता भी स्वस्थ तथा आकर्षक प्रतीत होती थी। वास्तव में यह स्थूलता ही उसके सम्पूर्ण आकर्षण का रहस्य थी। उसका सौन्दर्य मूलतः मांसलता का सौन्दर्य था। उसमें विलक्षण कमनीयता थी, दुर्निवार रमणीयता थी, परन्तु वह सूक्ष्मता नहीं थी जो मानवी को देवी बना देती है।

चन्द्रशेखर के बहुत निकट तक पहुँचकर वह खड़ी हो गयी और उस पर मुस्कानों की वर्षा करती हुई बोली, "मैं जानती थी ! मुझे विश्वास था कि तुम एक न एक दिन मुझे अवश्य मिलोगे !"

"परन्तु तुम मुझे यहाँ, इस प्रकार मिलोगी, यह मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था।" यह कहकर चन्द्रशेखर फिर मौन, अपलक उसे निहारने लगा।

वह फिर हँसी, "मेरे इन वस्त्रों पर आश्चर्य कर रहे हो ? सोच रहे हो मैंने ये आभूषण क्यों पहन रखे हैं ? परन्तु इन प्रश्नों का उत्तर बहुत सरल है। मेरे ये वस्त्राभूषण मेरी प्रसन्नता के सूचक हैं।"

"परन्तु···" चन्द्रशेखर निश्चय नहीं कर पा रहा था कि अपनी बात को किस प्रकार, किन शब्दों में कहे।

"मैं जानती हूँ तुम क्या कहना चाह रहे हो," वह बोली, "और उसका उत्तर भी बहुत सरल है। मैंने अभी वैधव्य धारण नहीं किया है क्योंकि मैं अपने आप को विधवा नहीं समझती हूँ। तुम क्या कहते हो ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "ईश्वर करे यह दुःख तुम्हें कभी न देखना पड़े, परन्तु···"

"तुम आज भी वैसे ही परन्तुवादी हो जैसे पहले थे। समय ने तुम्हें तनिक भी नहीं बदला है। जब अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिला है तो क्या तुम्हारे 'परन्तु' मात्र से मैं अपने आप को विधवा समझ लूँगी ?"

"हाँ, प्रमाण तो कोई नहीं मिला है," चन्द्रशेखर ने स्वीकार किया। "मैंने भी बहुत खोजा, परन्तु कहीं कुछ नहीं मिला।"

"तुमने खोजा ? कब ? कहाँ ? क्या तुम उन्हें जानते थे ?" अब लक्ष्मी के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आश्चर्य करने की बारी थी।

"इसी अभियान में परिचय हुआ था," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "और मित्रता की सीमा तक हो गया था। परन्तु मैं यह नहीं जानता था कि वे तुम्हारे पति हैं। युद्ध के पश्चात् मैं उन्हें खोजता हुआ फिर उस स्थान पर गया था जहाँ युद्ध हुआ था। मैंने वहाँ एक-एक शव देख डाला, परन्तु उनका चिह्न नहीं मिला।"

लक्ष्मी का स्वर मुरझा गया। वह बोली, "अर्थात् उन्हें जीवित होना चाहिए ?"

"यह निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता। सम्भव है वे जीवित हों और बन्दी बना लिये गये हों। यह भी सम्भव है कि वे जीवित न हों।"

"परन्तु तुम्हीं ने तो अभी कहा है कि तुम्हें युद्ध क्षेत्र में उनका कोई चिह्न नहीं मिला। इससे क्या सिद्ध होता है ?"

"इससे कुछ सिद्ध नहीं होता," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।" वहाँ पड़े हुए अधिकांश शवों को रात्रि में पशुओं ने पहचानने योग्य नहीं छोड़ा था।"

"अर्थात् मुझे अब अपने आपको विधवा समझना चाहिए ? यही कहना चाहते हो न ?" लक्ष्मी का स्वर तीखा हो गया।

चन्द्रशेखर ने कहा, "नहीं, मेरा यह तात्पर्य नहीं है। परन्तु मैं तुम्हें झूठी आशा भी नहीं दिलाना चाहता हूँ। मेरा तात्पर्य केवल इतना है कि अभी निश्चय के साथ कुछ भी कहना सम्भव नहीं है।"

"तो कब सम्भव होगा ?"

"यह भी निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता। हमें किसी सुनिश्चित प्रमाण की प्रतीक्षा करनी होगी।"

लक्ष्मी ने कहा, "उन्हें यहाँ से गये लगभग दो वर्ष हो चुके हैं। दो वर्ष का समय थोड़ा नहीं होता। यदि वे जीवित होते तो इतने समय तक मौन नहीं बैठे रहते। यह प्रमाण क्या निश्चित नहीं है ?"

"नहीं," चन्द्रशेखर ने कहा, "इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि वे जीवित नहीं हैं। सम्भव है वंदी हो गये हों और गजनी की कारा में पड़े हों।"

"हाँ, यह सम्भव है," लक्ष्मी ने तटस्थ भाव से कहा, "मेरा मन भी यह स्वीकार नहीं कर पा रहा है कि वे अब जीवित नहीं हैं। सम्भव है वंदी हो गये हों, सम्भव है और कोई कारण हो। परन्तु यह एक प्रकार से सुनिश्चित है कि उन्हें अब लौटकर नहीं आना है इसमें मेरे मन को भी संदेह नहीं है।"

"क्यों ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

लक्ष्मी ने कहा, "वे स्वयं मुझसे कह गये थे।"

"क्या कह गये थे ?"

"तुम्हारे मित्र," लक्ष्मी ने इन दो शब्दों का विलम्बित उच्चारण करते हुए उत्तर दिया. "मुझसे स्पष्ट शब्दों में कहकर गये थे कि मैं अब नहीं लौटूँगा। उस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय मैंने उनकी इस बात को महत्व नहीं दिया था, परन्तु अब उसके विषय में सोचती हूँ तो लगता है उन्हें अपने आगत का पूर्व-ज्ञान था।

"मुझे भी लगता है उन्हें आगत का कुछ आभास अवश्य था। तुम्हारे पति," चन्द्रशेखर ने भी इन दो शब्दों पर बल देते हुए कहा, "मुझसे भी कुछ ऐसा ही कह रहे थे।"

"क्या कह रहे थे ?" लक्ष्मी ने पूछा।

"घटना युद्ध से पहले वाली रात्रि की है। वे उस समय अधिक विचलित प्रतीत हो रहे थे। मुझसे वचन माँगने लगे कि यदि युद्ध में उन्हें कुछ हो जाए तो मैं उनकी पत्नी और सन्तान को संरक्षण प्रदान करूँगा।" यह कहकर चन्द्रशेखर मौन हो गया। विजयसिंह ने उसे अपनी पत्नी के सम्मान की रक्षा करने का भार भी सौंपा था। परन्तु यह बात वह चाहकर भी लक्ष्मी के सामने नहीं कह पा रहा था।

सहसा लक्ष्मी बोली, "तो कुँवर जी आज अपने मित्र को दिए गये वचन के कारण इस गढ़ी में पधारे हैं ?" उसके स्वर में आहत सर्पिणी की फुंकार थी।

इस दोषारोपण का तर्क तुरन्त चन्द्रशेखर की बुद्धि में नहीं आया। उसने सहज भाव से कहा, "हाँ, लक्ष्मी। मैं एक बार पहले भी आया था।"

"डेढ़ वर्ष पूर्व ?" लक्ष्मी ने एक प्रहार और किया।

"हाँ, लगभग इतना ही समय हुआ होगा। उसके पश्चात् मैं तुरन्त यात्रा पर चला गया था। कल ही लौटकर आया हूँ।"

"और लौटते ही अपने मित्र की पत्नी की सहायता करने के उद्देश्य से सुमेर-गढ़ पधारे हैं। यही कहना चाहते हैं न ?" उच्चारण द्वारा एक-एक शब्द को असि-धार से भी अधिक तीक्ष्ण बनाती हुई लक्ष्मी बोली।

चन्द्रशेखर से कोई उत्तर नहीं बन पड़ा। वह विस्मित, मौन, अपने सम्मुख खड़ी उस नारी का मुख देखता रह गया।

लक्ष्मी ने फिर उसी स्वर में कहा, "कुँवरजी की इस कृपा के लिए दासी आभारी है। परन्तु आप अभी डेढ़ वर्ष की यात्रा के पश्चात् लौटे हैं, आपको निश्चय ही विश्राम की आवश्यकता होगी। अतएव अब मैं आपको अधिक कष्ट नहीं दूँगी। हाँ, जाने से पूर्व यह भली प्रकार सुन लीजिए कि यहाँ किसी को आपकी सहायता की आवश्यकता न है न आगे कभी होगी।" यह कहते-कहते उसने अपना मुख दूसरी ओर फेर लिया।

चन्द्रशेखर कुछ क्षण तक अवाक् उसकी ओर देखता रहा, फिर धीमे स्वर में बोला, "परन्तु तुम इतनी अधिक रुष्ट क्यों हो रही हो ? मैंने ऐसा कोई अप-राध नहीं किया है।"

परन्तु इस उत्तर से लक्ष्मी का क्षोभ घटने के स्थान पर और बढ़ गया, और बढ़कर इतना अधिक हो गया कि उसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप भी बदल गया। वह वहीं खड़ी-खड़ी फूट-फूट कर रोने लगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रशेखर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसका मस्तिष्क शून्य होगया, वाणी अवरुद्ध हो गयी, शरीर जड़ हो गया, और वह कुछ समय तक इसी दशा में खड़ा रहा। परन्तु जब लक्ष्मी जिस स्थान पर खड़ी थी वहीं बैठ गयी और विक्षिप्त-सी रोती हुई अपना सिर धरती पर पटकने लगी, तब उसके शरीर में भी सहसा फिर चेतना लौट आयी। वह लक्ष्मी के निकट धरती पर बैठ गया, और उसके दोनों हाथों ने यंत्रवत् आगे बढ़कर लक्ष्मी के सिर को अपना बंदी बना लिया।

परन्तु लक्ष्मी के क्षोभ का ज्वार इतने से शान्त नहीं हुआ। धरती के साथ सिर का सम्पर्क अब असम्भव हो गया था, अतएव उसने अपने दोनों हाथों से मस्तक पीटना तथा केश नोचना आरम्भ कर दिया।

जिस प्रकार बिना कुछ सोचे-समझे चन्द्रशेखर उसके निकट बैठ गया था, जिस प्रकार बिना कुछ सोचे-समझे उसने अपने दोनों हाथों से उसका सिर पकड़ लिया था, उसी प्रकार बिना कुछ सोचे-समझे, यंत्रवत्, अब उसने अपना एक हाथ मुक्त करके लक्ष्मी के दोनों हाथों को बंदी बना लेने का प्रयास किया। परन्तु लक्ष्मी पूरी शक्ति से संघर्ष कर रही थी, अतएव वह अपने प्रयास में सफल नहीं हो सका। तब उसने अपने दोनों हाथों से उसके दोनों हाथ पकड़कर तथा उसे अपनी ओर खींचकर उसका सिर अपनी दोनों भुजाओं के बीच में दबा लिया। अब उसका अपना मुख लक्ष्मी के सिर पर झुका हुआ था और लक्ष्मी की सुवासित केश-राशि से उठकर मादक सुगंध की लहरें उसके नासा-रंध्रों को आप्लावित कर रही थीं।

इस प्रकार अपनी शारीरिक शक्ति द्वारा लक्ष्मी को अशक्त बनाकर उसने कहा, "तुम्हें क्या हो गया है, लक्ष्मी ?"

लक्ष्मी कुछ नहीं बोली। परन्तु उसने संघर्ष करना अब समाप्त कर दिया था। उसके क्षोभ का ज्वार जितनी तीव्रता के साथ चढ़ा था उतनी ही शीघ्रता के साथ उतर भी गया था। वह शिथिल हो गयी थी, उसके नयन मुँद गये थे और सिर निर्जीव-सा चन्द्रशेखर के वक्ष पर लुढ़क गया था। उसने रोना बंद कर दिया था परन्तु सिसक अब भी रही थी, और उसके दोनों कपोल गीले थे।

कुछ क्षण तक दोनों इसी प्रकार मौन बैठे रहे। परन्तु तभी सहसा चन्द्रशेखर ने अनुभव किया कि लक्ष्मी के शरीर की उष्मा विद्युत्तरंग-सी उसके अपने शरीर में व्याप्त होकर उसका रक्तचाप बढ़ा रही है, और लक्ष्मी की सघन केश-राशि से निसृत सुगंध की लहरें उसके मस्तिष्क में प्रवेश करके उस पर कुहरे का सा आवरण डाल रही हैं। इस अनुभूति से किंचित् संकुचित होकर उसने लक्ष्मी के दोनों हाथ छोड़ दिये और धीरे-धीरे अपने आपको उसके स्पर्श-जाल से मुक्त करना आरम्भ किया। लक्ष्मी पर इसकी कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया नहीं हुई, मानों उसकी ओर से न कोई आग्रह था न किसी प्रकार का विरोध। इस समय तक वह लगभग शान्त हो चुकी थी। झंझावात के अवशेष-स्वरूप अब केवल सिसकियाँ बच रही थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसे प्रकृतिस्थ होती देखकर चन्द्रशेखर ने फिर पूछा, "यह तुम्हें क्या हो गया था लक्ष्मी ?"

लक्ष्मी क्षणभर मौन रही, मानों सोच रही हो कि उसे क्या हो गया था, फिर एक उसांस भरकर बोली, "तुम अब मेरा आधा नाम क्यों लेते हो ?"

"अभ्यासवश मुख से निकल जाता है," चन्द्रशेखर ने कहा, "परन्तु तुम्हें इसमें आपत्ति है तो आगे ध्यान रखूँगा। देवी विजयलक्ष्मी कहा करूँगा, जैसा मुझे अब कहना चाहिए। परन्तु मेरे प्रश्न का उत्तर भी तो दो। तुम्हें क्या हो गया था ?"

लक्ष्मी ने अत्यन्त धीमे स्वर में उत्तर दिया, "मैं क्या करती, तुमने बात ही ऐसी कह दी थी।"

"मैंने ?" चन्द्रशेखर ने विस्मय के स्वर में कहा।

"और किसने, और यहाँ कौन बैठा था ? सोचती हूँ तुम भी न होते तो अधिक अच्छा होता। तुम नहीं आये थे तब अधिक अच्छा था, तब मैं अधिक सुखी थी। कभी-कभी तुम्हारी सुधि अवश्य आ जाती थी। परन्तु अपने असन्तोष को, अपने अभाव को मैं एक प्रकार से भूलने लग गयी थी। तुमने क्यों मेरे जीवन में फिर आकर मेरे सोये स्वप्नों को जगाया ? तुमने क्यों मेरे जीवन को फिर पहले जैसा वेदनामय बना दिया है ?"

चन्द्रशेखर के मस्तिष्क का आकाश भी अब फिर स्वच्छ होने लगा था। उसने कहा, "यह चूक मुझसे अनजान में हुई है। अब फिर नहीं होगी। मैं तुम्हारे जीवन से चला जाऊँगा।"

"देखूँगी कैसे चले जाते हो और कहाँ जाते हो," लक्ष्मी ने विग्रह के स्वर में कहा।" अब तुम मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकोगे। जाना चाहोगे तो भी मैं नहीं जाने दूँगी। एक बार चले गये सो चले गये, अब नहीं जा सकोगे।"

"एक बार मैं चला गया था ?" चन्द्रशेखर ने व्यंग किया।

"हाँ, तुम चले गये थे," लक्ष्मी ने अविचलित दृष्टि से उसे भेदते हुए कहा, "प्रेम से मुख मोड़कर, मुझे निराश और असहाय छोड़कर चले गये थे। मैं प्रतीक्षा करती रही, साध सँजोये बैठी रही कि मेरा राजकुमार सेना सजाकर आएगा और विरोध का दमन करके मुझे अत्याचार की कारा से मुक्त करेगा, मैं उसके कंठ में वरमाला डालूँगी और वह अपने अश्व पर बैठाकर मुझे साथ ले जाएगा। परन्तु तुम नहीं आये थे ?"

"मुझे सूचना मिलती तो अवश्य आता," चन्द्रशेखर ने कहा।

"सूचना तुमने खोजी होती तो अवश्य मिलती। परन्तु तुमने खोजी ही नहीं। पिता ने प्रतिबंध मेरे ऊपर लगाये थे, परन्तु तुम्हारे ऊपर कोई प्रतिबंध नहीं था। मैं गढ़ी से बाहर नहीं जा सकती थी, परन्तु तुम गढ़ी के निकट तक निर्द्वन्द्व आ सकते थे। तुम्हारे ऊपर किसी का शासन नहीं था, तुम्हें रोकने का किसी में साहस नहीं था। परन्तु तुम नहीं आये। मैंने तुम्हें सूचना देने के लिए

 CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्र लिखा था और उसे लिये-लिये घूमती थी कि तुम कहीं गढ़ी के निकट दिखाई पड़ो तो किसी प्रकार तुम्हारे पास पहुँचाने का प्रयास करूँ। परन्तु तुम्हें मेरी इतनी चिन्ता ही नहीं थी, तुम नहीं आये। और वही तुम आज मुझे दोषी ठहराना चाहते हो ? तुम्हीं यदि मेरे स्थान पर होते तो इससे अधिक और क्या करते ?"

"मैं पिता के अत्याचार के विरुद्ध लड़ता, अपने प्रेम के लिए संघर्ष करता," चन्द्रशेखर ने उत्तेजित होकर कहा।

"पुरुष होकर तो अपने प्रेम के लिए संघर्ष कर नहीं सके, स्त्री होते तो अवश्य करते !" लक्ष्मी ने व्यंग किया। "हाँ, मैं संघर्ष कर सकती थी। परन्तु किसके लिए करती ? मैं विद्रोह कर सकती थी। परन्तु किसके बल पर करती ? तुमने मुझे···" वाक्य आरम्भ करके वह सहसा मौन हो गयी, क्षण-भर कुछ सोचती रही, और उसके पश्चात् बदले हुए स्वर में फिर बोली, "परन्तु अब इन बातों को जाने दो। तुम मुझे फिर मिल गये हो यही क्या कम है। अतएव अब मैं तुम्हारे ऊपर दोषारोपण नहीं करूँगी। बड़े भाग्य से मिले हो, अब सहेज कर रखूँगी और कहीं नहीं जाने दूँगी। जब मेरा विवाह हो गया और मैं यहाँ आयी तो कर्त्तव्य-भावना से प्रेरित होकर मैने तुम्हें भुलाने का बहुत प्रयत्न किया, बहुत चाहा कि जिसकी बना दी गयी हूँ उसकी, और केवल उसकी, बनकर रहूँ। परन्तु मैं सफल नहीं हो सकी, तुम्हें हृदय से निकाल कर बाहर नहीं कर सकी। तुमने चाहे जो किया हो और चाहे जो समझा हो, परन्तु मैं हृदय से सदा और केवल तुम्हारी रही हूँ। यह तुम्हारे मित्र भी जानते थे। तुम्हें भुलाने के प्रयास में विफल होकर मैंने स्वयं उन्हें बता दिया था। अब तुम्हीं सोचो कि जिसे मैंने सदा और इतना अधिक चाहा है, उसे भाग्य से फिर पाकर क्या खो जाने दूँगी ? मैं इतनी मूर्ख नहीं हूँ।"

सहसा चन्द्रशेखर के मस्तिष्क में एक विचार कौंध गया। उसने पूछा, "क्या तुमने उन्हें मेरा नाम-धाम भी बता दिया था ?"

"नहीं," लक्ष्मी ने उत्तर दिया, "नाम-धाम नहीं बताया था।"

"उन्होंने पूछा था ?"

"नहीं, उन्होंने इस विषय में कभी मुझसे न कुछ कहा, न पूछा। भगवान करे वे जीवित हों। वे अद्‌भुत पुरुष थे, देवता थे। मैं उन्हें प्रेम नहीं दे सकी, परन्तु और कुछ मैंने कभी नहीं दुराया क्योंकि मैं हृदय से उनका आदर करती थी।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "क्या यह सम्भव है कि उन्हें और किसी सूत्र से तुम्हारे प्रेमी का नाम-धाम ज्ञात हो गया हो ?"

"यह असम्भव नहीं है," लक्ष्मी ने उत्तर दिया।

चन्द्रशेखर मौन होकर कुछ सोचने लगा। क्षण-भर पश्चात् उसे विचार-मग्न देखकर लक्ष्मी ने ही फिर कहा, "क्या सोच रहे हो ?"

चन्द्रशेखर स्वयं नहीं जानता था कि वह क्या सोच रहा है। वह सोच

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवश्य रहा था, परन्तु उसके मस्तिष्क में कोई एक सुस्पष्ट विचार नहीं था। अनेक थे; और इतने उलझे हुए थे कि चन्द्रशेखर के लिए उन्हें शृंखलाबद्ध करना बड़ा कठिन था। अतएव उसने बात टालने के उद्देश्य से कहा, "सोच रहा हूँ कि क्या बिगड़े को सुधारा नहीं जा सकता।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् जो पहले नहीं हुआ उसे क्या अब नहीं किया जा सकता ?"

चन्द्रशेखर के उपचेतन अथवा अचेतन में कहीं ऐसी कामना अवश्य रही होगी, परन्तु उसके चेतन ने यह बात मात्र परिहास की भावना से कही थी। वह सोचता था कि लक्ष्मी भी हँसकर इसका कुछ उत्तर दे देगी और बात समाप्त हो जाएगी। परन्तु लक्ष्मी पर इसकी विपरीत प्रतिक्रिया हुई। वह सहसा अत्यधिक गम्भीर हो गयी और गहरी उसांस भरकर बोली, "नहीं, वह अब सम्भव नहीं है, अन्यथा मुझसे अधिक प्रसन्न आज संसार में कोई नहीं होता।"

वर्जन सदा और स्वभावतः आग्रह को जन्म देता है, और आग्रह अनेक बार बिना किसी कारण के ही दुराग्रह का रूप धारण कर लेता है। चन्द्रशेखर ने कहा, "क्यों सम्भव नहीं है? तुम भी वही हो, मैं भी वही हूँ। फिर क्या कठिनाई है ?"

लक्ष्मी क्षण-भर स्थिर दृष्टि से चन्द्रशेखर की ओर देखती रही, मानों उसकी थाह ले रही हो। फिर उसने धीमे स्वर में कहना आरम्भ किया, "तुम वही हो सकते हो। सम्भवतः हो भी। परन्तु मैं अब वह नहीं रह गयी हूँ।"

"क्यों ?" चन्द्रशेखर के स्वर में आग्रह की मात्रा बढ़ती जा रही थी।

लक्ष्मी ने उसी प्रकार धीमे स्वर में धीरे-धीरे बोलते हुए कहा, "मैं तुम्हारे मित्र की पत्नी और उनके पुत्र की माता बन चुकी हूँ। इस कारण स्थिति बहुत भिन्न हो गयी है। मेरा मन कह रहा है कि वे अभी जीवित हैं और एक दिन लौटकर अवश्य आएँगे। अतएव अब मैं तुम्हारी पत्नी नहीं बन सकती हूँ। यह असम्भव हो गया है। यदि वे न भी लौटें तो मैं उनकी संतान के प्रति अपने कर्तव्य का पालन अवश्य करूँगी।"

"फिर ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"फिर ? यह भी मुझे बताना होगा ? जो तुम्हें कहना चाहिए वह मुझसे कहलाना चाहते हो ? तो सुनों। मैं अब तुम्हारी पत्नी नहीं बन सकती, तुम्हारी संतान की माता नहीं बन सकती। यह सम्भव नहीं रह गया है। परन्तु मैंने तुमसे प्रेम किया है, करती हूँ, और सदा करती रहूँगी। जो कुछ चाहते हुए भी, और प्रयास करके भी, उन्हें नहीं दे पायी, वह तुम्हें दे सकती हूँ, और दूँगी। यह मेरा अधिकार है, इससे मुझे कोई वंचित नहीं कर सकता।"

चन्द्रशेखर का मन उस समय न जाने कहाँ जा पहुँचा था। लक्ष्मी जो कुछ कह रही थी उसे वह सुन भी रहा था और नहीं भी सुन रहा था।

सहसा लक्ष्मी ने पूछा, "तुमने विवाह कर लिया ?"

चन्द्रशेखर ने बिना कुछ बोले नकारात्मक सिर हिला दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लक्ष्मी का उल्लास फूट पड़ा। वह बोली, "मैं जानती थी! मुझे विश्वास था कि तुम विवाह नहीं करोगे!" यह कहकर वह मौन हो गयी और कुछ क्षण तक न जाने क्या-क्या सोचती रही। इसके पश्चात् उसने सहसा अपनी दोनों बाँहें चन्द्रशेखर के कंठ में डाल दीं, अपना सिर उसके वक्ष पर रख दिया, और भावोत्तेजित होकर फिर कहना आरम्भ किया, "यह मेरा अधिकार है। इसमें मैं किसी का, किसी का भी हस्तक्षेप सहन नहीं करूँगी। यदि एक बार तुम भी मुझे इससे वंचित रखना चाहो तो भी मैं स्वीकार नहीं करूँगी। तुम मेरे हो। मैं तुम्हारी नहीं हो सकी, परन्तु तुम सदा मेरे रहे हो, और सदा मेरे रहोगे।"

चन्द्रशेखर को लगा मानों वह डूबा जा रहा है। उसके मस्तिष्क पर गोधूलि-सी छा गयी, श्वास की गति द्रुत हो गयी, अधर सूखे-सूखे लगने लगे, और मन में उद्दाम कामना की तरंगें हिलोरें लेने लगीं।

परन्तु इस बार स्वयं लक्ष्मी ने उसे मुक्त कर दिया। जिस प्रकार सहसा उसने चन्द्रशेखर को बाँहों में बाँधा था उसी प्रकार अनायास वह अलग भी हो गयी और उपलाम्भ के स्वर में बोली, "तुम अब पहले जैसे नहीं रह गये हो।"

"क्यों?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"जानकर अनजान बनते हो? तुम बदल गये हो, पहले जैसे नहीं रह गये हो। परन्तु मैं भी देखूँगी। कहे देती हूँ, दूर रहकर जैसे हो गये हो निकट आकर वैसे नहीं बने रह सकोगे। मैं तुम्हें फिर पहले जैसा न बना लूँ तो मेरा नाम लक्ष्मी नहीं।"

"लक्ष्मी कि देवी विजयलक्ष्मी?" चन्द्रशेखर ने चिढ़ाया।

लक्ष्मी ने उसकी ओर संक्षिप्त दृष्टिपात करते हुए धीमे स्वर में कहा, "तुम्हें क्या अच्छा लगता है?"

"जो तुम्हें अच्छा लगे।"

"तो लक्ष्मी, मात्र लक्ष्मी। मुझे यही अच्छा लगता है। यदि और कुछ कहा तो मैं तुमसे कभी नहीं बोलूँगी।"

चन्द्रशेखर सहसा उठकर खड़ा हो गया और बोला, "तो लक्ष्मी, इस समय मुझे आज्ञा दो। आज मुझे युवराज के दर्शन करने जाना था। स्वयं आर्य महामात्य ने आदेश दिया है। परन्तु तुम्हारे पास आकर मुझे स्मरण ही नहीं रहा। विलम्ब बहुत हो गया है, परन्तु एक बार जाकर प्रयास अवश्य करूँगा।"

लक्ष्मी भी उठकर खड़ी हो गयी और बोली, "अब कब आओगे? आज तो मैं तुम्हारा कुछ सत्कार भी नहीं कर पायी हूँ।"

"जब तुम कहो। कल आऊँ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"हाँ, और कल भोजन भी यहीं करना।"

वह चन्द्रशेखर के साथ-साथ कक्ष से बाहर निकली और गढ़ी के प्रांगण तक उसे विदा करने आयी। प्रांगण पार करके चन्द्रशेखर ने एक बार पीछे घूमकर देखा। वह प्रांगण के दूसरे छोर पर खड़ी उसे जाते हुए देख रही थी।

चन्द्रशेखर सोचने लगा—जीवन में भी कुछ ऐसा ही हो गया है। एक प्रांगण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है जिसके एक छोर पर मैं खड़ा हूँ, दूसरे पर लक्ष्मी है। प्रांगण बहुत बड़ा नहीं है। परन्तु वह है अवश्य, उसके अस्तित्व में संदेह नहीं किया जा सकता। क्या उसे पार करके मैं फिर कभी वहाँ पहुँच सकूँगा जहाँ खड़ी वह मुझे निहार रही है?

—१९—

सुमेरगढ़ से लौटकर चन्द्रशेखर ने उस दिन युवराज से भेंट करने का कोई प्रयास नहीं किया। वास्तव में वह यात्रा से लौटकर तुरन्त युवराज के पास जाना आवश्यक नहीं समझता था। इसके अतिरिक्त उस समय कहीं जाने की अथवा किसी से भेंट करने की उसे तनिक भी इच्छा नहीं थी। एक विचित्र-से आलस्य ने उसके शरीर और मन, दोनों को ग्रस लिया था। वह केवल सोचना चाहता था, और सोचने के लिए एकान्त चाहता था।

परन्तु शंकर से गोपन असम्भव था। उसकी वृद्ध आँखों से चन्द्रशेखर की अन्यमनस्कता थोड़े समय के लिए भी छिपी नहीं रह सकी, और वह उसका कारण जानने के लिए व्यग्र हो उठा। इस व्यग्रता के परिणामस्वरूप वह बार-बार कोई न कोई कार्य लेकर स्वामी के कक्ष में आने लगा। स्पष्ट था कि वह कुछ कहना चाहता है परन्तु यह निश्चय नहीं कर पा रहा है कि उसे कैसे कहे।

अन्त में वह एक बार बिना किसी कार्य के ही आकर चन्द्रशेखर के निकट खड़ा हो गया और बिना किसी भूमिका के बोला, "कालंजर कब चलोगे?"

"क्यों?" चन्द्रशेखर ने झुँझलाकर पूछा।

शंकर ने दृष्टि नीची किये हुए कहा, "भूल गये क्या? मुझे भगवान को बिल्वपत्र चढ़ाने हैं। मैंने मान्यता मानी थी।" जब कभी वह कुछ छिपाने का प्रयास करता था तो उसकी दृष्टि नीची ही रहती थी, ऊपर नहीं उठ पाती थी।

"बिल्वपत्र चढ़ाने हैं तो तू चला जा। कल चला जा।" चन्द्रशेखर ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

शंकर क्षणभर मौन खड़ा रहा, फिर दृष्टि ऊपर उठाकर बोला, "मेरे अकेले जाने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। हाँ, मेरा अपकार अवश्य हो सकता है। तुम भी साथ क्यों नहीं चलते हो? सोचो तो, तुम्हें देखकर माताजी को कितनी प्रसन्नता होगी। तुम्हारा मन भी बहल जाएगा, इस कारण और कह रहा हूँ।"

"मैं अभी नहीं चल सकूँगा," चन्द्रशेखर ने कहा।

परन्तु शंकर इस प्रकार मानने वाला नहीं था। बोला, "क्यों नहीं चल सकोगे? तुम्हें चलना चाहिए। यात्रा पर जाने से पूर्व तुमने माताजी को वचन दिया था, उसे भूल गये हो क्या? माता को दिये गये वचन का पालन नहीं करोगे?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "उसकी चिन्ता मैं कर लूंगा। परन्तु अभी यहाँ एक बड़ा आवश्यक कार्य है, उसे किये बिना चलना सम्भव नहीं होगा। और अब तू बिना

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और कुछ बोले यहाँ से चला जा, मैं विश्राम करना चाहता हूँ।"

परन्तु शंकर अपने स्थान से हिला भी नहीं। यदि कार्य इतना आवश्यक है तो उसे पूरा करलो तब चलेंगे। परन्तु चलना अवश्य होगा। तुम्हारा मन स्वस्थ नहीं है, उसका उपचार आवश्यक है।"

संकेत बहुत स्पष्ट था। चन्द्रशेखर ने झुंझलाकर कठोर स्वर में कहा, "मेरे मन को कुछ नहीं हुआ है रे। केवल थका हूँ, और तेरी मूर्खता की बातें सुन-सुन कर सिर में पीड़ा होने लगी है। मेरा उपचार चाहता है तो यहाँ से तुरन्त चला जा और मुझे विश्राम करने दे। और देख, अब यदि मेरे विश्राम में विघ्न पड़ा तो तेरी कुशल नहीं होगी।"

शंकर में कठोर बातें सहन करने की अद्भुत क्षमता थी। किन्तु कठोर स्वर, और विशेष रूप से चन्द्रशेखर का कठोर स्वर वह नहीं सहन कर पाता था। अतएव चन्द्रशेखर का अन्तिम वाक्य सुनकर वह क्षणभर के लिए भी उस कक्ष में नहीं रुका। इसके पश्चात् वह फिर रात्रि तक चन्द्रशेखर के सामने भी नहीं पड़ा। कक्ष के द्वार तक कई बार आया परन्तु बाहर से ही झाँक-झाँक कर लौट गया।

चन्द्रशेखर वास्तव में थका हुआ था और शीघ्र ही शैया की शरण में चला गया। परन्तु एक थके हुए व्यक्ति को जैसी निद्रा आनी चाहिए वैसी उसे नहीं आयी। वह पड़ा रहा। कभी आँख लग जाती थी, कभी फिर खुल जाती थी। संध्या आयी, गहरी हुई और रात्रि में परिणत होगयी। वह भोजन के लिए भी नहीं उठा, उसी प्रकार आधा सोया आधा जागता पड़ा रहा। जब आँख लग जाती थी तो स्वप्न दिखाई पड़ने लगते थे, और प्रत्येक स्वप्न में लक्ष्मी अवश्य दिखाई पड़ती थी—कभी उसके साथ अश्व पर बैठी हुई तो कभी ऊँचे पर्वत-शिखर पर खड़ी हाथ के संकेत से उसे बुलाती हुई, कभी उसके वक्ष पर सिर रखकर सिसकती हुई तो कभी प्रांगण के उस पार खड़ी उसे निहारती हुई।

प्रातःकाल जब वह उठा तब उसके सिर में वास्तव में पीड़ा थी और उसकी इच्छा उठने की नहीं हो रही थी। परन्तु आज युवराज से भेंट करना आवश्यक था। अतएव उसने नित्य-कर्म से निवृत्त होकर स्नान किया। शीतल जल से स्नान करने के पश्चात् उसने अपने आपको अधिक स्वस्थ तथा कलेवा करने के लिए अधिक आतुर अनुभव किया।

इस प्रकार स्वच्छ तथा संतुष्ट होकर उसने शंकर की सहायता से बाहर जाने के लिए वस्त्र तथा शस्त्र धारण किये।

शंकर प्रातःकाल से ही उसके साथ था और उसकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता कर रहा था। परन्तु आज वह असाधारण रूप मे मौन था। चन्द्रशेखर जो कुछ कहता था उसे सुन लेता था और उसीके अनुसार कार्य करने लगता था, परन्तु स्वयं प्रातःकाल से एक शब्द भी नहीं बोला था। चन्द्रशेखर को बाहर जाने के लिए उद्यत देखकर भी उसने यह नहीं पूछा कि कहाँ जा रहे हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और कब तक लौटोगे।

चन्द्रशेखर अपने अनुचर-अभिभावक की ओर से इस प्रकार के व्यवहार का अभ्यस्त था और उसे कभी अधिक महत्व नहीं देता था। अतएव आज भी उसने बिना शंकर से कुछ कहे चुपचाप हवेली से निकलकर प्रासाद का मार्ग पकड़ा।

परन्तु युवराज के साथ उसकी भेंट नहीं हो सकी। प्रासाद-द्वार पर उसे यह सूचना मिली कि युवराज खजुराहो गये हैं।

अतएव वहाँ से चलकर मन बहलाने के उद्देश्य से चन्द्रशेखर अपने एक मित्र के यहाँ जा पहुँचा। महोत्सव नगर में केवल तीन-चार व्यक्ति ऐसे थे जिनके साथ उसका अच्छा परिचय था। ये सज्जन उन्हीं में से एक थे। वैसे चन्द्रशेखर के साथ उनकी मित्रता कुछ विचित्र लगती थी क्योंकि आयु में वे उसके पिता के समकक्ष थे। परन्तु वे कवि थे, और बड़े गर्व के साथ कहा करते थे कि शृंगार-रस का कवि कभी वृद्ध नहीं होता है।

कवि महोदय ने गत रात्रि में कुछ श्लोकों की रचना की थी और इस समय किसी श्रोता की प्रतीक्षा में ही बैठे थे। अतएव चन्द्रशेखर के आगमन से उन्हें विशेष प्रसन्नता हुई। उन्होंने बड़े स्नेह का प्रदर्शन करते हुए अपने अभ्यागत-श्रोता का स्वागत किया और सामान्य कुशल-क्षेम के पश्चात् थोड़ी-सी भूमिका देकर अपना काव्य-पाठ आरम्भ कर दिया। चन्द्रशेखर ने शिष्टाचारवश उन छंदों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा कर दी, जिससे प्रोत्साहित होकर कवि महोदय ने अपने नवीन खंड-काव्य 'सुरति-शतक' का सव्याख्या पाठ आरम्भ कर दिया। तब चन्द्रशेखर ने अपनी भूल सुधारने का प्रयास किया और प्रशंसा करना बंद कर दिया। परन्तु विलम्ब से किये गये इस प्रयास का कवि महोदय पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे इस समय शुद्ध कर्मवाद के उस लोक में थे जहाँ पहुँचकर व्यक्ति प्रशंसा और निन्दा, दोनों के प्रति समान भाव से उदासीन हो जाता है, लोक चाहे कुछ कहें चाहे न कहें, वह निस्पृह-निष्काम भाव से अपने कर्म में रत रहता है।

आवश्यकता से अधिक जल की वर्षा कृषि के लिए और आवश्यकता से अधिक रस की वर्षा एक सामान्य व्यक्ति के लिए सदा और स्वभावतः अस्वास्थ्य-कर सिद्ध होती है। परन्तु जहाँ रस का पारावार ही हिलोरें ले रहा हो वहाँ सामान्य व्यक्ति के लिए प्राण बचाना भी बड़ा कठिन हो जाता है। यही स्थिति उस समय चन्द्रशेखर की थी, और प्राण बचाने का कोई उपाय उसकी बुद्धि में नहीं आ रहा था।

इस विषम स्थिति में संयोग से कवि महोदय ने ही अनजान में उसकी सहायता कर दी। उन्होंने सम्भवतः अपने श्रोता को पार्श्व-अन्वेषण करते देख लिया था। जो भी हो, एक बार छंद पूरा करने के पश्चात् उन्होंने उसी स्वर-लय में, अर्थात् पद्य के समान गद्य का पाठ करते हुए कहा, "होता है विलम्ब तो होने दो आज, मित्र ! नित्य प्रति ऐसा संयोग कहाँ आता है ? संग-संग बैठकर भोजन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करेंगे अभी। बोलो, मिष्ठान्न तुम्हें कौन अधिक भाता है ?''

भोजन का नाम सुनते ही चन्द्रशेखर चौंक पड़ा और उसी क्षण उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा, ''तुम्हारा काव्य उत्कृष्ठ है मित्र ! ऐसा न किसी ने कभी लिखा है, न कोई आगे लिख सकेगा। मैं फिर कभी अवकाश से आकर इसे पूरा सुनूंगा, और तभी तुम्हारे साथ भोजन भी करूँगा। परन्तु इस समय क्षमाप्रार्थी हूँ। मुझे अत्यावश्यक कार्य से अन्यत्र जाना है। मेरा वहाँ पहुँचना नितान्त आवश्यक है, और विलम्ब वैसे ही हो चुका है।''

इसके पश्चात् कवि महोदय के बहुत आग्रह करने पर भी वह वहाँ नहीं रुका और सीधा सुमेरगढ़ की ओर चल पड़ा।

यथासम्भव शीघ्रता के साथ अश्व दौड़ाता हुआ,जब वह सुमेरगढ़ पहुँचा तो द्वार-रक्षक ने तुरन्त द्वार खोल दिया और स्वयं आगे आकर अश्व की वल्गा पकड़ ली। चन्द्रशेखर ने अश्व को वहीं छोड़कर गढ़ी में प्रवेश किया।

लक्ष्मी उसे बाहरी प्रांगण में ही प्रतीक्षा करती हुई मिली। वह उसी स्थान पर खड़ी थी जहाँ चन्द्रशेखर ने गत दिवस उसे अन्तिम बार देखा था। उसने चन्द्रशेखर को विलम्ब के लिए क्षमा-याचना करने का अवसर नहीं दिया। देखते ही उपालम्भ के स्वर में बोली, ''मैं तो आशा छोड़ चुकी थी। सोच लिया था कि तुम अब नहीं आओगे।''

उसके स्वर में उपालम्भ के अतिरिक्त कुछ ऐसा भी था जो चन्द्रशेखर को चुभ गया। उसमें तरलता कम थी, शीतलता अधिक—शब्द उपालम्भ के थे, ध्वनि उदासीनता की। चन्द्रशेखर आवाक् रह गया।

लक्ष्मी उसी स्वर में फिर बोली, ''यहाँ क्यों खड़े हो ? भीतर चलो।'' और यह कहती हुई वह स्वयं घूमकर आगे-आगे भीतर की ओर चल दी। चन्द्रशेखर अभी स्वर के आघात से उबर नहीं पाया था, अतएव बिना कुछ बोले वह भी पीछे-पीछे चलने लगा।

मार्ग में लक्ष्मी ने फिर कहा, ''मैंने अपना एक सेवक तुम्हारी हवेली भेजा था ! वह समाचार लाया कि तुम प्रातःकाल ही कहीं चले गये थे। प्रासाद गये थे ? युवराज से भेंट हुई कि नहीं।''

''नहीं हुई,'' चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया। वह कहना बहुत कुछ चाहता था परन्तु कह केवल इतना ही पाया।

भीतर पहुँचकर चन्द्रशेखर को आसन देने के पश्चात् स्वयं भोजन परोसते हुए उसने फिर मौन भंग किया। बोली, ''तुम भी सोचते होगे कि मैं कैसी स्त्री हूँ ! सोचते हो न ?''

''नहीं तो,'' चन्द्रशेखर ने चौंककर उत्तर दिया। प्रश्न इतना अप्रत्याशित था कि उत्तर बिना सोचे-समझे अपने आप उसके मुख से निकल गया।

परन्तु लक्ष्मी इस उत्तर से संतुष्ट नहीं हुई। उसने कहा, ''मैं इतनी सरलता से आश्वस्त होने वाली नहीं हूँ, और तुम्हें असत्य-भाषण शोभा नहीं देता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
मैं भली प्रकार जानती हूँ तुम यही सोच रहे हो। जब मैं स्वयं सोच रही हूँ कि मैं भी कैसी स्त्री हूँ, तो तुम भला क्यों नहीं सोचोगे ?''

लक्ष्मी का स्वर बदल गया था। इसका प्रभाव चन्द्रशेखर पर भी पड़ा। उसकी वाणी भी खुलने लगी। उसने कहा, ''परन्तु मुझे तो तुम में कहीं कोई विचित्रता नहीं दिखाई पड़ती है। हाँ, यह सत्य है कि तुम सामान्य स्त्री नहीं हो। तारिकाओं के मध्य में चन्द्रमा-जैसी अवश्य हो, परन्तु विचित्र नहीं हो। यह मैं कभी स्वीकार नहीं करूँगा।''

''स्वीकार भले न करो,'' लक्ष्मी ने कहा, ''परन्तु सोच यही रहे हो। तुम्हीं क्या, जो देखेगा वही ऐसा सोचेगा। दो वर्ष हो गये मेरे पति युद्ध से लौट कर नहीं आये हैं। सम्भव है कभी न आएँ। परन्तु मैं तनिक भी दुखी नहीं हूँ। उनके लिए मैंने एक अश्रु भी नहीं बहाया है। इसके विपरीत तुम्हें पाकर मैं अत्यधिक प्रसन्न हूँ। तुम सम्भवतः विश्वास नहीं करोगे, परन्तु यह सत्य है कि अपने सम्पूर्ण विवाहित जीवन में मैं कभी इतनी प्रसन्न नहीं रही हूँ जितनी कल से हूँ। यह क्या तुम्हें विचित्र नहीं लगता है ?''

''नहीं,'' चन्द्रशेखर ने कहा, ''इसमें कहीं कुछ विचित्र नहीं है। क्या मैं भी तुम्हें फिर पाकर उतना ही प्रसन्न नहीं हूँ ?''

''तुम्हारी स्थिति भिन्न है। तुम विवाहिता स्त्री नहीं हो, किसी कर्तव्य अथवा मर्यादा से बँधे नहीं हो। तुम पुरुष हो, पूर्णतया स्वतन्त्र हो। तुम्हें प्रेम करने और पाने का अबाध अधिकार है। परन्तु क्या ऐसा अधिकार मुझे भी है ? यदि मैं अपनी वर्तमान स्थिति में तुम्हारा प्रेम स्वीकार करती हूँ अथवा अपना तुम्हें अर्पित करती हूँ तो क्या यह उचित होगा ? मैं कल से यही सोच-सोच कर पागल हुई जा रही हूँ।''

लक्ष्मी मौन हो गयी और चन्द्रशेखर ने भी तत्काल उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह भी सोच रहा था और जो एक विचार उसके मस्तिष्क में बार-बार उभर कर ऊपर आ रहा था वह यह था कि लक्ष्मी एक बार फिर उसकी पकड़ में आकर निकली जा रही है। उसका हृदय किसी दशा में भी इस सम्भावना को स्वीकार नहीं कर पा रहा था। परन्तु इसके साथ ही वह यह अनुभव भी कर रहा था कि उचित-अनुचित का लगभग ऐसा ही संघर्ष उसके अपने मस्तिष्क में भी चल रहा है।

सहसा लक्ष्मी ने कहा, ''चुप क्यों हो ? बताओ, मुझे क्या करना चाहिए ? क्या तुम भी मेरे प्रेम को अनुचित समझते हो ?''

अपनी अन्तरात्मा के अप्रिय स्वर को बलपूर्वक दबा कर चन्द्रशेखर ने कहा, ''तुम्हें यह सब नहीं सोचना चाहिए, लक्ष्मी ! यह पागलपन है।''

लक्ष्मी के स्वर में वेदना और गहरी हो गयी। वह बोली, ''मैं भी चाहती हूँ कि यह सब न सोचूँ। परन्तु जो चाहो वह और नहीं होता है। मैं चाहकर भी इससे बच नहीं पा रही हूँ। तुम जिसे पागलपन कह रहे हो वह मेरी अनिवार्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनोदशा है। उसने मुझे चारों ओर से घेर लिया है, ग्रस लिया है, कस लिया है। वह मेरे मन और मस्तिष्क के कोने-कोने में व्याप गया है और मुझे दारुण पीड़ा दे रहा है। मैं उससे मुक्त होने के लिए छटपटाती हूँ, प्रयास भी करती हूँ, परन्तु सफल नहीं हो पा रही हूँ। मात्र अपने प्रयास से सम्भवतः कभी सफल नहीं हो सकूँगी। परन्तु तुम मेरी सहायता कर दो तो हो सकती हूँ। तुम चाहो तो मेरी सहायता कर सकते हो। संसार में अकेले तुम्हीं मेरी सहायता कर सकते हो क्योंकि तुम्हें छोड़कर और किसी में मेरा विश्वास नहीं है। तुम यदि एक बार कह दो कि इसमें कुछ अनुचित नहीं है तो मेरी वेदना का अन्त हो जाएगा। तुम केवल एक बार इतना कह दो बस, मेरी सारी द्विवा समाप्त हो जाएगी।"

चन्द्रशेखर ने फिर कुछ क्षण तक कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी अपनी द्विधा अधिकाधिक विषम होती जा रही थी, और उसकी अन्तरात्मा का स्वर उभरकर ऊपर आने के लिए प्रबल संघर्ष कर रहा था।

उसे मौन देखकर लक्ष्मी ने फिर कहा, "बोलते क्यों नहीं हो ? मेरी इतनी सहायता भी नहीं करोगे ?"

अब उत्तर देना अनिवार्य हो गया था, अतएव चन्द्रशेखर ने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया, "उचित और अनुचित के बीच की रेखा बड़ी क्षीण और अस्थिर होती है। हम जिसे उचित समझते हैं अनेक लोगों की दृष्टि में वह अनुचित हो सकता है। इसी प्रकार, अनेक जिसे उचित समझते हैं वह हमारी दृष्टि में अनुचित हो सकता है। अतएव इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना बड़ा कठिन है। स्वयं हमारी दृष्टि में ही कल जो उचित नहीं था आज वही उचित बन जा सकता है। औचित्य की धारणा मूलतः एक सापेक्ष धारणा है जिसका नियमन व्यक्ति की परिस्थितियाँ करती हैं। परिस्थितियाँ ही उचित को अनुचित और अनुचित को उचित बना देती हैं।"

लक्ष्मी ने झुँझलाकर कहा, "इस दार्शनिक विवेचन को और किसी समय के लिए रखो। इस समय मुझे अपने प्रश्न का सीधा और स्पष्ट उत्तर चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में मैं जो कुछ कर रही हूँ वह उचित है कि नहीं ? हाँ अथवा नहीं में उत्तर दो।"

चन्द्रशेखर के मस्तिष्क ने अविलम्ब उत्तर दिया, 'नहीं !' परन्तु इस 'नहीं' को स्वर नहीं मिल पाया, वह कंठ के नीचे ही कहीं दबा रह गया, क्योंकि चन्द्रशेखर का हृदय अनौचित्य के भय से इस अत्यधिक कमनीय नारी का मोह नहीं छोड़ना चाहता था। उसका पुरुष-तत्व उसे बार-बार ललकार रहा था। अतएव उसने कहा, "तुम्हारे प्रश्न का हाँ अथवा नहीं में उत्तर देना कठिन नहीं है। मैं दे सकता हूँ। परन्तु दे नहीं रहा हूँ क्योंकि मैं प्रश्न को ही अनावश्यक समझता हूँ। इस समय महत्वपूर्ण प्रश्न औचित्य अथवा अनौचित्य का नहीं है। ये मात्र धारणाएँ हैं जिनका निर्माण स्वयं हमने किया है। जिसे हमने ही बनाया है उसे हम आवश्यकतानुसार बिगाड़ भी सकते हैं, सुधार भी सकते हैं, बदल भी सकते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। अतएव तुम्हें इस प्रश्न में नहीं उलझना चाहिए। विचारणीय यह है कि प्रकृति इस समय क्या चाहती है। प्रकृति व्यक्ति से, समाज से तथा समाज की संस्थाओं एवं धारणाओं से ऊपर होती है। उसकी अवहेलना करके कोई कभी सुखी नहीं रह सकता। अतएव प्रकृति जो कहे वही हमारे लिए करणीय होना चाहिए।"

लक्ष्मी ने इसके उत्तर में कुछ नहीं कहा, परन्तु अपनी दृष्टि चन्द्रशेखर के मुख पर स्थिर कर दी, मानों उसे तौल रही हो।

क्षण भर पश्चात् चन्द्रशेखर ने ही अपने कथन की आवश्यक व्याख्या करते हुए फिर कहा, "मेरा तात्पर्य यह है कि वर्तमान संदर्भ में हमें अपनी भावनाओं का आदर करना चाहिए, अपने हृदय का अनुसरण करना चाहिए।"

"तुम करोगे ?" लक्ष्मी ने पूर्ववत् उसकी ओर देखते हुए पूछा।

"मैं ?" चन्द्रशेखर ने संकुचित होकर पूछा।

"हाँ, तुम जो मुझे उपदेश दे रहे हो ? तुम्हारा हृदय क्या कह रहा है ? तुम उसका अनुसरण करोगे ?"

"मैं," चन्द्रशेखर ने घोर असमंजस के स्वर में कहना आरंभ किया, "मैं··· हाँ, मुझे करना चाहिए···मैं प्रयास करूँगा। मैं···मैंने वास्तव में अभी इस प्रश्न पर विचार नहीं किया है, अतएव निश्चय के साथ कुछ नहीं कह पा रहा हूँ।"

"तो पहले तुम स्वयं भली प्रकार विचार करके कुछ निश्चय कर लो, फिर मुझे उपदेश देना।" लक्ष्मी का स्वर असि-धार सा तीक्ष्ण हो गया था।

इसके पश्चात् चन्द्रशेखर ने बहुत प्रयास किया परन्तु मानवती का मान नहीं टूटा। वह मौन धारण करके बैठ गयी थी, चन्द्रशेखर की, किसी बात का उत्तर ही नहीं देती थी, और यदि कभी कुछ कहती थी तो सीधे मर्मस्थल पर प्रहार करती थी। उसका मुख रक्ताभ हो गया था, अधर काँप रहे थे, और दृष्टि सदा इधर-उधर रहती थी। उसका मान भंग करने के प्रयास में विफल होकर सहसा चन्द्रशेखर ने अनुभव किया कि वह अपनी इस मुद्रा में और अधिक कमनीय लग रही है।

इस प्रकार मौन मान के वातावरण में उसने भोजन समाप्त किया, ताम्बूल ग्रहण किया, और फिर अपने अन्तिम अस्त्र का प्रयोग करते हुए कहा, "तो फिर मुझे अब आज्ञा है ?"

परन्तु इस अस्त्र का प्रभाव भी विपरीत ही हुआ। लक्ष्मी ने दूसरी ओर देखते हुए कहा, "मुझसे आज्ञा माँग रहे हो ? क्या तुम मेरी आज्ञा से आते-जाते हो ? यदि कह दूँ कि न जाओ तो क्या रुक जाओगे ?"

इस प्रत्याक्रमण से हतप्रभ होकर चन्द्रशेखर ने बात टालते हुए कहा, "अच्छा, यही बता दो कि फिर कब आऊँ ?"

"गढ़ी तुम्हारी है, इसके द्वार सदा तुम्हारे लिए खुले हैं। परन्तु यदि कुछ निर्णय करने के पश्चात् ही आओ तो अधिक अच्छा रहेगा। मेरी चिन्ता मत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करना, मुझे प्रतीक्षा करना आता है। परन्तु यह स्मरण अवश्य रखना कि बीता हुआ समय नदी की लहर के समान होता है जो कभी पीछे लौटकर नहीं आती है।"

चन्द्रशेखर ने फिर कुछ नहीं कहा। वह कुछ समय तक विचारमग्न, मौन बैठा रहा, फिर चलने के लिए उठकर खड़ा हो गया। उसके सामने अब अन्य कोई विकल्प ही नहीं रह गया था।

लक्ष्मी ने भी और कुछ नहीं कहा। वह गत दिवस की भांति प्राँगण के छोर तक चन्द्रशेखर के साथ आयी। परन्तु गत दिवस की भाँति इस बार वह वहाँ रुकी नहीं। प्रांगण के छोर पर पहुँचकर उसने एक बार दृष्टि उठाकर चन्द्रशेखर की ओर देखा, फिर अत्यन्त धीमे स्वर में कहा, "निश्चय तक पहुँचने में अधिक विलम्ब न करना," और इसके पश्चात् अचानक पीछे घूमकर शीघ्रतापूर्वक, लगभग भागती हुई, भीतर चली गयी। चन्द्रशेखर विमूढ़ बना वहीं खड़ा-खड़ा उसे देखता रह गया। एक बार उसके मन में आया कि वह भी लक्ष्मी के पीछे भागे, उसे पकड़कर दृढ़ता-पूर्वक अपनी दोनों बाहों में भर ले, और उससे कह दे कि लक्ष्मी, मैंने निश्चय कर लिया है, तुम मेरी हो और सदा-सदा मेरी रहोगी। परन्तु लक्ष्मी इतनी शीघ्रता के साथ उसकी दृष्टि से ओझल हो गयी, और यह विचार उसके मस्तिष्क में इतने विलम्ब से आया था, कि उसके कार्यान्वित होने का प्रश्न ही नहीं था, और चन्द्रशेखर भी पीछे घूमकर धीरे-धीरे चलता हुआ गढ़ी से बाहर निकल आया।

अश्वारूढ़ होकर अपनी हवेली की ओर आते हुए उसका मस्तिष्क धीरे-धीरे स्वच्छ होने लगा। उसने अनुभव किया कि वह सुमेरगढ़ से, अर्थात् लक्ष्मी से जितनी दूर होता जा रहा था उसी अनुपात में उसके मस्तिष्क पर छाया हुआ वाष्प-पुंज भी छँटता जा रहा था। अब वह सम्पूर्ण स्थिति को, लक्ष्मी के और अपने बीच हुई सारी बातों को, उनके यथार्थ प्ररिप्रेक्ष्य में और विवेक की दृष्टि से देख और समझ सकता था, और अनुभव करने लगा था कि वह एक ऐसी स्थिति से सकुशल निकल कर आ रहा है जहाँ फिसल जाना ही अधिक स्वाभाविक होता है। जैसे मद्य पीकर मनुष्य अनेक ऐसी बातें कह और कर डालता है जिन पर मद्य का प्रभाव समाप्त होते ही उसे स्वयं आश्चर्य और पश्चात्ताप होने लगता है, लगभग वैसी ही दशा उस समय चन्द्रशेखर की हो रही थी। लक्ष्मी का सान्निध्य उसके लिए मद्य के समान सिद्ध हुआ था। परन्तु अब उसका प्रभाव क्षीण होने लगा था। अब चन्द्रशेखर को अपने किये-कहे पर आश्चर्य, और उससे भी अधिक पश्चात्ताप का अनुभव होने लगा था।

अपनी हवेली पहुँचकर उसकी भेंट सबसे पहले शंकर के साथ हुई जो द्वार पर ही खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था और इस समय प्रातःकाल से भी अधिक भरा-भरा प्रतीत हो रहा था। चन्द्रशेखर के साथ-साथ हवेली में प्रवेश करते हुए उसने अभिभावक के अधिकारपूर्ण स्वर में पूछा, "कहाँ गये थे ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"क्यों ? कुछ विशेष बात है ?" चन्द्रशेखर ने कहा।

"भोजन लेकर बैठे-बैठे संध्या हो आयी है। क्या विशेष बात न हो तो संध्या तक भोजन ही नहीं करना चाहिए ?"

"मैं भोजन नहीं करूँगा," चन्द्रशेखर ने घोषणा की।

शंकर ने आहत स्वर में पूछा, "क्यों ?"

"मैंने भोजन कर लिया है।"

"कर लिया है ! कहाँ ?"

अपने कक्ष में प्रवेश करते हुए चन्द्रशेखर ने कहा, "इससे तुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं भोजन करके आ रहा हूँ। तूने न किया हो तो अब जाकर कर ले।"

शंकर फूट पड़ा। बोला, "मुझे प्रयोजन है। मुझे नहीं होगा तो और किसे होगा ? मैं जानता हूँ तुम कहाँ से भोजन करके आये हो। यह मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। यह उचित भी नहीं है।"

"क्या उचित नहीं है ?" चन्द्रशेखर ने पूछा। उसका यह प्रश्न वास्तव में अनावश्यक था क्योंकि अब, सुमेरगढ़ से दूर अपनी हवेली में आकर वह स्वयं भली प्रकार समझने लगा था कि क्या उचित है और क्या उचित नहीं है।

शंकर ने कहा, "यही तुम्हारा सुमेरगढ़ जाकर वहाँ भोजन करना।"

"सुमेरगढ़ के स्वामी मेरे मित्र थे।"

"इसी कारण उनकी अनुपस्थिति में तुम्हें वहाँ अधिक नहीं जाना चाहिए।"

"सुमेरगढ़ की रानी जी के साथ मेरा उनके विवाह से पूर्व का परिचय है।"

"इस कारण अब तुम्हारा वहाँ अधिक जाना और भी अनुचित है।"

"तेरे कहने से अनुचित है ?" अपने तर्क की दुर्बलता को स्वर की कठोरता द्वारा छिपाने का प्रयास करते हुए चन्द्रशेखर ने कहा।

परन्तु शंकर अविचलित रहा। बोला, "हाँ, मेरे कहने से अनुचित है, और यदि तुम फिर भी उसे उचित समझते हो तो अब हमारा न्याय माता जी करेंगी। मैं कालंजर पहुँचते ही उनसे सब कहूँगा। तुम कल भी वहाँ गये थे। सुमेरगढ़ से आज एक व्यक्ति आया था, मैंने उससे बातों-बातों में सब जान लिया है।"

"तू बड़ा चतुर है", चन्द्रशेखर ने व्यंग किया और फिर उसी स्वर में पूछा, "कब जा रहा है कालंजर ?"

परन्तु शंकर पर व्यंग का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने अत्यन्त सहज भाव से उत्तर दिया, "कल। तुम्हारे साथ चलूँगा।"

"परन्तु मैं कल कालंजर नहीं जा रहा हूँ," चन्द्रशेखर ने कहा।

"चलोगे कैसे नहीं। माता जी ने बुलाया है।"

चन्द्रशेखर ने हँसकर कहा, "तभी तो कहता हूँ कि तू बड़ा चतुर है। माता जी को अभी सूचना भी नहीं होगी कि हम यात्रा से लौटकर आ गये हैं, और तेरे पास उनका संदेश आ गया !"

"माता जी को सूचना है।"

CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"यह असम्भव है। उन्हें अभी सूचना कैसे मिली होगी ?"

"यह मैं नहीं जानता," शंकर ने दृष्टि धरती पर गड़ाकर कहा, "परन्तु उन्हें सूचना है। आज कालंजर से उनका धावन संदेश लेकर आया है।"

चन्द्रशेखर क्षण भर कुछ सोचता रहा, फिर झुंझलाहट के स्वर में बोला, "यह तूने पहले क्यों नहीं बताया ? तू बड़ा मूर्ख है।" उसकी झुंझलाहट कृत्रिम थी, उसके पीछे संतोष का बहुत स्पष्ट स्वर था।

मूर्ख कहे जाने पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए शंकर ने कहा, "पहले कब बताता, तुम हवेली में थे भी ? अब आये हो तो तुरन्त बता रहा हूँ। माता जी ने कहलाया है कि यदि तुम कल संध्या तक कालंजर नहीं पहुँचे तो उन्हें स्वयं आना पड़ेगा। अब बताओ, कल प्रातःकाल चलोगे कि माता जी पकड़कर ले जाएँगी तभी जाओगे ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "प्रातःकाल ही चलूंगा, व्यवस्था करले। परन्तु देख, यदि तूने माता जी से सुमेरगढ़ वाली बात कही तो···"

"तो क्या करोगे ? मुझे दण्ड दोगे ?"

"तो······तो मैं कालंजर से लौटकर पूरे एक सप्ताह तक भोजन नहीं करूँगा।"

"अच्छा चलो, मैं इस बार माता जी से कुछ नहीं कहूंगा," शंकर ने उदार विजेता के स्वर में घोषणा की, "परन्तु तुम्हें भी भविष्य में सुमेरगढ़ जाना कम करना होगा।"

—२०—

अगले दिन बहुत तड़के यात्रा आरम्भ करके चन्द्रशेखर अपरान्ह में ही कालंजर पहुँच गया। विधि की विडम्बना ऐसी ही होती है। साढ़े तीन वर्ष पूर्व जिसे न पाने के कारण उसने कालंजर को और अपने माता-पिता को छोड़ा था, आज उसे पा लेने की स्थिति में उसी से दूर रहने का उद्देश्य लेकर वह फिर प्रसन्नतापूर्वक अपने माता-पिता के पास कालंजर गया था।

माता रत्नमाला उसे देखकर फूली नहीं समायीं। उनका स्वभाव ही ऐसा था। उनकी पीड़ा तथा चिन्ता एकान्तप्रिय होती थी, उसे कोई दूसरा नहीं देख पाता था। परन्तु जब वे प्रसन्न होती थीं तो अपने चारों ओर प्रसन्नता बिखराती चलती थीं, और जब बहुत प्रसन्न होती थीं तब तो भीतर से बाहर तक सम्पूर्ण दुर्ग को ही सिर पर उठा लेती थीं। आज वे बहुत प्रसन्न थीं, जिसके परिणामस्वरूप घड़ी भर में ही चन्द्रशेखर के आगमन का सुसमाचार सम्पूर्ण दुर्ग में फैल गया।

सबसे पहले वे उसे साथ लेकर उसके पिता के पास गयीं और अपने दोनों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हाथों से पकड़कर उसका सिर उनके चरणों में झुकाती हुई बोलीं, "लो, तुम्हारा सुपुत्र आ गया।"

चन्द्रशेखर के पिता, कालंजर के दुर्गपाल सोमेश्वरदेव, बोलते बहुत कम थे, ; परन्तु उनका मुख स्वच्छ मुकुर के समान था जिस पर उनके भाव अविलम्ब प्रतिबिम्बित हो जाते थे। चन्द्रशेखर को देखकर उन्हें भी इतनी प्रसन्नता हुई कि उनकी मुद्रा और वाणी, दोनों एक साथ मुखर हो उठीं। आशीर्वाद देकर चन्द्रशेखर को उठाते हुए उन्होंने रत्नमाला से कहा, "इसे तुम सुपुत्र कहती हो? अरे मैं तो अपने पिता से रुष्ट हुआ था तो बारह वर्ष तक रामनगर नहीं गया था, और यह साढ़े तीन वर्ष में ही लौटकर आ गया है। यह सुपुत्र का लक्षण है?"

"इसमें माता के गुण अधिक है," रत्नमाला ने हँसकर कहा, "इस कारण तुम से कम हठी है। और इसी कारण मैं तो इसे सुपुत्र ही कहूँगी।"

सोमेश्वरदेव के अट्टहास से सम्पूर्ण कक्ष गूंज उठा। रत्नमाला तथा चन्द्रशेखर ने भी उसमें योग दिया।

परन्तु इसके पश्चात दुर्गपाल ने चन्द्रशेखर को अधिक समय तक अपने पास नहीं रोका। उसकी यात्राओं के सम्बन्ध में दो-चार सामान्य प्रश्न पूछ कर उन्होंने रत्नमाला से कहा, "तुम्हारा सुपुत्र यात्रा करके आ रहा है। थक गया होगा, और भूखा भी होगा। पहले जाकर इसके भोजन और विश्राम की व्यवस्था करो। अनुपस्थिति के वर्षों का विवरण मैं रात्रि में सुनूंगा।"

इसके पश्चात् देवी रत्नमाला पुत्र को लेकर अपनें कक्ष में पहुँची और वहाँ उसके भोजन और विश्राम की व्यवस्था आरम्भ हुई। वह साढ़े तीन वर्ष पश्चात् कालंजर आया था, अतएव व्यवस्था भी अवसर के अनुरूप ही की जा रही थी, और चन्द्रशेखर के समक्ष उसे सहन करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था। परन्तु उसका धैर्य शीघ्रता से अपने छोर की ओर बढ़ता चला जा रहा था क्योंकि जिसे वह देखना चाहता था, जिसे उसकी आँखें निरन्तर खोज रही थीं, जिसके कारण वह अपना हठ छोड़कर महोत्सवनगर से कालंजर आया था, वह किन्नरी उसे कहीं दिखाई नहीं पड़ रही थी। जैसे-जैसे समय बीत रहा था उसका मन आशंकाओं से भरता जा रहा था। कई बार उसके मन में आया कि माता से इस विषय में पूछे, परन्तु बात अधरों तक लाते-लाते उसका साहस पलायन कर जाता था।

उसकी इस चिन्ता का अन्त विलम्ब से परन्तु बड़ा मधुर हुआ। स्नान करने के पश्चात् जब वह लौटकर माता के कक्ष में पहुँचा तो उसने अपने आप को किसी सीमा तक स्वतंत्र पाया। रत्नमाला ने उसके पीछे दास-दासियों की जो पूरी सेना लगा दी थी वह अब अपना कार्य समाप्त करके इधर-उधर हो गयी थी। उस समय उसके निकट माता के अतिरिक्त और कोई नहीं रह गया था। उसके मन में फिर विचार आया कि वह किन्नरी के विषय में माता से पूछे।

परन्तु इसकी आवश्यकता नहीं पड़ी। वह साहस बटोरने का प्रयास कर ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहा था कि किन्नरी ने कक्ष में प्रवेश किया। उसके पीछे आसन, चौकी, जल, आदि लिए हुए कई दासियाँ थीं। वह स्वयं भोजन का थाल लिये थी। रत्नमाला ने उस समय अपने पुत्र के भोजन की व्यवस्था अपने कक्ष में ही की थी।

चन्द्रशेखर की दृष्टि जो किन्नरी पर पड़ी तो वहीं अटक कर रह गयी, और उसके मुख पर कभी विस्मय के तो कभी प्रशंसा के भाव उभर कर ऊपर आने लगे। थी वह किन्नरी ही, इसमें सन्देह नहीं था। परन्तु उसमें इतना परिवर्तन हो गया था कि उसके बाबा भी यदि इस दशा में उसे देखते तो चकित अवश्य रह जाते। केवल उसकी मुखाकृति नहीं बदली थी, शेष सारा शरीर ही मानों दूसरा हो गया था। वर्ण निखर आया था, मानों स्वर्ण तपकर निकला हो; कपोलों की लालिमा में परिपक्वता आ गयी थी, नयनों की कालिमा अधिक गहरी हो गयी थी। चलने में, खड़े होने में, झुकने में, सहज स्वच्छन्दता के साथ अब एक प्रकार की संतुलित शालीनता भी आ गयी थी, मानों स्वर के साथ लय का संयोग हो गया हो। संक्षेप में, सौन्दर्य अब सुन्दरतर हो गया था, मानों चन्द्रिका-धवल स्फटिक-खंड कट-छँट कर प्रतिमा बन गया हो। जैसे सुन्दर शरीर सुरुचिपूर्ण वस्त्राभूषणों से आवेष्टित होकर अधिक सुन्दर लगने लगता है, वैसे ही किन्नरी अब परिष्कृत होकर लगने लगी थी।

दासियाँ अपना-अपना कार्य करके चली गयीं। किन्नरी भी भोजन का थाल चौकी पर सजाकर रत्नमाला के निकट जा खड़ी हुई। परन्तु चन्द्रशेखर का सम्मोहन अभी नहीं टूटा था। उसकी दृष्टि अब भी किन्नरी का अनुसरण कर रही थी। यद्यपि वह बार-बार माता का ध्यान करके उसे सप्रयास दूसरी ओर कर लेता था, परन्तु वह बार-बार फिर किन्नरी की ओर जा पहुँचती थी।

उसकी माता बड़े संतोष के भाव से उसकी आंखों का यह आचरण लक्ष्य कर रही थीं और उसमें विघ्न न पड़े इस कारण स्वयं मौन बैठी थीं। परन्तु जब किन्नरी उनके निकट आकर खड़ी हो गयी तब उन्होंने चन्द्रशेखर के विस्मय का आनन्द लेते हुए कह ही डाला, "यह किन्नरी है। पहचान नहीं पा रहे हो क्या ? तुम्हीं तो इसे मेरी सेवा के लिए लाये थे।"

किन्नरी ने तुरन्त हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहा, "आसन पर चलने की कृपा करें, भोजन प्रस्तुत है।" चन्द्रशेखर ने लक्ष्य किया, उसकी भाषा भी बदल गयी थी।

मंत्रमुग्ध-सा वह जाकर आसन पर बैठ गया और चुपचाप भोजन करने लगा। वह भूखा था, और उसके सामने रखा हुआ थाल भाँति-भाँति के व्यंजनों से भरा हुआ था जिनसे उठ रही गंध क्षुधा को तीव्र करने वाली थी।

माता रत्नमाला भी हाथ में विजन लेकर उसके निकट आ बैठीं और उसे आतुरतापूर्वक भोजन करते हुए देखकर प्रसन्नता के स्वर में बोलीं, "आज तेरे लिए भोजन किन्नरी ने ही बनाया है। परन्तु इसके मुख पर अधिक प्रशंसा न करना। मैं भी नहीं करती हूँ।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्नरी ने लजाकर अपना सिर झुका लिया।

परन्तु चन्द्रशेखर उड़कर महोत्सवनगर जा पहुँचा था। वह सुमेरगढ़ में बैठा भोजन कर रहा था। लक्ष्मी उसके सामने बैठी थी। उस दिन का सम्पूर्ण भोजन सम्भवत: उसने ही बनाया था। सम्भवत: वह आशा और प्रतीक्षा कर रही थी कि चन्द्रशेखर भोजन की प्रशंसा करेगा। परन्तु उसने प्रशंसा नहीं की थी। क्यों नहीं की थी ? क्या वह भोजन स्वादिष्ट नहीं था ? नहीं, स्वादिष्ट तो था। बहुत स्वादिष्ट था, यद्यपि आज के जैसा नहीं था। परन्तु चन्द्रशेखर ने अन्त तक उसकी प्रशंसा में एक शब्द नहीं कहा था।

सोचते-सोचते सहसा वह बोल उठा, "भोजन बहुत स्वादिष्ट बना है, माँ। मेरी तो बुद्धि ही भ्रमित हुई जा रही है, समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या पहले खाऊँ और क्या बाद के लिए छोड़ूँ।"

"तो माँ से प्रशंसा क्यों कर रहा रे ?" रत्नमाला ने कहा। "जो पात्र है, जिसने बनाया है, उससे ही क्यों नहीं कहता ? जानता नहीं, पाचक की अपनी भूख प्रशंसा से ही मिटती है।"

चन्द्रशेर ने कहा, "तुम्ही ने तो मुख पर प्रशंसा करने को मना किया था।"

किन्नरी सिर झुकाये बैठी थी, उसके कपोलों पर पाटल खिल आये थे।

रत्नमाला ने कहा, "परन्तु जो वास्तव में प्रशंसनीय है उसकी प्रशंसा कोई कहाँ तक नहीं करेगा। मैं स्वयं अपने आपको नहीं रोक पाती हूँ।"

किन्नरी चुपचाप उठकर कक्ष से बाहर चली गयी।

रत्नमाला कहती गयीं, "किन्नरी रूप-रंग, शील-स्वभाव, गुण और प्रतिभा, सब में सब प्रकार से प्रशंसनीय है। इसने संगीत भी सीख लिया है, तुम सुनोगे तो आश्चर्य करोगे। इसके कंठ में ऐसा माधुर्य है कि स्वयं मुझे आश्चर्य होता है, ईर्ष्या होती है। अब नृत्य भी सीखने लगी है। एक वर्ष मेरे साथ और रह जाए फिर देखना।"

चन्द्रशेखर जब तक भोजन करता रहा तब तक उसकी माता इसी प्रकार किन्नरी की प्रशंसा करती रहीं। यह प्रशंसा चन्द्रशेखर को भी अच्छी लग रही थी, मानों वह मधुर संगीत की पृष्ठभूमि में भोजन कर रहा हो। अतएव वह यथासम्भव इस प्रशस्ति-गान में विघ्न नहीं डाल रहा था। जब बोलना नितान्त आवश्यक हो जाता था तो भी केवल हाँ-हूँ कहकर मौन हो जाता था।

किन्नरी कक्ष से बाहर जाकर फिर नहीं लौटी थी। परन्तु जब चन्द्रशेखर भोजन समाप्त करके उठा तो वह भी ताम्बूल लिये हुए फिर आ उपस्थित हुई। स्पष्ट था कि वह कहीं दूर नहीं गयी थी, बाहर ही खड़ी उसके भोजन समाप्त करने की प्रतीक्षा कर रही थी। चन्द्रशेखर को यह बहुत अच्छा लगा। उसने ताम्बूल ग्रहण करते हुए पूछा, "ये भी तुम्हींने लगाये हैं ?"

परन्तु अपनी प्रशंसा से भयभीत-सी किन्नरी प्रश्न का उत्तर देने के लिए वहाँ नहीं रुकी। वह बिना एक शब्द बोले घूमकर कक्ष से बाहर चली गयी और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रशेखर मूढ़ बना उसे जाते हुए देखता रह गया। उसकी माता यह दृश्य देख-कर मुक्त कंठ से हँस पड़ी।

परन्तु शीघ्र ही अपने आपको पुनः संयत करते हुए उन्होंने कहा, "अब तू अपने कक्ष में चल और थोड़ा विश्राम कर ले। मैं अभी आ रही हूँ, तब तेरे पिता जी के पास चलेंगे। वे तेरा विवरण सुनने को उत्सुक बैठे होंगे।"

और इस प्रकार उस रात्रि में विलम्ब तक चन्द्रशेखर अपने माता-पिता को अपनी यात्राओं के तथा पश्चिमोत्तर युद्ध के विवरण सुनाता रहा।

अगले दिन भोर होते ही रत्नमाला की व्यवस्था फिर आरम्भ हो गयी और मध्याह्न तक उसी प्रकार चलती रही। मध्याह्न के भोजन के पश्चात् उन्होंने चन्द्रशेखर से कहा, "रात्रि में तू पूरी नींद सो नहीं पाया होगा, अतएव इस समय जाकर उसकी पूर्ति कर ले। मैं अब भोजन करने जा रही हूँ। जब तक नहीं जाऊँगी वह भी बैठी रहेगी।"

चन्द्रशेखर अपने कक्ष की ओर चल दिया और वे भी उसके साथ-साथ वहाँ तक गयीं। परन्तु कक्ष के भीतर पहुँचकर उन्हें मानों यह स्मरण ही नहीं रहा कि 'वह' भोजन करने के लिए उनकी प्रतीक्षा में बैठी होगी। वे बड़े निश्चिन्त भाव से एक पीठिका पर बैठ गयीं और निकट पड़ी हुई दूसरी पीठिका की ओर संकेत करके बोलीं, "तनिक इधर आकर तो बैठ जा। मुझे एक बात पूछनी है।"

चन्द्रशेखर बिना कुछ कहे आकर माता के पास बैठ गया। वह भली प्रकार जानता था कि वे क्या पूछेंगी, और महोत्सवनगर से ही अपना उत्तर निश्चित करके आया था।

उसके बैठते ही रत्नमाला ने बिना किसी भूमिका के कहा, "हाँ, बता, तूने क्या निर्णय किया है?"

चन्द्रशेखर ने तत्काल कुछ उत्तर नहीं दिया। उत्तर उसके पास था, वह महोत्सवनगर से सोचकर आया था। परन्तु इस समय उपयुक्त शब्द नहीं खोज पा रहा था।

उसे संकोचग्रस्त देखकर रत्नमाला ने फिर कहा, "इस बार मैं कोई बहाना नहीं सुनूँगी। तूने निर्णय करने के लिए जितना समय माँगा था उससे कहीं अधिक व्यतीत हो चुका है। यदि तू अब भी कोई निश्चय नहीं कर पाया है तो कभी नहीं कर पाएगा। ऐसी दशा में तुझे मेरा निर्णय स्वीकार करना होगा। मैं और प्रतीक्षा नहीं करूँगी।"

"मैंने निर्णय कर लिया है," चन्द्रशेखर ने धीमे स्वर में कहा।

"तो बताता क्यों नहीं है रे?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैंने यह निर्णय किया है माँ, कि मेरा निर्णय अब तुम्हीं करोगी। जैसा तुम कहोगी, वही होगा। मैंने अपने हठ से तुम्हें बहुत दुःखी किया है। अब मैं उसका प्रायश्चित्त करूँगा। जैसा तुम कहोगी, मैं वैसा ही करूँगा। तुम जब चाहो, जहाँ चाहो, मेरा विवाह कर दो। मेरी ओर से आपत्ति नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होगी ।"

रत्नमाला की आँखों में आँसू छलक आये। उन्होंने कहा, "मैं जानती थी, मैं भली प्रकार जानती थी मेरा लाल ऐसा ही करेगा। मैं इसी दिन की प्रतीक्षा कर रही थी।" यह कहते-कहते भावातिरेक से उनका कंठ अवरुद्ध हो गया और वे मौन हो गयीं। परन्तु शीघ्र ही उन्होंने आंचल के छोर से आँसू पोंछ डाले और पर्याप्त सीमा तक सुस्थिर हुए स्वर में फिर कहना आरम्भ किया, "किन्नरी तुझे कैसी लगती है ? मैंने उसे प्रत्येक प्रकार से तेरे योग्य बना दिया है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह तुझे सुखी रखेगी। मुझे भी बहुत अच्छी लगती है, इतनी अच्छी लगती है कि मैं उसे परिवार से बाहर नहीं जाने देना चाहती हूँ। और तेरे पिताजी को भी अच्छी लगती है, वे भी इस सम्बन्ध से बहुत प्रसन्न होंगे। परन्तु हम तेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करना चाहते हैं, अतएव जब तक तू मन से हाँ नहीं कर देगा तब तक हमें संतोष नहीं होगा। क्या तुझे वह अच्छी नहीं लगती है ?"

"अच्छी तो लगती है···परन्तु···" कहते-कहते चन्द्रशेखर रुक गया। वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि इस सम्बन्ध की सबसे बड़ी कठिनाई को माता के सामने प्रकट करे कि न करे, और यदि करे तो कैसे करे।

"परन्तु क्या ?" रत्नमाला ने पूछा, "कोई कठिनाई है ?"

चन्द्रशेखर मौन रहा।

"बोलता क्यों नहीं है रे ? कोई कठिनाई है ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मुझे कोई कठिनाई नहीं है, परन्तु···" बात फिर उसके कंठ में ही अटक कर रह गयी।

"तो किसे है ? क्या है ?"

चन्द्रशेखर ने बड़े संकोच से कहा, "किन्नरी का कुछ इतिहास है, मां। उसे तुम नहीं जानती हो।"

"जानती हूँ, मैं सब जानती हूँ रे," रत्नमाला ने मुस्करा कर कहा। "किन्नरी ने स्वयं मुझे बताया है। वह इतनी सरल, इतनी निश्छल है कि जहाँ स्नेह पाती है वहाँ फिर तनिक भी दुराव नहीं करती, मन और मस्तिष्क सब खोल कर रख देती है।"

"तुम्हें कोई अपत्ति नहीं है ?" चन्द्रशेखर ने अविश्वास के स्वर में कहा।

"नहीं, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तेरे पिता जी को भी नहीं है, मैं उन्हें बता चुकी हूँ। तुझे तो नहीं है ?"

चन्द्रशेखर मौन होकर अपनी प्रसन्नता को समेटने का प्रयास करने लगा। उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि जिस कठिनाई को वह इतनी अधिक कठिन समझ रहा था वह इस प्रकार, इतनी सरलता से और अपने आप, सरल हो जाएगी। अतएव माता के साथ हुए संक्षिप्त वार्तालाप की इस उपलब्धि से वह बहुत प्रसन्न था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके मौन को स्वीकृति का लक्षण मानकर रत्नमाला ने कहा, "और कोई कठिनाई तो नहीं है ?"

चन्द्रशेखर ने नकारात्मक सिर हिला दिया।

"तो अब तुझे कुछ दिन कालंजर में रहना होगा," रत्नमाला ने घोषणा की, "मैं विवाह के पश्चात् ही यहाँ से जाने दूंगी।"

"परन्तु मुझे महोत्सवनगर जाना होगा। आर्य महामात्य ने युवराज की सेवा में उपस्थित होने का आदेश दिया है। युवराज महोत्सवनगर में नहीं थे इस कारण मैं भी इधर चला आया हूँ, परन्तु उनके लौटते ही भेंट करना आवश्यक है।"

रत्नमाला ने उठते हुए कहा, "उसकी चिन्ता तेरे पिता जी करेंगे। मैं तेरा विवाह करके ही तुझे कहीं जाने दूंगी। और अब तू विश्राम कर। मैं जा रही हूँ, वह भूखी बैठी मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी।"

माता के जाने के पश्चात् चन्द्रशेखर अपने पलंग पर जा लेटा और शीघ्र ही सो गया। वह एक स्वस्थ नवयुवक था जिसका शरीर इस समय बहुत भारी और मन बहुत हलका था। अतएव उसे निद्रा बहुत शीघ्र आ गयी और इतनी गहरी आयी कि उसमें स्वप्नों का समावेश भी सम्भव नहीं था। वह इतनी गहरी थी कि यदि उसे प्रयास करके जगाया न जाता तो वह सम्भवतः अगले दिन प्रातःकाल तक उसी प्रकार सोता रहता।

परन्तु उसे प्रयास करके जगाया गया, और प्रयास करने वाली स्वयं किन्नरी थी, जिसने अन्य सारे उपाय विफल हो जाने के पश्चात् उसे बलात् उठाकर बैठा दिया और कहा, "अब तो उठिये। सोने के लिए अभी सम्पूर्ण रात्रि पड़ी है।"

चन्द्रशेखर ने आँखें भींचे ही भींचे अलसाये स्वर में कहा, "क्या प्रभात हो गया ?"

"प्रभात तो आपके सोने से पहले ही हो चुका था," निर्मल हास बिखेरते हुए किन्नरी ने उत्तर दिया, "अब संध्या होने जा रही है।"

"संध्या !" चन्द्रशेखर ने प्रयास करके आँखें खोल दीं, "अरे ! तुम !"

किन्नरी ने कहा, "हाँ, मैं ही हूँ। आप स्वप्न नहीं देख रहे हैं। मैं आपके लिए शीतल पेय लेकर उपस्थित हुई हूँ। परन्तु आप तो मानों सारे अश्व क्रय करके सोये थे। जानते हैं कैसे जगा पायी हूँ ?"

"कैसे ?" चन्द्रशेखर ने पूछा। अब वह भली प्रकार जग चुका था।

किन्नरी ने कहा, "बल प्रयोग द्वारा। जब अन्य सारे उपाय विफल हो गये तो मैंने आपको उठा कर बैठा दिया और फिर लेटने नहीं दिया।"

चन्द्रशेखर ने हँस कर कहा, "अच्छा ! तुम बड़ी समर्थ स्त्री हो ! परन्तु पहले तुम कभी ऐसा नहीं करती थीं ?"

"पहले कभी आप भी तो इतने निश्चिन्त होकर नहीं सोते थे।"

"हाँ, किन्नरी, यह सत्य है," अनायास ही भावुक होते हुए चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "पहले कभी मैं इतना निश्चिन्त होकर नहीं सोता था। वास्तव में मैं कभी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतना निश्चिन्त रहा ही नहीं हूँ, फिर सोता कैसे ? परन्तु आज बहुत निश्चिन्त हूँ ! आज मेरे सिर पर से चिन्ता का एक बहुत बड़ा भार उतर गया है।''

''आपने मुझे कभी नहीं बताया,'' किन्नरी ने आहत उपालम्भ के स्वर में कहा।

''अवसर ही नहीं मिला,'' चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया। ''जब से यह भार मेरे सिर पर आया तब से तुम मिली ही नहीं। अब जाकर पहली बार अवसर मिला है तो तुरन्त बता रहा हूँ। परन्तु गाथा तनिक लम्बी है, बताने में समय लगेगा। तुम बैठ जाओ तो आरम्भ करूँ।''

''गाथा यदि लम्बी है,'' किन्नरी ने निराश के स्वर में कहा, ''तो मैं इस समय उसे नहीं सुन सकूँगी।''

''क्यों ?''

''अभी मुझे कई आवश्यक कार्य करने हैं। माता जी प्रतीक्षा कर रही होंगी।''

''मेरे भोजन की व्यवस्था करनी है ?'' अपनी निराशा को बहलाते हुए चन्द्रशेखर ने पूछा।

''हाँ, वह भी करनी है।''

''मुझे भी तुमसे कई आवश्यक बातें करनी हैं, कई अत्यावश्यक प्रश्न पूछने हैं। उन्हें पूछने के लिए मैं न जाने कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। उसका अन्त क्या कभी नहीं होगा ? दो घड़ी यहाँ अथवा बाहर उद्यान में······''

''नहीं,'' किन्नरी ने दृढ़तापूर्वक सिर हिलाकर कहा, ''यह सम्भव नहीं है। माता जी देखेंगी तो क्या कहेंगी !''

चन्द्रशेखर ने किंचित झुँझलाकर कहा, ''यह भी सम्भव नहीं है, वह भी सम्भव नहीं है, फिर मेरी प्रतीक्षा का अन्त कैसे होगा ?''

''उसका प्रयास करूँगी, यह वचन देती हूँ ! परन्तु इस समय नहीं। अभी मेरा जाना आवश्यक है। विलम्ब बहुत हो गया है, यदि कहीं माता जी खोजती-खोजती इस ओर आ निकलीं तो···'' और वह बिना वाक्य पूरा किये शीघ्रतापूर्वक कक्ष से बाहर निकल गयी।

परन्तु चन्द्रशेखर की प्रतीक्षा का अन्त करने में उसने अधिक समय नहीं लिया। उसी रात्रि को जब वह सोने का उपक्रम कर रहा था तब किन्नरी दूध लेकर उसके कक्ष में आयी और पात्र उसके हाथ में देती हुई बोली, ''वचन का पालन करने आ गयी हूँ। अब बताइये।''

''परन्तु तुम बैठ तो जाओ,'' चन्द्रशेखर ने कहा।

''नहीं, बैठूँगी नहीं ! इतना अवकाश नहीं है। परन्तु आपकी गाथा पूरी सुनूँगी। विलम्ब न कीजिये।''

परन्तु चन्द्रशेखर ने अपनी गाथा आरम्भ करने में विलम्ब किया, अथवा यों कहा जाए कि उससे विलम्ब हुआ क्योंकि वह उस विलम्ब का सजग कर्त्ता नहीं था। वास्तव में वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि अपनी गाथा को कैसे और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहाँ से आरम्भ करे। अतएव पहले कुछ समय तक कभी इधर तो कभी उधर देखता रहा, मानो गाथा आरम्भ करने की प्रेरणा खोज रहा हो। फिर उसने सप्रयास अपने कंठ के यथार्थ अथवा कल्पित अवरोध का निराकरण किया, मानो सस्वर काव्य-पाठ की भूमिका बना रहा हो। इसके पश्चात् उसने बिना किन्नरी की ओर देखे कहा, "बैठोगी नहीं ?" वह स्वयं भली प्रकार जानता था कि यह प्रश्न सर्वथा अनावश्यक है, क्योंकि उसे शब्द देने के पश्चात् बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये तुरन्त उसने धीमे स्वर में फिर कहा, "वह मिल गयी है, किन्नरी।"

"कौन ?" किन्नरी तुरन्त उसका संकेत नहीं समझ पायी।

चन्द्रशेखर ने व्याख्या की, "वही जिसके सम्बन्ध में मैंने तुम्हें बताया था, जिसके कारण मैं कालंजर नहीं आता था।"

"आपकी पूर्व-प्रेमिका ?" किन्नरी ने कहा।

"हाँ, वही।"

"कहाँ मिली ?"

"महोत्सवनगर में ही।"

"कैसे मिली ?"

"संयोग से।"

किन्नरी ने निर्विकार भाव से कहा, "यह बड़ी प्रसन्नता का विषय है। मेरी वधाई स्वीकार कीजिए। यह वास्तव में आपकी बहुत बड़ी चिन्ता थी, जो ईश्वर की कृपा से अब दूर हो गयी है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "परन्तु तुम समझ नहीं रही हो, किन्नरी। मैं बधाई का नहीं, सहानुभूति और दया का पात्र हूँ। उसके मिलने से मेरी किसी चिन्ता का शमन नहीं हुआ, क्योंकि उससे पूर्व मुझे चिन्ता थी ही नहीं। मैं खिन्न अवश्य था, परन्तु निश्चिन्त भी था। मुझे निराशा अवश्य थी, परन्तु चिन्ता नहीं थी।"

किन्नरी बोली, "आपका तर्क मेरी बुद्धि में नहीं आ रहा है। क्या आपका तात्पर्य यह है कि पहले जिसे खोकर आप अत्यधिक खिन्न थे अब उसी को फिर पाकर आप अत्यधिक व्यग्र हो उठे हैं ? यह असम्भव है।"

"परन्तु सत्य यही है, किन्नरी।"

"बड़ी विचित्र बात है !"

"परन्तु सत्य है," चन्द्रशेखर ने कहा।

"आप कह रहे हैं तो सत्य अवश्य होगी, परन्तु मेरी बुद्धि में नहीं आ रही है। आप अपनी प्रेमिका को फिर पाकर सुखी क्यों नहीं हैं ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैंने बताया था कि अब उसका विवाह हो चुका है।"

"हाँ, यह आपने बताया था। परन्तु यह कोई बहुत बड़ी कठिनाई नहीं है। आप सरलतापूर्वक उसके पति को द्वंद्व-युद्ध के लिए ललकार कर अपने मार्ग से हटा सकते हैं। ऐसा होता है।"

"वह अब एक शिशु की माता भी है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्नरी ने कहा, "यह और अच्छा है। आपका लाभ ही लाभ है, मूल के साथ ब्याज भी आएगा।"

चन्द्रशेखर ने आहत स्वर में कहा, "तुम व्यंग्य कर रही हो, किन्नरी ?"

किन्नरी का स्वर तुरन्त बदल गया। वह बोली, "क्षमा-याचना करती हूँ। मैं बह गयी थी। अब व्यंग्य नहीं करूँगी। परन्तु आपकी समस्या क्या है ? यह मैं अभी तक नहीं समझ पायी हूँ।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "अब तो मेरी कोई समस्या नहीं हैं। पहले थी, परन्तु अब नहीं रह गयी है। आज उसका समाधान हो गया है। इसी कारण आज मैं इतना निश्चिन्त और प्रसन्न हूँ।"

"समस्या थी क्या ?" किन्नरी ने जिज्ञासा की।

"समस्या यह थी कि मैं उसे पाकर भी अपना नहीं सकता था, चाहता था परन्तु स्वीकार नहीं कर सकता था।"

"क्यों ?" फिर प्रश्न हुआ।

"उसके पति मेरे मित्र थे।"

"थे !" किन्नरी ने शब्द पर बल देकर कहा।

"हाँ, थे। सम्भवतः यही सत्य है। वह मेरे साथ युद्ध में गये थे, इस प्रकार हमारा परिचय हुआ था। तब मैं यह नहीं जानता था कि वह लक्ष्मी के पति है। फिर एक बार उन्होंने मेरी प्राण-रक्षा की, इससे परिचय ने मित्रता का रूप ले लिया। युद्ध से पूर्व उन्होंने मुझसे वचन मांगा कि यदि उन्हें कुछ हो जाए तो मैं उनकी पत्नी के जीवन और सम्मान की रक्षा करूँगा। उस समय भी मैं यह नहीं जानता था कि वह लक्ष्मी के पति हैं।"

किन्नरी बड़े ध्यान से सुन रही थी। बोली, "फिर ?"

"मैंने उन्हें वचन दिया," चन्द्रशेखर ने कहा, "कि मैं उनकी पत्नी के जीवन और सम्मान की रक्षा करूँगा। अब मैं अपनी प्राण-रक्षा करने वाले मित्र को दिया गया वचन कैसे भंग कर दूं ? यह मुझसे कभी नहीं होगा।"

"तो आपके मित्र युद्ध से लौटकर नहीं आये ?" किन्नरी ने पूछा।

"नहीं। परन्तु यह भी निश्चित नहीं है कि उनकी मृत्यु हो गयी है। किसीने उन्हें मृत नहीं देखा। अतएव यह भी सम्भव है कि वे बंदी बना लिये गये हों और अभी जीवित हों। मैं उन्हीं की खोज में अकेला लौटकर युद्धस्थल की ओर गया था।"

किन्नरी गम्भीर हो गयी थी। बोली, "आपकी समस्या वास्तव में बड़ी कठिन है। मैं निश्चय नहीं कर पा रही हूँ कि ऐसी स्थिति में आपको क्या परामर्श दूं। यदि प्रेम की रक्षा करने को कहती हूँ तो वचन भंग होता है, और यदि वचन की रक्षा करने को कहती हूँ तो प्रेम का अपमान होता है।"

चन्द्रशेखर ने उत्साहपूर्ण स्वर में कहा, "तुम समझ नहीं रही हो, किन्नरी। मैं पहले ही बता चुका हूँ कि अब मेरी कोई समस्या नहीं है। जब थी तब थी,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु अब नहीं रह गयी है। मुझे समाधान मिल गया है।"

"क्या ? कैसे ?" किन्नरी ने पूछा।

चन्द्रशेखर ने कहा, "मेरी समस्या का समाधान तुम हो, किन्नरी। मैं महोत्सवनगर से तुम्हारी शरण तक कर आया था। यह निश्चय मैंने वहीं कर लिया था कि अपना वचन किसी दशा में भंग नहीं करूँगा। यह मेरे विवेक का निश्चय था। परन्तु अतीत के संस्कार मुझे नीचे खींच रहे थे, और शरीर के आकर्षण विचलित कर रहे थे। इस कारण मैं भाग कर तुम्हारे पास आया। यहाँ आते ही माताजी ने स्वयं तुम्हारे साथ मेरे विवाह का प्रस्ताव कर दिया, जो कुछ मैं खोज रहा था वह उन्होंने बिना माँगे मेरे हाथों में रख दिया। अतएव अब मुझे कोई चिन्ता नहीं रह गयी है, अब मेरी कोई समस्या नहीं है।"

किन्नरी अत्यधिक गम्भीर होकर बोली, "आपने माता जी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है ?"

"हाँ।"

"और आप इस सम्बंध से संतुष्ट तथा प्रसन्न हैं ?"

"हाँ, मैं बहुत प्रसन्न हूँ, किन्नरी," चन्द्रशेखर ने कहा।

परन्तु किन्नरी स्पष्ट रूप से बहुत प्रसन्न नहीं थी। उसने कहा, "केवल एक प्रश्न और पूछना चाहती हूँ। पूछना आवश्यक नहीं है, क्योंकि उसका उत्तर मैं जानती हूँ। तथापि पूछूंगी अवश्य, क्योंकि आपके मुख से भी उसे सुन लेना चाहती हूँ। प्रश्न यह है कि आपने माताजी का प्रस्ताव इस बार क्यों स्वीकार कर लिया है ? उन्होंने यही प्रस्ताव आपसे बहुत पहले महोत्सवनगर में भी किया था। तब आपने उसे स्वीकार नहीं किया था। ऐसा मैंने स्वयं उनके मुख से सुना है। तब से आज पहली बार मेरे साथ आपकी भेंट हुई है। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि आपने अपने मत-परिवर्तन का आधार मुझ में पाया है। वह आधार मुझसे बाहर कहीं और है। है कि नहीं ?"

"हाँ," चन्द्रशेखर ने धीमे स्वर में स्वीकार किया।

"तो अब मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिये। वह आधार क्या है ? आपने इस बार माता जी का प्रस्ताव क्यों स्वीकार कर लिया ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं तुम्हारा प्रश्न ही नहीं समझ पा रहा हूँ। क्या तुम यह चाहती हो कि मैं उसे स्वीकार न करता ?"

"आप मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहते हैं," किन्नरी ने कहा, "परन्तु मैं भी ऐसे नहीं छोड़ूँगी। यदि आप उत्तर नहीं देंगे तो भी सत्य दबा नहीं रहेगा। अपने प्रश्न का उत्तर मैं स्वयं दूंगी, क्योंकि मैं जानती हूँ इस बार आपने प्रस्ताव क्यों स्वीकार कर लिया है। आपको इस समय एक कवच की आवश्यकता है जो प्रलोभन से आपकी रक्षा कर सके, जिसकी ओट लेकर आप अपने मित्र को दिये गये वचन का पालन कर सकें। इस कारण, और केवल इसी कारण, आपने माता जी का प्रस्ताव स्वीकार किया है। कह सकते हैं कि ऐसा नहीं है ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"नहीं, मैं ऐसा नहीं कह सकता," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया," मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे निर्णय के पीछे एक यह कारण भी है। परन्तु इसमें अनुचित क्या है?"

"कुछ नहीं," किन्नरी ने कहा," अनुचित कुछ नहीं है। उचित-अनुचित का प्रश्न ही नहीं है। प्रश्न यह है कि मुझे यह स्थिति स्वीकार्य नहीं है।"

"अर्थात् तुम इस सम्बन्ध से प्रसन्न नहीं हो ?" चन्द्रशेखर ने साश्चर्य कहा।

किन्नरी का स्वर करुण हो गया। वह बोली, "नहीं, मैं इस सम्बन्ध से तनिक भी प्रसन्न नहीं हूँ। मेरा यह जीवन आपकी थाती है औरआपकी सेवा में समर्पित है। यदि आप मेरे कारण, मुझे अपने स्नेह के योग्य समझकर, प्रस्ताव स्वीकार करते तो मैं आजन्म सेवा करने के इस अवसर को अपना परम सौभाग्य मानती और फूली न समाती। परन्तु किसी और से आपको छीनना, कवच बनकर आप को बाँध रखना, मुझे स्वीकार नहीं है। मैं पत्नी बनकर प्रसन्न होती, परन्तु अभिभाविका कदापि नहीं बनूँगी। हाँ, आपकी दासी हूँ, सो जीवन भर बनी रहूँगी।"

यह कहकर वह क्षण-भर रुकी। परन्तु चन्द्रशेखर इस विराम का समुचित लाभ नहीं उठा सका। सम्पूर्ण स्थिति उसके लिए इतनी अप्रत्याशित थी कि वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया था, और वह कुछ भी सोच सके इससे पूर्व किन्नरी ने फिर बोलना आरम्भ कर दिया। उसने कहा, "मैंने अभी माताजी का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया है। अब कर भी नहीं सकूँगी। जब बात आएगी तो अपनी स्थिति उनके सामने स्पष्ट कर दूँगी।" यह कहकर वह शीघ्रतापूर्वक कक्ष से बाहर चली गयी। चन्द्रशेखर बैठा-बैठा देखता रह गया, एक शब्द भी नहीं बोल पाया।

किन्नरी के साथ ही उसकी निद्रा भी ऐसी चली गयी कि फिर रात भर नहीं आयी। किन्नरी द्वारा अस्वीकृत होने का उसे इतना दुःख नहीं था। उसे यह स्वीकार करने में संकोच नहीं था कि वह वास्तव में किन्नरी के लिए किन्नरी के साथ विवाह करना नहीं चाहता था। किन्नरी उसे अच्छी लगती थी, बहुत अच्छी लगती थी। परन्तु वह उससे प्रेम नहीं करता था। अपने अन्तर में वह अब भी लक्ष्मी को ही आसीन पाता था। परन्तु उसका चेतन मस्तिष्क अब लक्ष्मी को स्वीकार नहीं कर पा रहा था। इस द्विधा से त्राण पाने के लिए वह अपने आप को किन्नरी के साथ बांध लेना चाहता था। परन्तु किन्नरी का तर्क उसकी बुद्धि में नहीं आ रहा था। यदि वह यौवन के उद्दाम प्रेम पर—जिसमें भावना अब गौण हो चुकी थी—विवेक का आधिपत्य स्थापित करना चाहता था, और इस सत्कार्य में किन्नरी की सहायता चाहता था, तो किन्नरी को इसमें आपत्ति क्यों थी ?

वह किन्नरी के स्वभाव से परिचित था और जानता था कि वह अवसर पाते ही रत्नमाला से अपना निश्चय और उसका कारण, सब-कुछ निःस्संकोच बता देगी। यह चन्द्रशेखर की सबसे बड़ी चिन्ता थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

—२१—

नींद का लेखा-जोखा चन्द्रशेखर दिन में ही पूरा कर चुका था कुछ इस कारण और कुछ उसके मस्तिष्क में जो नयी चिन्ता बस गई थी उसके परिणाम-स्वरूप, वह रात्रि भर जागता पड़ा प्रभात की प्रतीक्षा करता रहा। प्रभात की प्रतीक्षा इस कारण कर रहा था कि वह एक बार किन्नरी से फिर मिलना चाहता था, जो प्रभात हुए बिना सम्भव नहीं था। उसके मन में बैठा कोई कह रहा था कि किन्नरी के साथ उसका सम्बन्ध सदा के लिए नहीं टूटा है, और उसे विश्वास था कि वह समझाने से मान जाएगी।

परन्तु रात्रि भर जागरण करके प्रभात की प्रतीक्षा करने के पश्चात, प्रभात होते-होते उसे न जाने किस प्रकार नींद आ गयी और जब उसकी आँखें फिर खुलीं तब प्रभात समय के पंखों पर उड़ता हुआ अतीत के लोक में जाकर उसका अविभाज्य अंग बन चुका था। दुर्गपाल सोमेश्वरदेव स्नान-ध्यान आदि से निवृत्त होकर अपने कार्यालय में पहुँच चुके थे। शंकर न जाने कबसे स्वयं निवृत्त होकर कक्ष के बाहर बैठा अपने स्वामी के जगने की प्रतीक्षा कर रहा था।

चन्द्रशेखर को इस प्रकार विलम्ब तक सोते रहने के कारण लज्जा का, और उससे भी अधिक ग्लानि का अनुभव होने लगा। अतएव उसने दोनों का मार्जन करने के उद्देश्य से नित्य-कर्म का निर्वाह यथासम्भव शीघ्रता के साथ किया और माता के चरण स्पर्श करने उनके कक्ष में जा पहुंचा।

माता रत्नमाला कलेवा लिये उसकी प्रतीक्षा में ही बैठी थी परन्तु किन्नरी, जिसे उसकी दृष्टि खोज रही थी, वहाँ नहीं थी। देवी रत्नमाला उस समय बहुत प्रसन्न थीं। इससे चन्द्रशेखर ने अनुमान लगाया कि किन्नरी ने अभी उनसे कुछ कहा नहीं होगा। अन्यथा उनकी मुद्रा निश्चय ही भिन्न होती। इस स्थिति से चन्द्रशेखर को कुछ संतोष हुआ।

वह कलेवा करने बैठ गया। परन्तु उसकी दृष्टि बार-बार द्वार की ओर उठ जाती थी और वह असाधारण रूप से मौन था। इसे लक्ष्यकर रत्नमाला ने मुस्कराते हुए कहा, "मैंने तेरे पिता जी से कहा था। वे आर्य महामात्य को पत्र लिख रहे हैं। अब तेरे लिए तुरन्त महोत्सवनगर जाना आवश्यक नहीं।"

"अच्छा" चन्द्रशेखर ने कहा।

माता बोलीं, "मुझे केवल एक पक्ष चाहिए। इतने समय में मैं सारी व्यवस्था कर लूंगी।"

चन्द्रशेखर चौंका, और उसकी वाणी खुलने लगी। उसने कहा, "इतनी शीघ्रता की क्या आवश्यकता है?"

"तुझे नहीं होगी, मुझे है।"

"क्यों?" चन्द्रशेखर ने अनावश्यक प्रश्न किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"कारण भी जानना चाहता है ? तो सुन, अब मैं तुझे मति-परिवर्तन का अवसर नहीं दूंगी।"

"और उसकी शिक्षा ?" चन्द्रशेखर ने क्षीण आपत्ति की, "तुम्हीं तो कह रही थीं कि अभी उसमें कुछ समय और लगेगा ?"

रत्नमाता ने कहा, "विवाह से उसकी शिक्षा में व्यवधान नहीं पड़ेगा। मैं स्वयं साथ रहकर उसकी शिक्षा पूरी करूँगी।"

"परन्तु......चन्द्रशेखर ने एक और क्षीण-सी, अव्यक्त आपत्ति की।

"व्यर्थ है," रत्नमाला ने अधिकार पूर्ण स्वर में कहा, "अब मैं तेरी कोई परन्तु नहीं सुनूंगी। शुभ कार्य शीघ्र ही होना चाहिए, और होगा।"

चन्द्रशेखर के भाग्य से इसी समय सोमेश्वरदेव ने कक्ष में प्रवेश किया, जिस के परिणामस्वरूप यह वार्तालाप यहीं समाप्त हो गया। रत्नमाला ने उठकर उनका स्वागत किया और निकट पड़ी हुई पीठिका पर आसन दिया। सोमेश्वर-देव उस पर बैठ गये परन्तु वह स्वयं प्रश्नसूचक दृष्टि से उनकी ओर देखती हुई खड़ी रही। दुर्गपाल का इस समय और इस प्रकार बिना पूर्व-सूचना के अन्तः-पुर में आना एक असामान्य घटना थी।

रत्नमाला के मूक प्रश्न का उत्तर देते हुए सोमेश्वरदेव ने कहा, "महोत्सव-नगर से धावक आया है।"

"इस समय ?" रत्नमाला ने कहा।

"हाँ, रात्रि भर यात्रा करके आया है।"

"सब कुशल तो है ?" रत्नमाला ने पूछा।

सोमेश्वरदेव का स्वर असाधारण रूप से गंभीर हो गया। उन्होंने कहा, "नहीं, कुशल नहीं है। कल आर्य महामात्य का......" वाक्य के शेष शब्द उनके कंठ में ही अटक कर रह गये।

रत्नमाला का मुख म्लान हो गया। उन्होंने बुझे-से स्वर में कहा, "आर्य महामात्य हमें अनाथ कर गये !" इससे अधिक वे भी कुछ नहीं कह सकीं। उनका कंठ अवरुद्ध हो गया और आंखों में आंसू छलक आये। महामात्य प्रभास को वे पितृ-तुल्य मानती थीं।

इस समाचार से सोमेश्वरदेव को भी कम आघात नहीं पहुँचा था। परन्तु पत्नी को अत्यधिक संतप्त देखकर उन्होंने उसे सान्त्वना देने के उद्देश्य से कहा, "उन्हें जाना तो था ही। पिछली बार जब मैं उनके दर्शन करने गया था तभी उनकी दशा बहुत अच्छी नहीं थी। स्पष्ट था कि वे अधिक समय तक हमारे मध्य में नहीं रहेंगे। परन्तु अमर होकर यहाँ कौन आता है ? हमें यह सोचकर संतोष करना चाहिए कि उन्होंने पूर्णायु होकर, और अपने सभी संकल्पों का सफलतापूर्वक निर्वाह करते हुए नश्वर शरीर का त्याग किया है। इतना दीर्घ तथा सफल जीवन और इतना संतुष्ट अन्त पुण्यात्मा महामानवों को ही प्राप्त होता है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रशेखर मौन बैठा यह शोकपूर्ण संवाद सुन रहा था। वह महामात्य का आदर करता था और इधर कुछ दिनों से उन्हें एक उच्च आदर्श का प्रतीक समझने लगा था। अतएव उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर आघात उसे भी लगा था। परन्तु उसके माता-पिता व्यक्तिगत क्षति की जिस वेदना से संतप्त थे उसका उसे आभास भी नहीं था। अतएव पिता का अन्तिम वाक्य सुनकर एक बार उसके मन में आया कि वह भी महामात्य के साथ अपनी अन्तिम भेंट का विवरण देकर बताये कि वे अपने अन्तिम समय में संतुष्ट नहीं थे। परन्तु वातावरण इतना गम्भीर था कि बात अधरों तक आकर भी अनकही ही रह गयी। शोक के उस गहन मौन को भंग करने का साहस उसे नहीं हुआ।

अन्त में उसे भंग किया रत्नमाला ने। आँचल से आंसू पोंछते हुए उन्होंने कहा, "आप महोत्सव नगर कब जाएँगे ?"

"अविलम्ब," सोमेश्वरदेव ने उत्तर दिया।

"मैं भी चलूं ?"

सोमेश्वरदेव ने कहा, "तुम न चलो तो अधिक अच्छा होगा।"

"और चन्द्रशेखर ?"

"मेरे साथ जाएगा। इसे युवराज ने स्मरण किया है।"

रत्नमालाने कहा, "तो मैं इसके लिए भोजन की व्यवस्था करा दूं ? आपके प्रस्थान में तनिक भी विलम्ब नहीं होगा। मैं स्वयं जाकर देखती हूँ।"

रत्नमाला के साथ ही सोमेश्वरदेव भी चन्द्रशेखर को अविलम्ब प्रस्थान के लिए तत्पर होने का निर्देश देकर कक्ष से बाहर चले गये। उन्हें प्रस्थान से पूर्व कई आवश्यक कार्य करने थे।

चन्द्रशेखर कलेवा समाप्त कर चुका था, और प्रस्थान से पूर्व एक आवश्यक कार्य उसे भी करना था। अतएव उसीके सम्बन्ध में सोचता हुआ वह भी माता के कक्ष से निकलकर शंकर को खोजने लगा। वह इस नयी स्थिति से प्रसन्न था, परन्तु प्रस्थान से पूर्व एक बार किन्नरी से मिलकर अपने आपको और आश्वस्त अवश्य कर लेना चाहता था।

परन्तु इसका अवसर वह लगभग अन्त तक नहीं खोज पाया। किन्नरी पाकशाला में व्यस्त थी जहाँ उसकी माता स्वयं उपस्थित थीं। भोजन के समय वह सामने अवश्य आयी परन्तु इससे चन्द्रशेखर का प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि भोजन वह अपने पिता के साथ कर रहा था।

अतएव भोजन के पश्चात् अपने कक्ष में आकर उसने शंकर को आदेश दिया कि जैसे भी सम्भव हो, परन्तु माता से छिपाकर, किन्नरी को बुला लाए।

शंकर यह आदेश पाकर खिल उठा और बोला, "अब जाकर मेरा चित्त प्रसन्न हुआ है।"

कठोर दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए चन्द्रशेखर ने कहा, "यह क्या प्रलाप कर रहा है रे ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"प्रलाप नहीं कर रहा हूँ," शंकर ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया; "कह रहा हूँ कि अब मेरा चित्त प्रसन्न है। अब माताजी से सुमेरगढ़ वाली बात नहीं कहूँगा।"

चन्द्रशेखर ने झुँझलाकर कहा, "तू जाएगा भी कि यहीं खड़ा-खड़ा बातें बनाता रहेगा? पिताजी प्रस्थान के लिए तत्पर मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, और तू है कि अपने चित्त की प्रसन्नता नहीं सँभाल पा रहा है। जीवन भर मूर्ख ही बना रहेगा क्या?"

"सो तो रहूँगा ही, नाम का प्रभाव है।" यह कहकर शंकर भागता हुआ कक्ष से बाहर चला गया।

इसके पश्चात् चन्द्रशेखर को अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। शंकर शीघ्र ही किन्नरी को साथ लेकर लौट आया। परन्तु वह इस बार स्वयं कक्ष के भीतर नहीं घुसा। द्वार पर से ही पुकार कर बोला, "मैं अब यात्रा की व्यवस्था देखने जा रहा हूँ। प्रस्थान के समय बुलाने आऊँगा।"

किन्नरी कक्ष के भीतर आकर चन्द्रशेखर के निकट खड़ी हो गयी थी। उसकी मुद्रा में इस समय खिन्नता अथवा कठोरता का कहीं लेश भी नहीं था। परन्तु वह मौन थी, जो उसकी स्थिति में सर्वथा स्वाभाविक था। मौन चन्द्रशेखर भी था। किन्नरी को एकान्त में अपने निकट पाकर वह भूल गया था कि उसे कुछ कहना भी है। अतएव कुछ क्षण तक दोनों मौन खड़े रहे। किन्नरी की दृष्टि धरती पर थी, चन्द्रशेखर की किन्नरी के मुख पर।

अन्त में किन्नरी ने मौन भंग किया। उसने कहा, "आपने मुझे स्मरण किया था?"

चन्द्रशेखर मानों इसी प्रश्न की राह देख रहा था। तुरन्त बोला, "हाँ किन्नरी, मैंने तुम्हारा स्मरण किया है। मैं गत रात्रि से तुम्हारा स्मरण कर रहा हूँ और लगता है अभी भविष्य में भी करता रहूँगा, यद्यपि स्मरण के फलस्वरूप तुम्हें सदा अपने निकट नहीं पाऊँगा।"

किन्नरी के कपोल रक्ताभ हो गये। उसके अधरों में हलका-सा विकास हुआ और वह बोली, "परन्तु इस समय क्यों स्मरण किया है?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं महोत्सव नगर जा रहा हूँ, किन्नरी। युवराज का संदेश आया है। जा रहा हूँ पिताजी के साथ, परन्तु उनके साथ लौट भी आऊँगा इसमें संदेह है। तुम मेरा तात्पर्य समझ रही हो न?"

किन्नरी मुस्करा उठी, "समझ लूंगी, आप बात तो कहिए।"

"बात यह है, किन्नरी, कि एक बार तुमसे मिले बिना मैं कालंजर से जाना नहीं चाहता था। मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ, किन्नरी।"

"तो पूछिये, मैं प्रस्तुत हूँ," किन्नरी ने कहा।

क्षणभर के मौन के पश्चात् चन्द्रशेखर ने पूछा, "तुम मुझसे रुष्ट हो?"

"नहीं तो," किन्नरी ने अत्यन्त सहज भाव से उत्तर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"तुम मुझसे रुष्ट नहीं हो ?" चन्द्रशेखर ने प्रसन्नता और अविश्वास के मिश्रित स्वर में कहा।

"नहीं, मैं इतनी कृतघ्न नहीं हूँ। इतनी मूर्ख भी नहीं हूँ।"

"परन्तु कल रात्रि में तो हो गयीं थीं ?"

किन्नरी ने कहा, "कल रात्रि में भी मैं आपसे रुष्ट नहीं हुई थी। केवल मन में जो कुछ था वह मुख से निकल गया था। उसे यदि आप रुष्ट होना कहते हैं तो यह मेरे प्रति अन्याय है।"

चन्द्रशेखर का मन हलका होता जा रहा था। उसने कहा, "तुमने माताजी से तो अभी कुछ नहीं कहा है ?"

"नहीं," किन्नरी ने कहा।

"तो आगे भी मत कहना, उनसे कुछ मत कहना। यह मेरी प्रार्थना है। यदि आवश्यक हुआ तो उचित समय पर मैं स्वयं उनसे सब कह दूंगा।"

किन्नरी क्षणभर मौन धरती की ओर देखती रही, फिर बिना दृष्टि ऊपर उठाये धीमे स्वर में बोली, "जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं एक बार भूल कर चुकी हूँ, अब फिर नहीं करूँगी। वह सब मुझे आपसे भी नहीं कहना चाहिए था, परन्तु न जाने कैसे मुख से निकल गया। वह मेरी मूर्खता थी। अब माताजी से कहकर उसकी पुनरावृत्ति नहीं करूँगी। अतएव मेरी प्रार्थना है कि इस सम्बन्ध में आप भी उनसे कुछ न कहें।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "तुम्हारी प्रार्थना है तो मैं भी कुछ नहीं कहूँगा। परन्तु इसका परिणाम जानती हो क्या होगा ? माताजी स्वभाव की हठी हैं। उन्होंने निश्चय कर लिया है तो मेरे साथ तुम्हारा विवाह करके ही मानेंगी। तब तुम क्या करोगी ?"

"कुछ नहीं करूँगी," किन्नरी ने उत्तर दिया।" मैं तो वैसे भी आपकी ही हूँ। देवता के चरणों में चढ़ाये जाने वाले सुमन को भी क्या कुछ करना होता है ?"

"हाँ, सर्मपित होना पड़ता है।"

"तो मैं भी समर्पित हो जाऊँगी," किन्नरी ने कहा।

मुग्ध भाव से उसकी ओर देखते हुए चन्द्रशेखर ने कहा, "तुम वास्तव में एक सुरभित सुमन हो किन्नरी। तुम्हें शीश पर रखकर कोई भी अपने को सौभाग्यशाली समझेगा। परन्तु······"

"परन्तु क्या ? रुक क्यों गये ?" किन्नरी ने पूछा।

"मैं यह कहना चाहता था, किन्नरी, कि मैं······कि मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे अपने सौभाग्य पर गर्व है। परन्तु······परन्तु तुम्हारा यह समपर्ण मैं अभी स्वीकार नहीं कर सकूंगा।"

"क्यों ? क्या मुझसे कोई अपराध हो गया है ?" किन्नरी ने म्लान स्वर में पूछा।

चन्द्रशेखर ने कहा, "नहीं, किन्नरी, तुमसे कोई अपराध नहीं हुआ है। अप-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राधी मैं हूँ। वास्तव में मैं अभी तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। कल रात्रि में तुमने जो आपत्ति की थी वह सर्वथा उचित थी। मैं वास्तव में तुम्हें अपना कवच बनाना चाहता था। परन्तु तुमने मुझे झकझोर कर जगा दिया है। अब मैं पहले तुम्हारे योग्य बनने का प्रयास करूँगा, मात्र तुम्हारे लिए तुम्हारी कामना करना सीखूंगा, तब तुमसे तुम्हारे प्रणय की याचना करूँगा। भाग्य से मुझे इसके लिए अवसर भी मिल गया है। आज जा रहा हूँ, लौटना न जाने कब हो। न जाने कितने दिन और तुमसे दूर रहना पड़े। परन्तु मुझे विश्वास है कि जैसा जा रहा हूँ, वैसा लौटकर नहीं आऊँगा। तुमसे केवल इतना अनुरोध और है कि मेरे लिए प्रार्थना करती रहना। उससे मेरे संकल्प को बल मिलेगा।"

"आप मेरी मूर्खता पर व्यंग्य कर रहे हैं?" किन्नरी ने कातर होकर कहा।

"नहीं किन्नरी, मैं व्यंग्य नहीं कर रहा हूँ। तुम्हारी शपथ खाकर कहता हूँ मैं व्यंग्य नहीं कर रहा हूँ। तुमसे केवल थोड़े समय की याचना कर रहा हूँ। मेरा विश्वास करो, किन्नरी।"

"और आपकी रक्षा?"

"मैं स्वयं करूँगा", चन्द्रशेखर ने कहा। "यही मेरी परीक्षा होगी। विश्वास करो किन्नरी, मुझमें इतनी सामर्थ्य है। और फिर तुम्हारे स्नेह और समर्पण का बल मेरे साथ होगा ही।"

इसी समय बाहर से शंकर का स्वर आया। वह कह रहा था, "पिताजी प्रतीक्षा कर रहे हैं, प्रस्थान के लिए विलम्ब हो रहा है।"

चन्द्रशेखर ने स्निग्ध दृष्टि से किन्नरी की ओर देखते हुए कहा, "इस अन्तर में तुम माता जी से तो कुछ नहीं कहोगी?"

बाहर से शंकर का स्वर फिर आया, "पिताजी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

चन्द्रशेखर ने फिर कहा, "बोलो, किन्नरी।"

किन्नरी ने सिर झुका लिया। बोली, "माताजी से इस सम्बन्ध में मैं कभी कुछ नहीं कहूँगी।"

तब चन्द्रशेखर ने शंकर को पुकार कर कहा, "तू बाहर खड़ा-खड़ा आकाश सिर पर क्यों उठा रहा है? चल, मैं आ रहा हूँ।"

—२२—

कालंजर से महोत्सवनगर आते हुए मार्ग में चन्द्रशेखर ने मन ही मन में अनेक बार अपना यह संकल्प दुहराया कि वह अब सुमेरगढ़ नहीं जाएगा और लक्ष्मी के जीवन और सम्मान की रक्षा दूर रहकर ही करेगा।

कालंजर के उन्मुक्त वातावरण में, लक्ष्मी के प्रभाव से दूर तथा किन्नरी के समीप रहकर, उसे इस निश्चय पर पहुँचने में तनिक भी कठिनाई नहीं हुई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी। परन्तु निश्चय पूर्णतया विवेकमूलक न होकर किसी सीमा तक पलायनोन्मुखी भी था। इस तथ्य को चन्द्रशेखर भी अस्वीकार नहीं कर सकता था। वह अपने स्वभाव की इस दुर्बलता से परिचित था और भली प्रकार जानता था कि लक्ष्मी के सामने लक्ष्मी के आग्रह को अधिक समय तक अस्वीकार करते रहना उसके लिए बहुत कठिन होगा। उसकी स्थिति एक मद्यप की सी थी जिसके समक्ष दासता अथवा पलायन के अतिरिक्त तीसरा मार्ग ही नहीं होता है। इसी कारण उसने लक्ष्मी से दूर रहने का निश्चय किया था, और उस निश्चय को बार-बार दुहराना वस्तुतः दृढ़ता का नहीं, दुर्बलता की अनुभूति का द्योतक था।

अतएव जब महोत्सवनगर पहुँचते ही उसे हवेली के अनुचरों से यह ज्ञात हुआ कि उसकी अनुपस्थिति में सुमेरगढ़ का द्वार-रक्षक दो बार उसकी खोज में आया था तब चन्द्रशेखर ने कहा तो कुछ नहीं परन्तु मुँह ऐसा बनाया मानों कोई अत्यधिक अरुचिकर औषधि पी रहा हो।

परन्तु इसके पश्चात् वह अपने पिता के साथ इतना अधिक व्यस्त हो गया कि उस दिन फिर यह विषय उसके मस्तिष्क में ही नहीं आया। सोमेश्वरदेव को औपचारिकता-प्रदर्शन के अतिरिक्त कई महत्वपूर्ण अधिकारियों से भेंट भी करनी थी। महामात्य प्रभास की मृत्यु एक राजनीतिक महत्व की घटना थी जिसके सम्भावित परिणामों से वे अनभिज्ञ नहीं रहना चाहते थे।

युवराज विद्याधर के साथ चन्द्रशेखर की भेंट आरम्भ में ही महामात्य के निवास-स्थान पर हो गयी। युवराज बाहरी कक्ष में स्वयं शोकमग्न बैठे हुए शोक एवं संवेदना प्रकट करने वालों को सान्त्वना दे रहे थे। सोमेश्वरदेव के शोक-प्रदर्शन को भी उन्होंने बड़े संयत भाव से स्वीकार किया। परन्तु जब सोमेश्वरदेव ने परिचय देकर चन्द्रशेखर को उनके समक्ष प्रस्तुत किया तब वे बहुत गम्भीर हो गये और उनकी आँखों में आँसू छलक आये। उन्होंने शोक से गीले स्वर में कहा, "चन्द्रशेखर के नाम और गुणों से मैं परिचित हूँ। स्वयं आचार्यपाद ने मुझसे इनका उल्लेख किया था। वे इनसे बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने इनके लिए एक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निर्धारित की थी। परन्तु उनके निधन से हमारी सारी योजनाएँ अस्त-व्यस्त हो गयीं हैं। सूत्रधार ही नहीं रहा तो अब उन्हें कार्यान्वित कौन करेगा?" यह कहकर युवराज मौन हो गये और विलम्ब तक इसी प्रकार बैठे कुछ सोचते रहे। अन्त में जब सोमेश्वरदेव ने आज्ञा मांगी तब उन्होंने, मानो सोते से जाग कर, फिर कहा, "हाँ इस समय अब और कोई बात नहीं हो सकेगी। चन्द्रशेखर को कल प्रातः मेरे पास अवश्य भेज देना। इन्हें मैंने एक विशेष प्रयोजन से बुलाया है।"

वहाँ से निकलकर पिता के साथ राजधानी के विभिन्न क्षेत्रों में घूमते हुए चन्द्रशेखर ने अनुभव किया कि महामात्य प्रभास की मृत्यु मात्र राजनीतिक घटना नहीं थी। उसका प्रभाव सभी क्षेत्रों में और सभी वर्गों पर पड़ा था। उनकी अन्त्येष्टि हो चुकी थी, परन्तु राजधानी अभी शोकमुक्त नहीं हुई थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रासाद से लेकर निर्धनतम वर्ग की झोपड़ियों तक सभी ओर शोक की स्तब्धता का साम्राज्य था। झोपड़ियों में अधिक अंधकार था क्योंकि सामान्य जनता महामात्य को अपना हितू और त्राता समझती थी। वह महाराज का जयकार करती थी, परन्तु अपने कष्ट लेकर महामात्य के पास जाती थी, और महामात्य भी जहाँ कहीं अन्याय-अत्याचार होता हुआ देखते थे, अथवा सुनते थे, वहाँ तुरन्त हस्तक्षेप करते थे।

—२३—

युवराज विद्याधर एक महत्वाकांक्षी, कुशल सेनानी थे तथा अपने क्रोध और हठ के लिए प्रसिद्ध थे। राजनीति में उनकी आस्था थी परन्तु विशेष रुचि नहीं थी, और युद्ध उनका व्यसन था। उनकी सबसे बड़ी इच्छा, उनकी महत्वाकांक्षा, महमूद से दो-दो हाथ करने की थी, और उनका सबसे बड़ा असंतोष यह था कि उन्हें इसका अवसर नहीं मिल रहा था। वे ओहन्द के युद्ध में चन्देल सेना के साथ स्वयं जाने को बहुत उत्सुक थे, परन्तु तब महामात्य ने उन्हें आगे के लिए आश्वासन देकर रोक लिया था; और अब उस आश्वासन को पूरा करने वाला ही संसार से चला गया था। इस कारण युवराज महामात्य के निधन से और भी अधिक दुखी थे। जब चन्द्रशेखर आज्ञानुसार प्रासाद में उनसे मिलने गया तब भी वे गत दिवस की भांति शोकमग्न बैठे थे। परन्तु चन्द्रशेखर को सामने देखकर उनमें थोड़ी चेतना आयी। वे क्षणभर स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखते रहे, फिर वार्तालाप का आरम्भ करते हुए बोले, "आचार्यपाद ने जब तुम्हारा उल्लेख किया था तभी मैंने निश्चय कर लिया था कि तुम्हें अपने साथ अभियान में अवश्य ले चलूँगा।"

"मैं प्रस्तुत हूँ, देव," चन्द्रशेखर ने तत्परतापूर्वक कहा।

युवराज ने उसाँस-सी भरकर कहा, "हाँ, तुम प्रस्तुत हो। मैं भी प्रस्तुत हूँ। परन्तु दो व्यक्ति क्या प्राण देकर भी आँधी को रोक सकते हैं?"

"आँधी को, देव?"

"हाँ, पश्चिम की आँधी को, महमूद की आँधी को जो शीघ्रतापूर्वक अन्तर्वेद की ओर बढ़ती चली आ रही है। आचार्यपाद ने उसीके संदर्भ में तुम्हारा उल्लेख किया था। इस सम्बन्ध में उनकी एक योजना थी जिससे किसी अंश में तुम भी परिचित होगे।"

"हाँ, देव," चन्द्रशेखर ने कहा, "आर्य महामात्य महमूद का अवरोध करने के लिए कई राज्यों की एक संयुक्त सेना संगठित करना चाहते थे······"

"जिसके सम्बन्ध में उन्होंने तुम्हें उद्भाण्ड तथा पश्चिमोत्तर क्षेत्र की अन्य राजधानियों को भेजा था।" युवराज ने वाक्य पूरा किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"हाँ, देव।"

युवराज ने कहा, "परन्तु उस यात्रा में तुम्हारी विफलता के पश्चात् उन्होंने संघ-सेना की योजना का परित्याग कर दिया था। अभी मैंने जिसे तुम्हारी विफलता कहा है वह वास्तव में तुम्हारी विफलता नहीं थी, क्योंकि तुमने अपनी ओर से यथासम्भव प्रयास किया। वह हमारे आदर्श की विफलता भी नहीं थी, क्योंकि उसमें हमारे शत्रु भी त्रुटि नहीं निकाल पाते हैं। वह वास्तव में हमारी जातीयता की विफलता थी। ओहन्द की पराजय हमारे शासक-बंधुओं की संकीर्णता और स्वार्थपरता का परिणाम थी। ये प्रवृत्तियाँ इतनी व्यापक और इतनी गहरी हो गयी हैं कि विना वहुत अधिक क्षति उठाये लोग सम्भवतः इनका परित्याग नहीं करेंगे। अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचकर आचार्यपाद ने एक दूसरी योजना बनायी थी जिसे कार्यान्वित करने के लिये वे अब हमारे मध्य में नहीं हैं। विधि की गति बड़ी विचित्र है। प्रस्थान हमें करना था, उन्हें केवल आज्ञा देनी थी। परन्तु हम जहाँ के तहाँ खड़े हैं, और वे प्रयाण करके स्वर्ग में जा बैठे हैं!"

यह कहकर युवराज मौन हो गये और कुछ काल तक आँखें भींचे न जाने क्या सोचते रहे। उनका यह मौन इतना गम्भीर था कि उनके उग्र स्वभाव की ख्याति से परिचित चन्द्रशेखर को उसे भंग करने का साहस नहीं हुआ और वह भी दृष्टि नीची किये मौन बैठा रहा।

कुछ समय पश्चात् युवराज ने फिर आँखें खोलीं और सहसा प्रश्न किया, "क्या महमूद वास्तव में अजेय है?"

"कदापि नहीं," चन्द्रशेखर ने कहा।

"फिर वह कभी पराजित क्यों नहीं होता है?"

"महमूद एक कुशल सेनानी है, देव, और उसकी सेना संतुष्ट तथा अनुशासित है। परन्तु वह अजेय नहीं है। उसे अभी तक समान क्षमता वाला प्रतिद्वंद्वी नहीं मिला है।"

"मेरी बड़ी इच्छा थी," युवराज ने कहा, "मैं बहुत दिनों से चाह रहा था कि महमूद का रण-कौशल अपनी आँखों से देखूं, और अपना उसे दिखाऊँ। इसी कारण आचार्यपाद की नयी योजना से मैं बहुत प्रसन्न था।"

"नयी योजना क्या थी, देव?" चन्द्रशेखर ने धीमे स्वर में पूछा।

युवराज चौंक पड़े। बोले, "क्या मैंने यह अभी नहीं बताया? विचित्र बात है! हाँ, तो उनकी नयी नीति यह थी कि अब हम अपनी, मात्र अपनी शक्ति से महमूद का अवरोध करेंगे। संघ-योजना के मूल में ही उसकी विफलता का कारण निहित था। विभिन्न राज्यों की सेनाओं में भावात्मक एकता नहीं स्थापित हो पाती थी, वे संयुक्त होकर भी विभाजित ही रहती थीं और इस कारण युद्ध में पराजित होती थीं। अतएव आचार्यपाद ने यह निर्णय किया था कि अब चंदेल सेना अकेली पंचनद-क्षेत्र में जाकर महमूद का मान-मर्दन करेगी।"

चन्द्रशेखर ने उत्साहपूर्वक कहा, "यह योजना सफल होगी, देव। मैं विश्वास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साथ कह सकता हूँ कि यह योजना अवश्य सफल होगी।"

"यह योजना अवश्य सफल होती," युवराज ने कहा, "इसमें मुझे भी संदेह नहीं है। परन्तु अब इसे कार्यान्वित कौन करेगा ? आचार्यपाद की पहली योजना को हमारी संकीर्णताओं ने विफल किया, और दूसरी को काल असम्भव बना गया है। मुझे उनकी मृत्यु का उतना दुःख नहीं है, वह तो होनी ही थी। आज न हुई होती तो कल अवश्य होती। अधिक दुःख इस बात का है कि जिस कार्य को वे अधूरा छोड़ गये हैं वह अब पूरा नहीं हो सकेगा।

"हम उनकी योजना को कार्यान्वित करेंगे," चन्द्रशेखर ने कहा। "यह दिवंगत आत्मा के प्रति हमारा कर्तव्य है जिसका पालन हम प्राण देकर भी करेंगे। आर्य महामात्य स्वर्ग से हमारा मार्ग-निर्देशन करेंगे।"

युवराज ने सर्वस्व का दाँव हारे हुए द्यूती के स्वर में कहा, "हम प्राण दे सकते हैं परन्तु योजना को कार्यान्वित नहीं कर सकेंगे। आगे कभी सम्भव है कर भी लें, परन्तु इस समय बहुत कठिन है क्योंकि समय निकला चला जा रहा है। तुम्हें इस समय की स्थिति का पूर्ण ज्ञान नहीं है, इस कारण तुम उसकी गम्भीरता का अनुमान नहीं लगा पा रहे होगे। हमें इस समय प्रस्थान की स्थिति में होना चाहिए था, परन्तु हम नहीं हैं। हमें लगभग एक मास पूर्व सूचना मिली थी कि महमूद स्थानेश्वर के विरुद्ध अभियान के लिए तत्पर हो रहा है। हमने भी उसी समय से अपना कार्य आरम्भ कर दिया था। योजना यह थी कि मैं समुचित सेना साथ लेकर स्थानेश्वर जाऊँगा और महमूद की शक्ति-परीक्षा करूँगा। परन्तु विधि की विडम्बना कुछ ऐसी है कि मैं तत्पर हूँ और मेरी सेना भी तत्पर है फिर भी अब हम अपनी योजना को कार्यान्वित करने की स्थिति में नहीं हैं। गत सप्ताह स्थानेश्वर से दूत आया था। हमने उसे सहायता का वचन दे दिया था और अपने साथ ले चलने के लिए रोक रखा था। कल उसे भी खेदपूर्वक विदा कर दिया गया है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "यदि देव आदेश दें तो मैं थोड़ी सेना साथ लेकर स्थानेश्वर चला जाऊँ।"

"नहीं" युवराज ने उत्तर दिया, "उससे प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। थोड़ी सेना भेजी जा सकती है,, तुम्हें भी भेजा जा सकता है। परन्तु परिणाम वही होगा जैसा अभी तक होता रहा है। महमूद को परास्त करने के लिए पर्याप्त सेना लेकर चलना आवश्यक है। परन्तु इस समय ऐसा करना विपत्ति को निमंत्रण देना होगा।"

"अर्थात् इस समय कुछ भी करना सम्भव नहीं है ?"

युवराज ने कहा, "इस समय केवल प्रतीक्षा करना सम्भव है, जो मुझे प्रिय नहीं है। परन्तु प्रिय हो या अप्रिय, हमारे सम्मुख और कोई विकल्प नहीं है। देश में ही हमारे शत्रुओं की कमी नहीं है। वे चारों ओर घात लगाये बैठे हैं और आचार्यपाद की मृत्यु से उत्पन्न स्थिति का लाभ उठाने को लालायित होंगे। ऐसी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दशा में यदि हम अपनी सेना सुदूर पश्चिमोत्तर भेज दें तो हमारे ऊपर तुरन्त आक्रमण होगा। और कोई चाहे न भी करे, परन्तु गत वर्ष की पराजय से क्षुब्ध और प्रतिशोध के भूखे चेदिराज अवसर नहीं चूकेंगे।"

"देव का कथन सर्वथा उचित है," चन्द्रशेखर ने स्वीकार किया।

युवराज ने फिर कहा, "इसके अतिरिक्त, किसी भी सुदीर्घ अभियान के लिए जो राजनीतिक समर्थन आवश्यक होता है वह अब सम्भवतः हमें कभी नहीं प्राप्त हो सकेगा। अतएव हमारे सम्मुख अब प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह विवशता का निर्णय है। प्रतीक्षा करना मेरे स्वभाव के प्रतिकूल है। तथापि हमें प्रतीक्षा करनी होगी, अपने घर में बैठकर प्रतीक्षा करनी होगी कि महमूद इस ओर आये तो हम उसे युद्ध के लिए ललकारें।"

"हमारी प्रतीक्षा विफल नहीं होगी, देव", चन्द्रशेखर ने कहा। "महमूद इस ओर अवश्य आएगा। उसकी दृष्टि अन्तर्वेद पर है और आनन्दपाल के पश्चात् अब कोई उसके मार्ग में अवरोध करने वाला रह नहीं गया है।"

"महमूद इधर आएगा और हमें शक्ति-परीक्षा का अवसर मिलेगा, इसमें मुझे भी संदेह नहीं है। परन्तु तब तक निष्क्रिय बैठकर उसकी प्रतीक्षा करना मुझे नहीं रुच रहा है। इस समय मैंने तुम्हें विशेष रूप से इसी कारण बुलाया है। मैं हाथ पर हाथ रखकर केवल प्रतीक्षा नहीं करूँगा। उसके साथ कुछ और भी होता रहना चाहिए।"

"देव का कथन सर्वथा उचित है। हमें वर्तमान का उपयोग भविष्य के लिए योजना बनाने में करना चाहिए।"

"यही मेरा उद्देश्य है" युवराज ने कहा। "हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि महमूद एक बार इस ओर आकर फिर दूसरी बार आने योग्य न रह जाए। इस उद्देश्य से मैं तुम्हें एक बार फिर यात्रा पर भेजना चाहता हूँ। मुझे ज्ञात है कि दीर्घ यात्रा के पश्चात् तुम अभी लौटकर आये हो। परन्तु क्षेत्र तथा उसकी राजनीति से भली प्रकार परिचित होने के कारण वर्तमान उत्तरदायित्व के लिए तुम्हीं सबसे उपयुक्त व्यक्ति हो।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "सेवक प्रत्येक आदेश का पालन करने को प्रस्तुत है।"

"मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी, और यह विश्वास भी है कि तुम सफलतापूर्वक उत्तरदायित्व का निर्वाह कर लोगे।"

"मुझे करना क्या होगा?" चन्द्रशेखर ने कहा।

"तुम्हें स्थानेश्वर, नगर कोट तथा उद्भाण्ड की यात्रा करनी होगी। परन्तु इस बार तुम चन्देल राज्य के दूत बनकर नहीं, अपितु गुप्त रूप से और अकेले यात्रा करोगे, और तुम्हारा उद्देश्य होगा इन तीनों राज्यों में अपने सूत्र स्थापित करना तथा यह अन्वेषण करना कि समय आने पर उनसे कितनी सहायता मिल सकेगी।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"देव किस प्रकार की सहायता की अपेक्षा करते हैं ?"

"सैनिक सहयोग की", युवराज ने कहा। "हम चाहते हैं कि महमूद को निर्विरोध अन्तर्वेद तक चला आने दिया जाए। यहाँ हम अकेले उसका सामना करेंगे। परन्तु इस बीच हमारे सहायक तुरुष्कों की संभरण-व्यवस्था भंग कर दें। जब महमूद लौटेगा तब हम उसका पीछा करेंगे। उस समय यदि इन तीनों राज्यों की संयुक्त सेना उसके मार्ग में खड़ी हो जाए तो तुरुष्कों की शक्ति को सरलतापूर्वक और सदा के लिए नष्ट किया जा सकेगा।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "स्थानेश्वर के सम्बन्ध में अभी निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है, परंतु नगरकोट के राजपूतों को हमारे प्रस्ताव का स्वागत करना चाहिए। उद्भाण्ड में कठिनाई होगी परन्तु वहाँ भी युवराज त्रिलोचनपाल हमारे पक्ष में होंगे और प्रत्येक प्रकार से सहयोग करेंगे।"

"तुम्हें सफलता की आशा है ?" युवराज ने पूछा।

"मुझे विश्वास है, देव।"

"कब प्रस्थान कर सकते हो ?"

"कल ही कर दूँगा।"

युवराज ने कहा, "कल करो अथवा दस-पाँच दिन विश्राम करने के पश्चात् करो, उससे विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। पहले कहाँ जाओगे ?"

"स्थानेश्वर।"

"सम्भव है महमूद तुमसे पहले वहाँ पहुँच चुका हो।"

"तो मेरा कार्य सरल हो जाएगा।"

"हमारा कार्य और सरल हो सकता है," युवराज ने कहा, "यदि महमूद स्वयं इस ओर आने का विचार त्याग दे। मैं इस आशय का संदेश उसके पास भेजने का विचार कर रहा हूँ। वह सम्भवतः मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं करेगा, तथापि उसे समुचित चेतावनी दे देना आवश्यक है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "चेतावनी दे देने में कोई हानि नहीं है, यद्यपि लाभ की आशा मुझे भी नहीं है। यदि देव आदेश दें तो मैं स्वयं यह सन्देश लेकर गजनी जा सकता हूँ।"

"तुम्हारा अपना कार्य अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण है, अतएव तुम उसी ओर अधिक ध्यान दो। महमूद के पास मैं यहाँ से विशेष दूत भेजूंगा।" यह कहते हुए युवराज अपने आसन से उठकर खड़े हो गये।

—२४—

चन्द्रशेखर जब प्रासाद से लौटकर अपनी हवेली में पहुँचा तब मध्याह्न हो चुका था। उसके पिता भोजन करके कहीं चले गये थे, परन्तु शंकर द्वार पर बैठा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतीक्षा कर रहा था। जब तक चन्द्रशेखर ने भोजन किया तब तक वह निकट ही इधर-उधर डोलता रहा। भोजन करने के पश्चात् जब चन्द्रशेखर विश्राम करने के उद्देश्य से अपने कक्ष में गया तो वह भी छाया की भाँति पीछे-पीछे जाकर द्वार के निकट खड़ा हो गया। उसे इस प्रकार मौन खड़ा देखकर चन्द्रशेखर को कुछ शंका हुई। उसने पूछा, "क्या हुआ है रे ?"

शंकर मौन किन्तु अस्थिर खड़ा रहा।

चन्द्रशेखर ने फिर कहा, "तू क्या आज उपवास करेगा ?"

"नहीं तो", शंकर ने चौंककर उत्तर दिया।

"तो फिर भोजन करने क्यों नहीं जाता है ? यहाँ खड़ा-खड़ा क्या कर रहा है ? कुछ कहना चाहता है ?"

शंकर ने अपने शरीर का भार दाहिने पैर से हटाकर बाँयें पर डाला, एक बार दृष्टि उठाकर चन्द्रशेखर की ओर देखा और फिर धीमे स्वर में कहा, "वहाँ से फिर अनुचर आया था।"

"कहाँ से ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"सुमेरगढ़ से", शंकर ने कहा और ऐसी विरुचिसूचक मुद्रा बनायी मानों भोजन करते हुए दाँतों के नीचे कंकड़ आ गया हो।

अपने अभिभावक-अनुचर की यह मुद्रा देखकर चन्द्रशेखर को हँसी आ गयी। उसने पूछा, "कब आया था ?"

"तुम्हारे जाने के कुछ समय पश्चात्।"

"क्यों आया था ?"

"तुम्हें पूछ रहा था।"

"फिर ? तूने क्या कहा ?"

"कह दिया कि तुम युवराज की सेवा में गये हो और लौटने का कुछ निश्चय नहीं है। और क्या कहता ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "तूने ठीक किया। और देख, यदि वहाँ से फिर कोई आए तो कह देना कि मैं बहुत व्यस्त हूँ, अवकाश मिलेगा तब स्वयं आ जाऊँगा।"

"तुम वहाँ फिर जाओगे ?" शंकर ने पूछा।

"अवकाश मिलेगा तब जाऊँगा", चन्द्रशेखर ने चिढ़ाया।

शंकर तन गया और स्वामी के मुख पर दृष्टि गड़ाकर बोला, "अब मैं तुम्हें वहाँ नहीं जाने दूँगा।"

"तू मुझे रोक लेगा ?" चन्द्रशेखर को आनन्द आ रहा था।

"हाँ, रोक लूँगा। मैं छाया की भाँति तुम्हारे पीछे लग जाऊँगा। देखूँगा कैसे जाते हो।"

चन्द्रशेखर ने फिर चिढ़ाया, "मैं भी देखूँगा तू मुझे कैसे रोकता है। तुझे पिताजी की सेवा में लगा दूँगा और मैं चुपचाप निकल जाऊँगा। तब तू क्या करेगा ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"तब मैं," शंकर ने सिर खुजलाते हुए कहा, "तब मैं……तब मैं…… सीधा कालंजर जाकर माताजी से कह दूंगा।"

चन्द्रशेखर ने हँसकर कहा, "अरे मूर्ख, यदि वहाँ जाना होता तो क्या मैं इस समय यहाँ बैठा होता ?"

"फिर क्या करते ?"

"प्रासाद से निकलकर सीधा सुमेरगढ़ चला जाता और वहीं भोजन करता, तेरी मूर्खता की बातें सुनने के लिए यहाँ कभी नहीं आता। परन्तु मुझे वहाँ नहीं जाना है। अब तू निश्चिन्त होकर भोजन करने जा सकता है।"

परन्तु शंकर अपने स्थान से हिला भी नहीं। वह अभी पूर्ण रूप से आश्वस्त नहीं हुआ था। बोला, "यदि जाना नहीं है तो यह क्यों कहला रहे हो कि अवकाश मिलेगा तव स्वयं आ जाऊँगा ?"

चन्द्रशेखर ते कहा, "तू जीवन भर मूर्ख ही बना रहेगा। जो बार-बार बुलाये क्या उससे स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहिए कि मैं तुम्हारे यहाँ कभी नहीं आऊँगा ? सभ्य समाज में इसे अभद्रता कहा जाता है। भद्रजन कभी स्पष्ट अस्वीकृति की भाषा नहीं बोलते हैं।"

शंकर ने कहा, "तो क्या भद्रजन कहते कुछ हैं और करते कुछ और हैं ? क्या सभ्यता का अर्थ असत्य-भाषण होता है ?"

भद्र समाज के आचरण की एक सरल हृदय द्वारा की गयी इस आलोचना का उत्तर देना चन्द्रशेखर को बड़ा कठिन लगा। उसके भाग्य, अथवा दुर्भाग्य से उसी समय हवेली का द्वार-रक्षक वहाँ आ उपस्थित हुआ जिसके परिणामस्वरूप चन्द्रशेखर के लिए शंकर की बात का उत्तर देना आवश्यक नहीं रह गया। परन्तु द्वार-रक्षक ने उस छोटी-सी कठिनाई के स्थान पर एक बहुत बड़ी कठिनाई उपस्थित कर दी। उसने प्रवेश करते ही घोषणा की कि सुमेरगढ़ की रानी जी का रथ द्वार पर खड़ा है और रानीजी कुंवरजी से भेंट करना चाहती हैं।

चन्द्रशेखर की दृष्टि अपने आप शंकर की ओर उठ गयी। शंकर उसकी ही ओर देख रहा था और उसकी सम्पूर्ण मुद्रा एक विशाल प्रश्न-चिह्न बनी पूछ रही थी, "अब ?"

चन्द्रशेखर ने द्वार-रक्षक से कहा, "जाकर कह दे कि कुँवरजी अभी प्रासाद से नहीं लौटे हैं। कह लेगा कि शंकर को भेजूं ?"

परन्तु तभी द्वार के बाहर से लक्ष्मी का अधिकारपूर्ण स्वर सुनाई पड़ा। वह किसी से कह रही थी, "तुझसे केवल इतना पूछा गया है कि कुंवरजी का कक्ष कौन-सा है। सो रहे होंगे तो मैं जगा लूंगी। मेरा कार्य बहुत आवश्यक है।"

और क्षणभर पश्चात् उस स्वर की स्वामिनी ने बिना किसी औपचारिकता के चन्द्रशेखर के कक्ष में प्रवेश किया। उसके पीछे एक दासी थी।

चन्द्रशेखर किंकर्तव्य-विमूढ़-सा उठकर खड़ा हो गया और उसकी दृष्टि एक बार फिर अपने वृद्ध अनुचर की ओर उठ गयी। शंकर के मुख पर कहीं आश्चर्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का भाव नहीं था, मानों वह कह रहा हो, "मैं जानता था।"

उधर लक्ष्मी ने एक संक्षिप्त दृष्टि चारों ओर डालकर अपनी दासी से कहा, "अब तू जा। रथ में बैठकर मेरी प्रतीक्षा कर।"

दासी चली गयी।

तब लक्ष्मी शंकर की ओर घूमकर बोली, "तुम लोग भी बाहर चले जाओ। मुझे तुम्हारे स्वामी के साथ आवश्यक परामर्श करना है।"

उसके स्वर में आदेश की ऐसी झंकार थी कि द्वार-रक्षक तो तुरन्त बाहर चला गया। परन्तु शंकर किसी दूसरी धातु का बना था वह अपने स्थान से नहीं हिला। वहीं खड़ा-खड़ा अपने स्वामी की ओर देखता रहा। अवज्ञा उसकी आँखों से झाँक रही थी।

परन्तु चन्द्रशेखर ने उसकी अवज्ञा को मुखर नहीं होने दिया। उसका मस्तिष्क अब तीव्र गति से कार्य करने लगा था और अनुभव कर रहा था कि यदि शंकर को रोका न गया तो वह कुछ कहकर स्थिति को और बिगाड़ देगा। अतएव वह शीघ्रतापूर्वक चलकर अपने अनुचर के निकट गया और उसे बलपूर्वक द्वार की ओर ठेलता हुआ बोला, "जा, अब इस समय कुछ नहीं। तेरी बात फिर सुनूंगा। जा, रानीजी के सत्कार की व्यवस्था कर।"

आहत दृष्टि से चन्द्रशेखर की ओर देखता हुआ शंकर बाहर चला गया, परन्तु वह बहुत क्षुब्ध था और अपने क्षोभ को छिपाने का तनिक भी प्रयास नहीं कर रहा था।

शंकर के जाने के पश्चात् चन्द्रशेखर ने लक्ष्मी की ओर देखा। वह बहुत गम्भीर थी। चन्द्रशेखर ने निकट पड़ी हुई पीठिका की ओर संकेत करके कहा, "रानीजी आसन ग्रहण करें।"

"मैं आसन ग्रहण करने नहीं आयी हूँ," लक्ष्मी ने द्वार की ओर देखते हुए कहा, "वह मेरे भाग्य में नहीं है। इस समय केवल तुमसे दो-दो बातें करने आयी हूँ, सो करलूं फिर चली जाऊँगी। परन्तु तुम्हारे इस अनुचर ने मुझे बहुत क्षुब्ध कर दिया है। बड़ा धृष्ट प्रतीत होता है। सुमेरगढ़ में होता तो…"

"इस समय जीवित न होता। मैं जानता हूँ। उसके स्थान पर और कोई होता तो मैं भी जीवित नहीं छोड़ता। परन्तु शंकर मात्र अनुचर नहीं है, वह मेरा अभिभावक भी है।"

"और मैं?" लक्ष्मी ने विषाद और आवेश के मिश्रित स्वर में कहा, "मैं क्या तुम्हारी कोई नहीं हूँ? मेरे साथ क्या तुम वैसा व्यवहार भी नहीं कर सकते जैसा इसके साथ करते हो?"

"यह तुम्हारा अन्याय है, लक्ष्मी," चन्द्रशेखर ने क्षीण विरोध किया।

"मेरा अन्याय है? मैं तुम्हारे साथ अन्याय कर रही हूँ? तो मुझे अन्याय की यह नयी परिभाषा भी सिखा दो। मैं स्वीकार कर लूंगी। भाग्य में जो कुछ लिखा है उसे स्वीकार करना ही होगा। परन्तु यह कभी स्वीकार नहीं करूँगी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि तुम जो मेरे साथ कर रहे हो वह न्याय है।"

"परन्तु मैं तुम्हारे साथ अन्याय क्यों करूँगा ?"

"यह तो तुम्हीं जानो। परन्तु कर रहे हो, यह मैं जानती हूँ। और क्यों कर रहे हो, यह जानना चाहती हूँ। यही जानने के लिए सुमेरगढ़ से चलकर यहाँ आयी हूँ, और बिना जाने लौटकर नहीं जाऊँगी।"

"परन्तु मैंने······"

"मैं जानती हूँ," लक्ष्मी ने टोककर कहा, "मैं जानती हूँ तुम क्या कहने जा रहे हो। यही न कि तुमने कोई अन्याय नहीं किया है ? परन्तु मैं तुम्हें इस असत्य को शब्द नहीं देने दूँगी। तुमने मेरे साथ अन्याय किया है, मेरी भावना के साथ अन्याय किया है, अपने अतीत के साथ अन्याय किया है, और अपने मित्र के साथ भी अन्याय किया है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "स्पष्ट बात कहो। मुझे पहेली बूझने का अभ्यास नहीं है।" वास्तव में वह अपने आपको निरुत्तर पा रहा था, और क्या कहे यह सोचने के लिए समय चाहता था।

लक्ष्मी का स्वर तीखा हो गया। वह बोली, "मैं भी पहेली बुझाने के लिए नहीं आयी हूँ। और यह सोचकर भी नहीं आयी थी कि तुम्हें इतना बदला हुआ पाऊँगी। क्या तुम वास्तव में बदल गये हो ? क्या तुम्हारे हृदय में अब मेरे लिए तनिक भी कोमल भावना नहीं रह गयी है ? क्या तुमने जो सौगंधें खायी थीं वे सब झूठी थीं ? क्या तुम्हारा प्रेम समुद्र का ज्वार मात्र था ? मुझे अब भी विश्वास नहीं हो रहा है।"

"नहीं लक्ष्मी, ऐसा नहीं है," चन्द्रशेखर ने कहा। वह अनुभव कर रहा था कि लक्ष्मी उसे बहाये लिए जा रही है और वह बहा चला जा रहा है। परन्तु यह अनुभव करने के पश्चात भी वह विवश बहा चला जा रहा था।

लक्ष्मी ने कहा, "यदि ऐसा नहीं है तो फिर तुमने मुझे त्याग क्यों दिया है ? भाग्य से तुम्हें फिर पाकर मैंने सोचा था कि अब अपने जीवन की रिक्तता को भर लूँगी, तुम्हें दोनों बाँहों में समेटकर, हृदय से लगाकर रखूंगी और फिर कभी विलग नहीं होने दूंगी। परन्तु जो निकट ही न हो उसे कैसे बाँधा जा सकता है ? तुम मुझ से दूर भाग रहे हो। क्यों ? मैं पूछती हूँ, क्यों ? क्या मैं इतनी अवांछ-नीय हो गयी हूँ ? बोलो।"

"ऐसा नहीं है, लक्ष्मी," चन्द्रशेखर का पुरुष बोल उठा।

"यदि ऐसा नहीं है तो तुम सुमेरगढ़ क्यों नहीं आये ? प्रतीक्षा करते-करते मेरी आँखें पथरा गयीं, परन्तु तुम सुमेरगढ़ तक नहीं आ सके और आज मुझे स्वयं चलकर तुम्हारे पास आना पड़ा। क्या यह मेरे साथ न्याय है ?"

"मैं कालंजर चला गया था, लक्ष्मी," चन्द्रशेखर ने कहा।

"जानती हूँ," लक्ष्मी बोली, "और यह भी जानती हूँ कि तुम कालंजर क्यों गये थे। तुम मेरे निकट नहीं रहना चाहते हो इसलिए गये थे, मुझसे दूर रहना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहते हो इस कारण गये थे। कह सकते हो ऐसा नहीं है ? कह सकते हो तो कहो, मेरी ओर देखकर कहो, मेरी शपथ खाकर कहो ।''

चन्द्रशेखर धरती की ओर देखता मौन खड़ा रहा।

लक्ष्मी कहती गयी, ''मैं जानती हूँ, तुम नहीं कह सकोगे । तुम्हें मेरी तनिक भी चिन्ता नहीं है। तुम यह भी भली प्रकार जानते हो कि मैं तूम्हारी हूँ और सदा तुम्हारी रहूँगी। सम्भवतः इसी कारण तुम्हें मेरी चिन्ता नहीं है । परन्तु मैं भी तुम्हें पहचानती हूँ। तुम अपनी लक्ष्मी की उपेक्षा कर सकते हो, उसके साथ अन्याय कर सकते हो, परतु उसकी सौगंध खाकर असत्य नहीं कहोगे।''

चन्द्रशेखर के भीतर कुछ शीघ्रता से द्रवित होता चला जा रहा था, उसके निश्चय धुंधले पड़ते जा रहे थे । उसने कहा, ''लक्ष्मी !''

''हाँ, तुम प्रयास भले कर लो परन्तु अपनी लक्ष्मी को छोड़ नहीं सकोगे क्योंकि वह तुम्हारी है, केवल तुम्हारी है, और सदा तुम्हारी ही रहेगी। यह विश्वास न होता तो मैं इस समय तुम्हारे पास नहीं आती। मेरा भी कुछ आत्म-सम्मान है, मैं भी मान कर सकती थी। परन्तु प्रेम आत्म-सम्मान से बड़ा होता है। उसे बड़ा होना ही चाहिए। उसे प्रत्येक वस्तु से बड़ा, प्रत्येक भावना से ऊपर होना चाहिए। यह सोच कर मैं तुम्हारे पास आयी हूँ और अब यदि तुम चाहो भी, तो अपना अधिकार प्राप्त किये बिना लौटकर नहीं जाऊँगी। मैं तुमसे दया की भीख नहीं माँग रही हूँ, और न यहाँ आकर, तुमसे यह सब कहकर, तुम्हारे ऊपर ही दया कर रही हूँ। मैं अपना अधिकार माँग रही हूँ। जो मेरा है वह मुझे मिलना चाहिए। वह मैं लेकर रहूँगी। और तुम भी जो कुछ तुम्हारा है उसके प्रति उदासीन नहीं रह सकोगे। मैं नहीं रहने दूंगी। यह मेरा निश्चय है। तुम्हें कोई आपत्ति है ?''

चन्द्रशेखर ने कहा, ''नहीं लक्ष्मी, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु मेरी कुछ विवशताएँ हैं जिनसे तुम भी परिचित हो।''

''मैं तुम्हारी एक कठिनाई से परिचित हूँ'', लक्ष्मी ने कहा, ''परन्तु उसे विवशता नहीं मानती हूँ। और भी कोई कठिनाई है ?''

चन्द्रशेखर ने कहा, ''नहीं, और कोई नहीं है, परन्तु वह एक अनेक के बराबर है। वह कठिनाई नहीं, विवशता है। मैंने विजयसिंह को क्षत्रिय का वचन दिया है, मैं उससे बँधा हूँ।''

''मैं उसे विवशता नहीं मानती हूँ। मेरी दृष्टि में तुम्हारे उस वचन का कोई मूल्य नहीं है, तुम उससे बँधे नहीं हो।''

''क्यों ?''

''इस कारण,'' लक्ष्मी ने कहा, ''कि तुम उनसे मिलने के पूर्व मुझे भी एक वचन दे चुके थे। यदि दोनों में विरोध है तो पहले दिया गया वचन मान्य होना चाहिए, दूसरे का कोई मूल्य नहीं है।''

चन्द्रशेखर ने कुछ उत्तर नहीं दिया। लक्ष्मी की कामना, लक्ष्मी के प्रति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके हृदय की दुर्बलता, उसके भीतर ज्वार बनती चली जा रही थी और उसका विवेक इस ज्वार में डूबता चला जा रहा था। इस मनःस्थिति में लक्ष्मी का उपर्युक्त तर्क उसे अकाट्य प्रतीत हो रहा था।

लक्ष्मी ने फिर कहा, "मौन क्यों हो ? क्या क्षत्रिय का वचन प्रणय की सौगंधों से भी बड़ा होता है ? क्या निष्प्राण, सूक्ष्म वचन तुम्हारे लिए सब कुछ है और सजीव, शरीर मैं कुछ नहीं हूँ ?"

"नहीं लक्ष्मी, ऐसा नहीं है।"

"यदि ऐसा नहीं है," लक्ष्मी ने कहा, "तो फिर तुमने सुमेरगढ़ आना क्यों छोड़ दिया है ?"

"तुमने ही तो कहा था," चद्रशेखर ने धीमे स्वर में उत्तर दिया।

"मैंने ? मैंने तुमसे कहा था कि तुम सुमेरगढ़ न आओ ?"

"हाँ, लक्ष्मी। तुमने कहा था कि कुछ निर्णय कर लेना तभी सुमेरगढ़ आना।"

"कहा था," लक्ष्मी ने उत्तर दिया, "यह मैंने अवश्य कहा था। परन्तु क्यों कहा था ? मैं जानती हूँ तुमने यह नहीं सोचा होगा। और उसके पश्चात् ही क्या मैंने यह भी नहीं कहा था कि मैं अधिक समय तक प्रतीक्षा नहीं कर सकूंगी? नहीं कहा था ?"

"कहा था," चन्द्रशेखर ने स्वीकार किया।

"तो यह समझ लो कि प्रतीक्षा अब मेरे लिए असह्य हो गयी है। तुम यदि अभी तक निर्णय नहीं कर पाये हो तो कभी नहीं कर पाओगे, और मैं अब प्रतीक्षा नहीं कर पा रही हूँ। अतएव मैंने निश्चय किया है किअब तुम्हारी ओर से निर्णय भी मैं ही करूँगी। और मैंने निर्णय कर लिया है।"

"तुमने मेरी ओर से क्या निर्णय किया है ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"मैंने निर्णय किया है कि प्रस्तुत संदर्भ में तुम्हें अपने हृदय का अनुसरण करना चाहिए और तुम्हें ऐसा ही करना होगा। मैं तुम्हे अन्यथा नहीं करने दूंगी सुन रहे हो ? मैं तुम्हे अन्यथा नहीं करने दूंगी। यह मेरा दृढ़ निश्चय है। और यदि फिर भी अन्यथा ही हुआ हो उसे देखने के लिए मैं जीवित नहीं बैठी रहूँगी। अब यदि तुम्हे वचन मुझसे भी प्रिय है तो..."

"नहीं," चन्द्रशेखर के भीतर बैठा कोई सहसा बोल उठा।

"सत्य कह रहे हो ?" स्वर की उत्तेजना के साथ लक्ष्मी की मुद्रा का तनाव भी कम होने लगा था।

"हाँ, लक्ष्मी, मैं सत्य कह रहा हूँ। तुमसे अधिक मुझे कुछ भी प्रिय नहीं है। अब तुमने जो निर्णय किया है वही होगा।"

लक्ष्मी की दृष्टि स्निग्ध हो आयी। वह निकट पड़ी हुई पीठिका पर बैठ गयी, मानों इस प्रकार विग्रह के अन्त की घोषणा कर रही हो और स्वर में शत-शत मनुहारों की मधुरिमा घोलती हुई बोली, "सुमेरगढ़ आओगे ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"हाँ, आऊँगा" मंत्रमुग्ध-सा चन्द्रशेखर बोला।

"आज ?"

"आज ?" चन्द्रशेखर को सहसा एक झटका-सा लगा, मानों किसी ने उसे मधुर स्वप्न से झकझोर कर जगा दिया हो। वह क्षण भर मौन खड़ा कुछ सोचता रहा और उसके पश्चात बोला, "हाँ, आना आज ही चाहता हूँ, परन्तु आ सकूंगा कि नहीं यह अभी निश्चित रूप से नहीं कह सकता हूँ। मार्ग में एक भारी कठिनाई है। पिता जी साथ आये हैं। वे जहाँ जाते है मुझे अपने साथ अवश्य ले जाते हैं। यदि अभी उनके साथ कहीं जाना पड़ गया तो कठिनाई होगी, अन्यथा संध्या तक अवश्य आऊँगा।"

लक्ष्मी उठकर खड़ी हो गयी और बोली, "तो मैं अब जा रही हूँ। मुझे कहना बहुत-कुछ है, परन्तु यहाँ, इस समय नहीं करूँगी। सुमेरगढ़ में ही कहूँगी, जब तुम चलकर मेरे पास आओगे तभी कहूँगी। आओगे न ?"

"अवश्य आऊंगा", चन्द्रशेखर ने आश्वासन दिया।

द्वार की ओर बढ़ती हुई लक्ष्मी बोली, "आज नहीं आ सकोगे ?"

"यथा सम्भव प्रयास करूँगा," चन्द्रशेखर ने साथ चलते हुए कहा।

लक्ष्मी ने कहा, "हाँ, प्रयास अवश्य करना, और यथा सम्भव करना, अन्यथा —परन्तु उसके कहने की आवश्यकता नहीं है।"

वे कक्ष से बाहर आ चुके थे। चन्द्रशेखर मौन साथ चलता हुआ सिंहद्वार तक आया। शंकर वहाँ खड़ा था और क्षुब्ध दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। चन्द्रशेखर ने अपनी दृष्टि उधर से फेर ली।

लक्ष्मी ने रथ में चढ़ते हुए, मानों शंकर को सुनाकर, चन्द्रशेखर से कहा, "यह कार्य बहुत आवश्यक है, इसे अविलम्ब होना चाहिए। कैसे होगा यह कुंवर जी जाने, होना शीघ्र ही चाहिए।"

लक्ष्मी का रथ अभी दृष्टि से ओझल नहीं हुआ था कि चन्द्रशेखर को अपने मस्तिष्क में प्रतिक्रिया का अनुभव होने लगा। जैसे मद्यप जब सोकर जगता है तो उसे अपना निकट अतीत स्वप्नवत और वर्तमान कुछ विचित्र-सा प्रतीत होता हैं, लगभग ऐसी ही दशा उस समय चन्द्रशेखर की थी। जब तक लक्ष्मी उसके निकट रही तब तक वह एक प्रकार से नहीं था। लक्ष्मी संचालिका थी और वह संचालित यन्त्र मात्र था। परन्तु लक्ष्मी के जाते ही उसका प्रभाव भी क्षीण होने लगा था और यन्त्र फिर धीरे-धीरे विचारशील, विवेकशील मानव बनने लगा था।

इस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप चन्द्रशेखर उस संध्या को सुमेरगढ़ नहीं गया। वह फिर प्रासाद गया और युवराज से अनुमति तथा आवश्यक निर्देश प्राप्त करके, और रात्रि में पिता के साथ परामर्श करके, अगले दिन प्रातःकाल होते ही यात्रा पर निकल पड़ा। इस बार उसने शंकर को भी अपने साथ नहीं लिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

—२५—

चन्द्रशेखर चलने को तो चल दिया था परन्तु उसका मन अभी महोत्सवनगर में ही था जहाँसे उड़कर वह बार-बार कालंजर और कभी-कभी अनायास सुमेरगढ़ पहुँच जाता था। अपने मन एवं मस्तिष्क की इस दशा पर उसे स्वयं आश्चर्य हो रहा था, परन्तु वह विवश था। इन दो नारियोंने एक साथ उसके जीवन में प्रवेश करके उसे कठिन द्विधा में डाल दिया था। दोनों विपरीत ध्रुवों के समान भिन्न थीं। एक यदि हिम-सी शीतल किन्तु मल्लिका-वल्लरी-सी नयशील थी, तो दूसरी उफनते ज्वालामुखी-सी उग्र और शिला-सी कठोर। दोनों उसे अपनी-अपनी ओर खींच रही थीं—एक न जाने किस अदृश्य कौशेय तन्तु से, और दूसरी प्रत्यक्ष रूप से, बलात्। एक का मौन समर्पण उसे पुकारता था तो दूसरी का मुखर नारीत्व उसके पुरुष को ललकारता था।

मार्ग में एकाकी चलते-चलते चन्द्रशेखर के मस्तिष्क में एक विचार बारबार उभर कर ऊपर आ जाता था—कि वह भाग रहा है, पलायनकर रहा है। परन्तु किससे? किन्नरी से? लक्ष्मी से? यह अनिश्चित था। निश्चित केवल इतना था; कि वह भाग रहा है। तो क्या यथार्थ से? हाँ, यह किसी सीमा तक सत्य था क्योंकि उसका यथार्थ एक भयानक मानसिक संघर्ष का पर्याय था। जो दो नारियाँ उसे अपनी-अपनी ओर खींच रहीं थीं उनमें से एक को वह छोड़ना नहीं चाहता था, और दूसरी को छोड़ नहीं पा रहा था। यही उसके पलायन का कारण था। उसके मस्तिष्क में कहीं यह एक धारणा छिपकर बैठी थी कि समय उसकी समस्या का समाधान खोज निकालेगा। पलायनवाद का सदा यही दर्शन होता है।

परन्तु चन्द्रशेखर स्थल से पलायन करके भी अपनी समस्या से त्राण नहीं पा रहा था। वह महोत्सवनगर से दूर चला जा रहा था और समस्या छाया की भाँति उसके साथ-साथ चल रही थी। जब वह उग्र हो जाती थी, अर्थात् जब उसका मानसिक संघर्ष ज्वार का रूप धारण कर लेता था, तो वह अपने अश्व की गति और बढ़ा देता था।

इस प्रकार यात्रा करते हुए मार्ग में उसके साथ एक विचित्र घटना घटित हुई। उसे प्रस्थान किये हुए चौथा दिन था। महोत्सव नगर बहुत पीछे छूट चुका था परन्तु चन्देल राज्य की सीमा अभी पार नहीं हुई थी। वह द्रुत गति से अश्व दौड़ाता हुआ चला जा रहा था। मार्ग में एक ग्राम पड़ा। मध्याह्न हो आया था, अतएव अपने नियमानुसार उसे विश्राम के लिए वहाँ रुक जाना चाहिए था। परन्तु उस समय उसकी इच्छा विश्राम करने की नहीं हो रही थी क्योंकि उसका मानसिक संघर्ष ज्वार की स्थिति में था। उस समय वह चलते रहना चाहता था।

परन्तु ग्राम के छोर पर पहुँचकर उसके लिए चलते रहना असम्भव हो गया। आगे का मार्ग अवरुद्ध था। उसके सम्मुख ग्रामवासियों की भारी भीड़ खड़ी थी जिसमें स्त्रियाँ-पुरुष, बालक-वृद्ध सभी थे। ऐसा लगता था मानों सम्पूर्ण ग्राम उस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थान पर आ जुड़ा हो। भीड़ के मध्य भाग से एक स्त्री का आर्त्तनाद प्रसारित हो रहा था।

मार्ग अवरुद्ध पाकर चन्द्रशेखर विवशतावश अपने अश्व पर से उतर पड़ा। सरल प्रकृति वाले ग्रामवासियों ने वेश-भूषा तथा सज्जा से उसे राजपुरुष समझकर आदरपूर्वक पीछे हटना आरम्भ कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप चन्द्रशेखर ने शीघ्र ही अपने आपको भीड़ के मध्य भाग में पाया जहाँ मुख्य नाटक घटित हो रहा था। नाटक का मुख्य पात्र एक अधेड़ आयु का दुर्बल शरीर वाला कृषक था जो इस समय खलनायक बना धरती पर पड़ी हुई एक असहाया स्त्री पर एक साथ जिह्वा तथा चरण से प्रहार कर रहा था। स्त्री आर्तनाद कर रही थी और बार-बार सहायता के लिए पुकार लगा रही थी। परन्तु दर्शकगण इस दृश्य के आनन्द में इतने मग्न थे, अथवा आततायी के हाथ की लाठी से इतने भयभीत थे, कि सहायता के लिए कोई आगे नहीं बढ़ रहा था। आततायी पर इन पुकारों की प्रतिक्रिया अवश्य हो रही थी। वह प्रत्येक पुकार का चरण-प्रहार अथवा अपशब्दों की बौछार से समुचित उत्तर दे रहा था।

चन्द्रशेखर कुछ समय तक चुपचाप खड़ा इस दृश्य को देखता रहा। फिर उसने प्रश्नसूचक दृष्टि से अपने निकट खड़े हुए एक ग्रामवासी की ओर देखा। ग्रामीण मानों इसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था, तुरन्त बोला, "अपनी पत्नी को मार रहा है।" यह वाक्य उसने ऐसे स्वर में कहा मानों अपनी पत्नी को मारना प्रत्येक पति का मौलिक अधिकार होता है जिसमें हस्तक्षेप करना किसी भी तीसरे व्यक्ति के लिए उचित नहीं है।

तभी भूमि पर पड़ी उस स्त्री ने एक बार फिर आर्त्तनाद किया और सहायता के लिए पुकार लगायी, जिसे सुनकर चन्द्रशेखर की दृष्टि फिर उस ओर घूम गयी। उसने अपने अश्व को वहीं छोड़ दिया और स्वयं आगे पग बढ़ाया। दर्शक जनता में स्तब्धता छा गयी। पलक झपकते वह उस स्त्री के निकट जा खड़ा हुआ और कड़क कर बोला, "बस ! बहुत हो गया ! वीरता दिखाने के लिए क्या यह स्त्री ही रह गयी है ?"

स्त्री का आर्त्तनाद और पुरुष के कंठ से निकल रहा अपशब्दों का अविरल प्रवाह, दोनों एक साथ बंद हो गये। स्त्री आशान्वित दृष्टि से अपने अप्रत्याशित सहायक की ओर निहारने लगी। पुरुष ने अपने हाथ की लाठी सँभाली, एक बार सिर से पैर तक चन्द्रशेखर को तौला, और फिर किंचित् अनिश्चय के स्वर में कहा, "तुम कौन हो ?"

"मैं मनुष्य हूँ, और यात्री हूँ," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।

"यात्री हो तो अपना मार्ग पकड़ो। यह मेरी पत्नी है। मैं इसे दंड दे रहा हूँ। तुम्हें हमारे बीच में पड़ने का कोई अधिकार नहीं है।"

चन्द्रशेखर का हाथ अपने खड्ग पर जा पहुँचा। उसने कहा, "अपना अधिकार यदि तू चाहे तो मैं इसी समय प्रमाणित भी कर सकता हूँ। परन्तु मैं तुझे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस योग्य नहीं समझता। अतएव केवल इतना कह रहा हूँ कि यदि तूने फिर इस स्त्री पर हाथ उठाया तो मैं तेरा हाथ काटकर फेंक दूंगा।"

दर्शक जनता की स्तब्धता गहरी हो गयी। आततायी पति ने एक भयभीत दृष्टि अपने हाथों की ओर सम्भवतः यह देखने के लिए डाली कि वे अभी तक उसके शरीर से जुड़े हुए हैं कि कटकर अलग हो चुके हैं। उन्हें पूर्ववत् अपने शरीर के अविभाजित अंग पाकर वह थोड़ा आश्वस्त हुआ और पूर्णतया निर्विकार स्वर में बोला, "तुम वही व्यक्ति तो नहीं हो? यदि हो तो इसे प्रसन्नतापूर्वक अपने साथ ले जा सकते हो। मैं विरोध नहीं करूँगा। वास्तव में तुम मेरे ऊपर भारी उपकार करोगे।"

दर्शकों में फिर कानाफूसी आरम्भ हो गयी और सभी दृष्टियाँ चन्द्रशेखर पर आ केन्द्रित हुईं।

चन्द्रशेखर ने कहा, "वही व्यक्ति कौन?"

पति बोला, "वही जो मेरी अनुपस्थिति में इस कुलटा के पास आया करता था। मुझे सब ज्ञात है।"

"यह असत्य है," स्त्री ने अपना स्वर ऊँचा उठाकर कहा, "यह असत्य है। मेरे पास कभी कोई व्यक्ति नहीं आता था। यह अपना दोष मेरे सिर मढ़ने का प्रयत्न कर रहा है। सम्पूर्ण ग्राम जानता है कि मैं निर्दोष हूँ।"

पति ने भी अपना स्वर ऊँचा उठाकर कहा, "ग्राम की दुहाई दे रही है? सम्पूर्ण ग्राम यहाँ एकत्र है। बुला अपने साक्षी को। मैं भी तो देखूं कौन शपथ खाकर तेरा समर्थन करता है।"

"तू ही जिसे चाहे बुला ले," स्त्री ने कहा।

"मैं बुला लूं?" पति ने अट्टहास किया।

चन्द्रशेखर के मस्तिष्क में भी स्थिति अब कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगी थी। उसने कहा, "तेरा कोई साक्षी है?"

"हाँ, है," पति ने कहा, "उसी को बुला रहा हूँ।" यह कहकर उसने एक बार भीड़ में चारों ओर देखा और फिर एक वृद्ध को सम्बोधित करके कहा, "काका, इधर आ जाओ और सम्पूर्ण ग्राम को बता दो कि परसों रात्रि में तुमने क्या देखा था।"

सभी की दृष्टि सम्बोधित व्यक्ति पर जा टिकी जो वास्तव में इतना अधिक वृद्ध था कि उसके मुख में एक भी दांत अथवा सिर पर एक भी बाल नहीं रह गया था। वह इस समय आगे बढ़ने के स्थान पर पार्श्व-अन्वेषण करता हुआ पीछे हट रहा था। परन्तु जनता-जनार्दन की जिज्ञासा प्रबल हो चुकी थी। सभी यह जानने को उत्सुक थे कि इस पुरातन-पुरुष ने परसों रात्रि में क्या देखा था। अतएव उसके निकट खड़े हुए व्यक्तियों ने उसका पीछे हटना असम्भव बना दिया और एक अधिक उत्साही युवक हाथ पकड़कर खींचता हुआ उसे भीड़ के मध्य में खड़े चन्द्रशेखर के निकट तक पहुँचा आया।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्सुक पति ने उसे निकट पाते ही दोनों हाथों से पकड़कर झकझोर डाला ओर कहा, "चुप क्यों खड़े हो, काका ? सम्पूर्ण ग्राम को बता दो कि तुमने परसों रात्रि में क्या देखा था। मुझे जो बताया है वह सब को बता दो। मुझे तो पहले से संदेह था कि यह कुलटा है। इसी कारण वंध्या है।"

"इस कारण निस्संतान हूँ ?" धरती पर खड़ी हुई स्त्री तमक कर बोली। "मैं तो अनेक बार कह चुकी हूँ कि तू एक नहीं, कई एक विवाह और करले। तू क्यों नहीं करता ? तेरे लिए प्रत्येक स्त्री वंध्या सिद्ध होगी।"

"तू मौन पड़ी रह," पति ने कड़ककर कहा।

"अब मैं मौन नहीं रहूँगी", स्त्री ने कहा। "बीस वर्षों से मौन रह कर सहन करती आई हूँ, और आमरण करती रहती। परन्तु अब स्थिति असह्य हो गयी है। तू अपने दोष पर आवरण डालने के लिए मेरे चरित्र पर आक्षेप कर रहा है, इस नीच की सहायता से मुझे कुलटा सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है। यह मैं सहन नहीं करूँगी, कदापि नहीं करूँगी। आज मैं भी सम्पूर्ण ग्राम को बता दुंगी कि——"

"मैं तेरी जिह्वा काट लूंगा, तेरा सिर फोड़ दूंगा, तेरे प्राण ले लूंगा।" यह कहकर सर्वोच्च स्वर में अपशब्दों की बौछार करता हुआ वह अपनी पत्नी पर झपटा।

परन्तु वह उसके निकट तक नहीं पहुँच पाया। चन्द्रशेखर ने, जिसके समक्ष स्थिति अब अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही थी, हाथ पकड़कर उसे बीच में ही रोक लिया, और काका उपाधिधारी व्यक्ति से तीक्ष्ण स्वर में कहा, "तुझे साक्षी रूप में प्रस्तुत किया गया है। शपथ खाकर समाज को बता कि तूने कब, कहाँ और क्या देखा था। और स्मरण रख—यदि तनिक भी असत्य बोला तो तेरा कंठ होगा और मेरा यह खड्ग। जो सत्य हो उसे निर्भय होकर कह दे। बता, तूने क्या देखा था ?"

कटि की आयु-सुलभ दुर्बलता के कारण काका की दृष्टि स्वभावत: धरती पर गड़ी थी, भय के कारण उसके पैर काँप रहे थे। वह मौन खड़ा था।

चन्द्रशेखर ने पति को छोड़ दिया और इस प्रकार मुक्त हुआ हाथ अपने खड्ग पर रखते हुए फिर कहा, "लगता है तू ऐसे नहीं बताएगा।"

"बताता हूँ," काका ने गिड़गिड़ा कर कहा।

पति ने प्रोत्साहन के स्वर में कहा, "सत्य को सदा निर्भय होना चाहिए, काका तुम इतने भयभीत क्यों हो रहे हो ? जो देखा था वही बता दो।"

"हाँ, जो देखा हो वही बता दे," चन्द्रशेखर ने कहा।

काका ने एक बार सप्रयास दृष्टि ऊपर उठाकर चन्द्रशेखर की ओर देखा और फिर आंखें अपनी सहज मुद्रा में धरती पर गड़ाकर अत्यन्त धीमे, सहमे हुए स्वर में कहा, "मैंने कुछ नहीं देखा था।"

बात इतने धीमे स्वर में कही गयी थी कि अधिकांश दर्शक उसके श्रवण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाभ से वंचित रह गये थे, और प्रश्नसूचक दृष्टियों का आदान-प्रदान करने लगे थे। मानों उनकी जिज्ञासा का निवारण करते हुए विस्मित पति ने चिल्लाकर कहा, "क्या ! तुमने कुछ नहीं देखा था ?"

काका ने कहा, "नहीं,मैंने कुछ नहीं देखा था। यही सत्य है। मुझे रात्रि में अपना हाथ भी नहीं सूझता है, इस कारण मैं सूर्यास्त के पश्चात घर से बाहर नहीं निकलता हूँ। ईश्वर साक्षी है, मैं सत्य कह रहा हूँ।"

"परन्तु तुमने मुझसे तो कहा था ?" पति ने कहा।

"हाँ, मैंने जो सुना था वही तुमसे कह दिया था। परन्तु मैं यह क्या जानता था कि तुम इस अभागी की दुर्गति कर डालोगे।"

"तूने किससे सुना था ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

वृद्ध के पैर फिर काँपने लगे। उसका स्वर फिर बहुत धीमा हो गया। उसने कहा, "यह मुझे स्मरण नहीं है।"

"सुना तूने ?" चन्द्रशेखर ने पति की ओर घूमकर कहा, "सुन लिया तेरा साक्षी क्या कहता है ? तूने अपनी निर्दोष पत्नी के साथ भारी अन्याय किया है। तुझे इससे क्षमा माँगनी चाहिए।"

इस पर पति तन गया। बोला, "मैं इससे क्षमा मांगूंगा ? कदापि नहीं। और न इसे अब अपने घर में घुसने दूंगा। यदि इसने दुस्साहस किया तो हाथ-पैर तोड़ दूंगा। यह कुलटा भले न हो परन्तु वंध्या अवश्य है। मेरे घर में अब इसके लिए स्थान नहीं है। यह जहाँ चाहे वहाँ जा सकती है। तुम्हें बड़ी सहानुभूति हो तो अपने साथ लेते जाओ।"

उधर पत्नी भी अब उठकर खड़ी हो गयी थी। तमक कर बोली, "इन्हें क्यों बीच में घसीटता है, पापी ? यात्री हैं, आज यहाँ हैं तो कल न जाने कहाँ होंगे। और मुझे धमकाना भी व्यर्थ है क्योंकि मैं स्वयं अब तेरे घर में पाँव नहीं रखूँगी, तेरे गांव में भी नहीं रहूँगी। मुझे तेरी छाया तक से घृणा है। सहते-सहते बीस वर्ष हो गये, अब और नहीं सहूँगी। मैं स्वयं जा रही हूँ।"

"कहाँ जा रही है ?" पति ने व्यंग के स्वर में प्रश्न किया।

पत्नी ने कहा, "तुझसे क्या प्रयोजन ? जहाँ इच्छा होगी वहाँ चली जाऊँगी।"

"खाएगी क्या ?" पति ने चुनौती-सी देते हुए कहा।

"तू चिन्ता न कर। संखिया खा लूंगी परन्तु तेरे द्वार लौटकर नहीं आऊँगी।" यह कहकर वह भीड़ के बीच से मार्ग बनाती हुई एक ओर को चल दी।

किसी ने उसे नहीं रोका, किसी ने कुछ कहा भी नहीं। चन्द्रशेखर ने भी कुछ कहना उचित नहीं समझा। वह वेग से चलती हुई भीड़ पार करके गाँव से बाहर जाने वाले मार्ग पर पहुँच गयी और शीघ्र ही दृष्टि से ओझल हो गयी।

धीरे-धीरे भीड़ भी छँटने लगी। लोग दो-दो चार-चार के समूहों में घटना पर टीका-टिप्पणी करते हुए घटनास्थल से चलने लगे। पति निर्द्वंद्व भाव से सम्भवतः अपने घर की ओर चल दिया। केवल चन्द्रशेखर जहाँ का तहाँ खड़ा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहा, क्योंकि वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि तुरन्त अश्वारूढ़ होकर आगे बढ़े अथवा घड़ी भर उसी ग्राम में रुककर भोजन या कुछ जलपान करले।

उसे इस प्रकार खड़ा हुआ देखकर कुछ और लोग उसके पास आगये और उसके सम्बन्ध में प्रश्न पूछने लगे। इस वार्तालाप का परिणाम यह हुआ कि चन्द्र-शेखर कुछ समय के लिए उसी ग्राम में रुक गया और उसके नव-परिचित ग्राम-वासियों ने वहीं उसके जलपान की व्यवस्था कर दी।

जलपान करते हुए सहसा उसने पूछा, "वह स्त्री कहाँ गयी होगी ?"

"कौन, गंगा ?" एक युवक ने कहा, "अरे वह कहीं नहीं जाएगी। घूम-घाम कर संध्या तक फिर लौट आएगी। ऐसा पहले भी कई बार हो चुका है। इसी कारण हम लोग बीच में नहीं पड़ रहे थे।"

"परन्तु इस बार वह लौटकर नहीं आएगी," एक प्रौढ़ ने कहा।

"लौटेगी, चाचा," युवक ने आग्रह किया। "लौटेगी नहीं तो जाएगी कहाँ ? उसका कहीं ठिकाना नहीं है।"

"लौट आए तो अच्छा है," प्रौढ़ ने कहा, "परन्तु मेरा मन ऐसा नहीं कहता है। जैसे आज गयी है वैसे वह पहले कभी नहीं गयी थी।"

"फिर ? तुम्हारा मन क्या कहता है ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

प्रौढ़ ने उत्तर दिया, "मेरा मन कहता है कि वह उस क्लीव के पास लौटकर नहीं आएगी, प्राण भले ही दे दे।"

"अब तक क्यों लौटकर आ जाती रही है ?" युवक ने पूछा।

प्रौढ़ ने उत्तर दिया, "लोक-लाज के कारण। आज वह बंधन टूट गया है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "तुम लोग उसकी कुछसहायता क्यों नहीं करते हो ?"

उत्तर मिला, "लोक-लाज के कारण। पति-पत्नी के बीच में पड़ने वाला लांछन का भागी होता है।"

—२६—

जलपान करके चन्द्रशेखर शीघ्र ही फिर चल पड़ा।

इस ग्राम में उसने जो कुछ देखा और सुना था उससे उसे स्पष्ट लाभ हुआ था। उसका मस्तिष्क अब अपेक्षाकृत हलका और स्वच्छ हो गया था। एक ही विषय पर सोचते-सोचते, एक ही समस्या में उलझे-उलझे, वहाँ जो धुंध-सी छा गयी थी वह इस अनुभव के पश्चात् अपने आप छँट गयी थी। अब वह अपने और लक्ष्मी अथवा किन्नरी के सम्बन्ध में नहीं, अपितु उस स्त्री के सम्बन्ध में सोच रहा था जो उसके देखते-देखते अपने पति को छोड़कर अज्ञात पथ पर चली गयी थी, और उस पुरुष के सम्बन्ध में सोच रहा था जिसने अपनी पत्नी को इस प्रकार चली जाने दिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूर्य मध्याह्न के शिखर पर चढ़कर धीरे-धीरे पश्चिम के क्षितिज की ओर उतरने लगा था। वातावरण स्तब्ध था, और मार्ग निर्जन। चन्द्रशेखर का अश्व विश्राम लाभ कर चुका था, और चन्द्रशेखर संध्या से पहले श्रीपथ पहुँच जाना चाहता था। अश्व द्रुत गति से आगे जा रहा था, मार्ग के दोनों ओर स्थित वृक्ष उतनी ही द्रुत गति से पीछे की ओर भाग रहे थे।

परन्तु ग्राम से निकलकर लगभग एक कोस चल चुकने के पश्चात् चन्द्रशेखर को सहसा अपने अश्व की गति धीमी कर देनी पड़ी। मार्ग का एक मोड़ पार करते ही उसकी दृष्टि आगे जा रही एक स्त्री-मूर्ति पर पड़ी जिसे उसने पीठ देखकर ही तुरन्त पहचान लिया। वह मोड़ से थोड़ा आगे दृष्टि नीची किये धीरे-धीरे चली जा रही थी। पीछे अश्व-चाप सुनकर वह मार्ग के एक ओर हो गयी तथा उसकी गति और धीमी हो गयी। परन्तु उसने पीछे घूमकर नहीं देखा।

अश्व को उसके निकट तक ले जाकर उसकी गति और धीमी करते हुए चन्द्रशेखर ने पूछा, "तुम्हारा नाम गंगा है ?"

वह बिना पीछे घूमकर देखे, बिना दृष्टि ऊपर उठाये, बिना चन्द्रशेखर के अनावश्यक प्रश्न का उत्तर दिये, मार्ग से और दूर चली जाने के लिए घूमी, परन्तु चन्द्रशेखर ने अपना अश्व शीघ्रता से उसके सामने ले जाकर खड़ा कर दिया और उसपर से नीचे उतरते हुए फिर पूछा, "तुमने मेरा प्रश्न नहीं सुना क्या ? तुम्हारा नाम गंगा है ?"

सामने मार्ग अवरुद्ध पाकर वह भी खड़ी हो गयी और किंचित् संकोच के पश्चात् बोली, "हाँ, है तो।" उसने अपनी आँखे मींच रखी थीं।

"इस समय तुम अकेली कहाँ जा रही हो ?" चन्द्रशेखर ने फिर पूछा।

"एक न एक दिन सभी को अकेले जाना पड़ता है," उसने उत्तर दिया।

"परन्तु जा कहाँ रही हो ?"

उसने पूर्ववत् उत्तर दिया, "क्यों जा रही हूँ यह तुम्हें भी ज्ञात है; कहाँ जा रही हूँ, यह मैं स्वयं नहीं जानती हूँ।"

"तुम्हारा अन्य कोई सम्बंधी नहीं है क्या ?"

"है। मेरा सहोदर भाई मधुपुरी में रहता है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "परन्तु मधुपुरी तो यहाँ से बहुत दूर है। वहाँ तक तुम अकेली कैसे जाओगी ?"

"जाने को जा भी सकती हूँ," वह बोली, "मुझे मार्ग ज्ञात है। परन्तु इस समय मैं वहाँ नहीं जा रही हूँ।"

"फिर कहाँ जा रही हो ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

उसने अपना सिर ऊपर उठाया परन्तु आँखें फिर भी नहीं खोलीं। बोली, "तुम यात्री हो, परदेशी हो। न जाने कहाँ से आ रहे हो और न जाने कहाँ जाओगे। इसके अतिरिक्त तुम सज्जन हो, भले पुरुष हो। तुमने मेरे साथ सहानुभूति दिखायी है, मुझे दुर्दशा से बचाया है। इस कारण मैं हृदय से तुम्हारी ऋणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हूँ और अपने अभिशप्त जीवन में तुम्हें नहीं खींचना चाहती हूँ। तुम अपनी राह जाओ और मुझे अपनी जाने दो। यह मेरी प्रार्थना है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं तुम्हें रोक कहाँ रहा हूँ? केवल इतना जानना चाहता हूँ कि तुम इस समय कहाँ जा रही हो। मैंने ग्राम में जो कुछ देखा-सुना है उसके कारण उत्सुक हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरी यह चेष्टा अनधिकार है, फिर भी इतना उत्सुक हूँ कि उसे कर रहा हूँ। बता सकती हो तो बस इतना बता दो कि तुमने क्या निश्चय किया है।"

"मैंने क्या निश्चय किया है? तुम यह जानना चाहते हो?" यह कहते-कहते वह सहसा अत्यधिक गम्भीर हो गयी। उसने अपनी आँखें अब भी नहीं खोली थीं, अतएव चन्द्रशेखर को उसके मुख की ओर देखने की पूरी स्वतंत्रता थी, और वह अनुभव कर रहा था कि यह स्त्री यदि सुन्दर नहीं है तो असुन्दर भी किसी दशा में नहीं कही जा सकती है। उसका वर्ण श्यामल अवश्य था, परन्तु उसका अपना लोनापन, अपना आकर्षण था। आयु ने अभी उसके मुख अथवा शरीर पर अपने हस्ताक्षर अंकित नहीं किये थे। परन्तु उसके अधरों पर एक प्रकार की आरोपित कठोरता थी जो वहाँ नितान्त अस्वाभाविक प्रतीत होती थी। चन्द्रशेखर ने सोचा कि यदि उस समय उसकी आँखें खुली होतीं तो उसके अन्तर का प्रतिबिम्ब अधिक सरलतापूर्वक देखा जा सकता था।

गंगा कहती गयी, "तुम यदि इतने उत्सुक हो तो मैं बता दूँगी। मैं इतनी कृतघ्न नहीं हूँ कि जिसने मेरे साथ इतना उपकार किया हो उसकी तनिक-सी जिज्ञासा भी न शान्त करूँ। परन्तु उसे शान्त करके मेरी स्थिति बड़ी दयनीय हो जाएगी।"

"तो रहने दो," चन्द्रशेखर ने कहा।

"उसमें मुझे संतोष नहीं होगा," वह बोली। "अब यदि नहीं बताऊँगी तो मुझे जीवन भर खेद रहेगा। परन्तु एक प्रार्थना मेरी भी है।"

"क्या?"

"कि तुम मेरी बात सुनकर मुझसे तर्क न करना, और मुझे मिथ्या न समझना और······और मेरी राह छोड़कर अपने पथ पर चले जाना। तर्क का मुझपर अब कोई प्रभाव नहीं होगा और तुम्हारी दृष्टि में गिर जाना मुझे बहुत कष्टकर होगा, क्योंकि मैं तुम्हारा आदर करती हूँ। मेरी इतनी प्रार्थना स्वीकार करोगे?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "इसका निर्णय तुम्हारी बात सुनने के पश्चात् करूँगा। तुम अपनी आँखें क्यों नहीं खोल रही हो?"

"वह भी अभी स्पष्ट हो जाएगा," गंगा ने उत्तर दिया। "सुनो। जब मैं ग्राम से चली थी तब मेरे सामने अंधकार ही अंधकार था। मैं नहीं जानती थी कि मुझे क्या करना है, कहाँ जाना है। बस, जिस ओर पाँव उठ गये उसी ओर चल पड़ी थी। परन्तु ग्राम पीछे छूट जाने पर मस्तिष्क भी धीरे-धीरे स्वच्छ और स्थिर होने लगा। मैं अपने आपको बहुत हलका अनुभव करने लगी। मुझे लगने लगा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि मैं कारागार से निकलकर मुक्त संसार में आ गयी हूँ। परन्तु सामने का मार्ग अभी स्पष्ट नहीं हुआ था। मैं यह निर्णय नहीं कर पा रही थी कि मुझे कहाँ जाना चाहिए और क्या करना चाहिए। कभी प्रतिहिंसा से भरकर कुछ सोचती थी तो कभी निराशा से अभिभूत होकर कुछ। परन्तु यह नहीं समझ पा रही थी कि ईश्वर की इच्छा क्या है, वह क्या चाहता है। मैं सोचती रही, और जब सोचते-सोचते थक गयी परन्तु निर्णय फिर भी नहीं कर पायी, तब मैंने निर्णय भी ईश्वर पर ही छोड़ दिया। यह निश्चय मैंने अभी तुम्हारे आने से कुछ क्षण पूर्व किया था। अब ईश्वर ने इंगित कर दिया है, परन्तु मैं उसका निर्णय स्वीकार नहीं कर पा रही हूँ। उसने मुझे भारी द्विधा में डाल दिया है। परन्तु मैं उसके इंगित को स्वीकार नहीं करूँगी। इसी कारण तुमसे फिर हाथ जोड़कर विनती कर रही हूँ कि तुम मेरी बात सुनकर तुरन्त यहाँ से चले जाना, अन्यथा······"

"परन्तु तुमने निश्चय क्या किया था ?" चन्द्रशेखर ने पूछा, "और ईश्वर ने क्या इंगित किया है ? तुम्हारी द्विधा क्या है ?"

"वह भी बता रही हूँ," गंगा ने कहा, "तुमसे कुछ नहीं छिपाऊँगी। मैंने यह निश्चय किया था कि जिस पहले पुरुष को देखूँगी उस पर समर्पित हो जाऊँगी और वह जहाँ ले जाएगा वहीं चली जाऊँगी। परन्तु यह निश्चय मेरे प्रतिशोध का था। मेरे मन में बैठा कोई बार-बार कह रहा था कि यह पाप है, ऐसा नहीं करना चाहिए। जब मेरे लिए इस पुकार को अनसुनी करना असम्भव हो गया तो मैंने उसके साथ समझौता करके यह दूसरा निश्चय किया कि यदि मुझे पहले कोई नदी-कूप मिल गया तो ईश्वर की ऐसी ही इच्छा समझकर उसमें कूद पड़ूँगी और प्राण दे दूँगी। मैं इस निश्चय पर पहुँची ही थी कि पीछे से अश्व-चाप सुनाई पड़ी। तुरन्त मेरे मन में यह शंका उठी कि कहीं तुम्हीं न आ रहे हो। मैंने सोचा मार्ग से हटकर कहीं वृक्षों की ओट में छिप जाऊँ जिससे तुम मुझे न देखो और मैं तुम्हें न देख सकूँ। परन्तु तुमने मुझे ऐसा करने का अवसर ही नहीं दिया और मेरे सामने आ खड़े हुए हो। यह ईश्वर का इंगित है। परन्तु मैं इसे स्वीकार नहीं करूँगी। यह मेरा निश्चय है। अतएव अब मेरा प्रणाम स्वीकार करो, और मेरी विनती मानकर यहाँ से चले जाओ। जब तक तुम मेरे सामने रहोगे तब तक मैं आँखें नहीं खोलूँगी, फोड़ भले ही लूँ। तुम वह पहले पुरुष नहीं होगे जिसे मैं देखूँ।"

उसकी वाणी में अनुनय की मात्रा इतनी अधिक थी कि चन्द्रशेखर के लिए अप्रभावित रहना असम्भव था। किन्तु एक अकेली स्त्री को उसकी वर्तमान स्थिति में छोड़कर चले जाना भी उसके लिए सम्भव नहीं था। अतएव उसने कहा, "यह सब कोरी मूर्खता है, गंगा। आँखें खोलो और यथार्थ को देखो। तुम्हें इस प्रकार नहीं सोचना चाहिए।"

"फिर किस प्रकार सोचना चाहिए ? तुम्हीं मेरा मार्ग-दर्शन करो। बताओ मुझे क्या करना चाहिए।"

"तुम्हें अपने पति के पास लौट जाना चाहिए," चन्द्रशेखर ने कहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह बोली, "यदि मैं तुम्हारा इतना आदर न करती होती तो यही कहती कि तुम जो कह रहे हो वह मूर्खता है। परन्तु मैं तुम्हारा बहुत आदर करती हूँ, अतएव ऐसा नहीं कहूँगी। और सम्भवतः यह मूर्खता है भी नहीं। तुम क्या जानो मेरी व्यथा कितनी गहरी है। तुम क्या जानो गत बीस वर्षों में मैंने क्या-क्या सहा है। यदि जानते तो मुझे ऐसा परामर्श कभी नहीं देते। जिसे तुम मेरा पति कह रहे हो वह मेरा स्वामी कभी नहीं रहा है, और अब उसके पास मेरा लौटना असम्भव है। मैं बीस वर्ष तक उसके साथ रह चुकी हूँ। उसे वास्तव में विवाह ही नहीं करना चाहिए था। परन्तु वह अपने वंश का अन्त नहीं होने देना चाहता था। इसी कारण उसने मेरे साथ विवाह किया। उसका निरन्तर यही प्रयास रहा है कि मैं किसी प्रकार उसे पिता बना दूं। उसने मुझसे स्पष्ट शब्दों में इस आशय का प्रस्ताव किया और मेरे सामने अनेक प्रलोभन रखे। और जब मैं स्वीकार नहीं करती थी तो वह मुझे मारता था, भूखी रखता था और अनेक प्रकार से यातना देता था। अन्त में मुझे धैर्य नहीं रहा और मैंने भी कह दिया कि मैं उसका भेद खोल दूंगी, तब उसने मुझे कुलटा और वंध्या प्रमाणित करने के लिए यह नाटक रचा। अब तो चाहे जो हो, मैं उस पापी के पास लौटकर नहीं जाऊँगी।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "परन्तु समाज की दृष्टि में तुम उसके साथ बँधी हुई हो। समाज की दृष्टि में वह तुम्हारा पति है, स्वामी है। यह भी तो सोचो।"

"सब सोच चुकी हूँ," गंगा ने उत्तर दिया, "बीस वर्ष तक और मैंने किया ही क्या है। तुम समाज की दुहाई दे रहे हो। परन्तु मुझे समाज की तनिक भी चिन्ता नहीं है क्योंकि उसने मेरे साथ न्याय नहीं किया है। इसी कारण कभी-कभी सोचती हूँ कि अभी मुझे मरना नहीं चाहिए। मरकर यातना से मुक्ति अवश्य पा लूंगी, परन्तु मेरे भीतर जो प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही है वह शांत नहीं होगी। मुझे उस पापी से बदला लेना चाहिए। मुझे उस समाज से भी बदला लेना चाहिए जो सत्य और न्याय का नहीं, शक्ति और परम्परा का पोषण करता है।"

"परन्तु समाज की अपनी मर्यादाएँ होती हैं गंगा, जिनका अतिक्रमण किसी व्यक्ति के लिए किसी दशा में भी उचित नहीं हो सकता। यह पाप है, इस विचार को त्याग दो।" चन्द्रशेखर अपने तर्क की दुर्बलता से अपरिचित नहीं था और जानता था कि गंगा पर उसकी बातों का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। वह तर्क कर रहा था क्योंकि वह स्वयं अभी अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर पाया था।

गंगा फफक उठी, "यह पाप है? और मेरे साथ जो कुछ किया गया वह पुण्य था? तुम भी यही कह रहे हो? तुम मेरे कोई नहीं हो, मैं भी तुम्हारी कोई नहीं हूँ। फिर भी मुझे तुमसे ऐसी आशा नहीं थी। मैं चाहती थी कि तुम मुझे अन्यथा न समझो। परन्तु मैं जो चाहती हूँ वह कभी नहीं होता है। यह मेरे भाग्य का लेख है, इसे कोई नहीं मेट सकता। मैं तुम्हारी दृष्टि में भी गिर गई हूँ, तुम भी मुझे पतित समझ रहे हो! तो फिर समझो। मैं तुम्हारी भी चिन्ता नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करूँगी। मैं अब किसी की चिन्ता नहीं करूँगी। जिसकी जो इच्छा हो सो कहे—करे। मैं भी वही करूँगी जो मुझे रुचेगा। जब किसी को मेरी चिन्ता नहीं है तो मैं ही सबकी चिन्ता क्यों करती फिरूँ ? मैं अब वही करूँगी जो निश्चय कर चुकी हूँ। तुमसे केवल इतनी प्रार्थना है कि कृपा करके यहाँ से चले जाओ जिससे मैं आँखें खोलकर आगे का मार्ग देख सकूँ।''

''परन्तु मैं तुम्हें इस स्थिति में छोड़कर नहीं जाऊँगा,'' चन्द्रशेखर ने कहा।

''तुम नहीं जाओगे तो मैं जा रही हूँ। ठोकरें खाऊँगी, गिरूँगी, इससे अधिक तो कुछ होना नहीं है। जिसका सम्पूर्ण जीवन ही अंधकारमय हो उसे किसी प्रकाश की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।'' और यह कहकर वह वास्तव में एक ओर को चल दी।

परन्तु चन्द्रशेखर ने शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, ''मैं तुम्हें इस स्थिति में अकेली जाने भी नहीं दूँगा।''

वह निर्विरोध खड़ी हो गयी और बड़े निरपेक्ष भाव से बोली, ''फिर क्या करोगे ? यहीं खड़ी रखोगे ?'' उसकी आँखें अभी तक मुँदी थीं, परन्तु उसके वक्ष का स्पंदन तीव्र हो गया था। चन्द्रशेखर की दृष्टि वहाँ पहुँचकर ठहर गई।

उत्तर न पाकर गंगा ने फिर कहा, ''मेरा क्या, यहीं खड़ी रहूँगी। परन्तु तुम क्या करोगे ? तुम्हारी यात्रा कैसे पूरी होगी ?''

''मैं तुम्हें अपने संग ले चलूँगा,'' चन्द्रशेखर ने कहा।

''और यदि मुझे यह स्वीकार न हो ?''

''तो मैं स्वीकार कराऊँगा,'' चन्द्रशेखर ने कहा, ''बल-प्रयोग करूँगा, तुम्हें बाँधकर ले चलूँगा।''

''कहाँ ? उस पापी के पास ?''

''नहीं, मधुपुरी में तुम्हारे सहोदर के पास। वहाँ छोड़ दूँगा।''

गंगा ने कहा, ''वहाँ मैं नहीं जाऊँगी, किसी दशा में नहीं जाऊँगी। तुम बाँध ले चल सकते हो परन्तु मुझे जीवित वहाँ नहीं पहुँचा सकोगे। चाहो तो प्रयास करके देख लो।''

''तुम्हें वही करना होगा जो मैं कहूँगा,'' चन्द्रशेखर ने अपने स्वर में अधिकार की पुट देकर कहा।

वह क्षण भर मौन, अनिश्चित-सी खड़ी रही, फिर धीमे स्वर में बोली, ''और यदि मैं वैसा नहीं करूँगी तो तुम बल-प्रयोग करोगे ? मुझे बाँधकर ले चलोगे ? परन्तु मैं वहाँ लौटकर नहीं जाऊँगी, और अपने भाई के पास भी नहीं जाऊँगी। तुम भी भली प्रकार सुन लो, ये दो बातें तुम मुझसे किसी दशा में नहीं करा सकोगे। इनके अतिरिक्त तुम जो भी कहोगे वह सब कर लूँगी।''

''इनके अतिरिक्त जो भी कहूँगा करोगी ?''

''हाँ करूँगी, आज्ञा दो।''

चन्द्रशेखर ने कहा, ''तो मेरी पहली आज्ञा यह है कि तुम तुरन्त अपनी आँखें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खोल दो।"

परन्तु गंगा ने तुरन्त अपनी आँखें नहीं खोलीं।

उसे अनिश्चय की स्थिति में देखकर चन्द्रशेखर ने फिर कहा, "ऐसे ही मेरी आज्ञाओं का पालन करोगी ?"

"नहीं, परन्तु......"

"मैं जानता हूँ," चन्द्रशेखर ने कहा, "परन्तु वह सब कोरी मूर्खता है जिसे मस्तिष्क से निकालना होगा। पहले आँखें खोलो।"

गंगा ने आँखें खोल दीं और कहा, "तुम जिसे मूर्खता समझ रहे हो, अथवा बिना समझे कह रहे हो, वह वास्तव में मूर्खता नहीं है। परन्तु मैं वचन दे चुकी हूँ, और तुम आज्ञा दे रहे हो। अतएव मैंने आँखें खोल दीं हैं। आगे आज्ञा दो। अब क्या करना है ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "अब मेरे साथ चलो।"

"चलो। परन्तु मेरा हाथ छोड़ दो। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चलूंगी, जहाँ ले चलोगे वहाँ चलूंगी। वचन देती हूं।"

चन्द्रशेखर ने बिना कुछ कहे उसका हाथ छोड़ दिया और आगे बढ़कर मार्ग पकड़ा। गंगा मौन, दृष्टि नीची किये हुए उसके पीछे-पीछे चल दी। चन्द्रशेखर का सधा हुआ अश्व बिना किसी निर्देश के उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

कुछ काल तक दोनों इसी प्रकार चलते रहे। अंत में, लगभग आधकोस चल चुकने के पश्चात गंगा ने मौन भंग करते हुए पूछा, "मुझे कहाँ लिए चल रहे हो ?"

"जहाँ मेरी इच्छा होगी" चन्द्रशेखर ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"तुम्हारा घर कहाँ है ?" दूसरा प्रश्न हुआ।

"महोत्सवनगर में।"

"महोत्सवनगर में! परन्तु चल तो तुम विपरीत दिशा में रहे हो ?"

"मैं यात्रा पर निकला हूँ।"

"श्रीपथ चल रहे हो ?"

"हाँ इस समय तो वहीं चल रहा हूँ। परन्तु जाना उस से बहुत आगे तक है।"

"मुझे भी श्रीपथ से बहुत आगे तक चलना होगा क्या ?"

चद्रशेखर ने कहा, "श्रीपथ तक तो चलना ही है। सम्भव है उससे आगे भी चलना पड़े। परन्तु पूरी यात्रा नहीं करनी होगी। मैं तुम्हें किसी सुरक्षित स्थान में छोड़ दूंगा।"

"अर्थात् मधुपुरी में ?"

"नहीं मधुपुरी में नहीं। और कहीं व्यवस्था करूँगा।"

"और मुझे वहाँ छोड़कर तुम चले जाओगे ?"

"हाँ," चन्द्रशेखर ने कहा, "वहाँ तुम्हें मेरे लौटने की प्रतीक्षा करनी होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुम्हारे लिए उचित स्थायी व्यवस्था मैं लौटकर ही कर सकूँगा। परन्तु इस अन्तर में यदि तुम अपने पति अथवा भाई के पास जाने का निर्णय करो तो तुम्हें पूरी स्वतंत्रता होगी।"

गंगा ने कहा, "एक के पास जाकर मुझे अपमान और असंतोष के अतिरिक्त कुछ मिलना नहीं है, और दूसरे के पास इस स्थिति में जाऊँ इतनी निर्लज्जता अभी मुझमें नहीं है। अतएव मैं तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा करूँगी। तुम कितने समय में लौटोगे ?"

"यह अनिश्चित है।"

"और मुझे छोड़ोगे कहाँ ?"

"जहाँ सुरक्षित समझूँगा। स्थान का निश्चय अभी नहीं कर पाया हूँ।"

गंगा कुछ नहीं बोली और दोनों फिर पूर्ववत मौन चलने लगे। परन्तु इस बार का मौन अधिक समय तक नहीं रहा। थोड़ी ही दूर चलने के पश्चात उसने सहसा फिर पूछा, "तुम्हारा कंठ तो नहीं सूख रहा है ?"

"नहीं तो," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, परन्तु तुरन्त ही प्रश्न का आशय समझ कर उसने फिर कहा, "हाँ, सूख रहा है।"

"तो इस ओर चलो," गंगा ने पूर्व की ओर इंगित करते हुए उत्साह-पूर्ण स्वर में कहा, "इधर जल मिलेगा। सरोवर मार्ग से हटकर है परन्तु अधिक दूर नहीं है। मैं ग्राम की स्त्रियों के साथ कई बार उसमें स्नान करने आ चुकी हूँ। इस समय भी वहीं जाने का विचार कर रही थी।"

"जल पीने के लिए ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

परन्तु गंगा ने उत्तर में कुछ नहीं कहा।

सरोवर वास्तव में अधिक दूर नहीं था, और बहुत बड़ा भी नहीं था। परन्तु उसका जल स्वच्छ और शीतल था। चन्दशेखर ने तृप्त होकर कहा, "इस सरोवर का कुछ नाम भी है क्या ?"

"यह द्रौपदी कुंड है," गंगा बोली। "इसका जल सीधा पाताल लोक से आता है। कहते हैं बनवास-काल में एक बार जब द्रौपदी का कंठ सूखने लगा तो पांडव भीम ने गदा मार कर यह जल निकाला था।"

चन्द्रशेखर उठकर अपने अश्व को जल पिलाने लगा।

गंगा ने हाथ मुँह धोकर जल पिया। इसके पश्चात वह उठकर खड़ी हो गयी और बोली, 'अब चलो। तुम्हें विलम्ब हो रहा होगा।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "अश्व पर बैठ सकती हो ?"

"मैं ?" गंगा ने आश्चर्य से कहा, "क्या मुझे अश्व पर बैठना होगा ?"

मैं आज श्रीपथ पहुँचना चाहता हूँ, और वर्तमान गति से हम कल तक भी नहीं पहुँच सकेंगे। यदि तुम मेरे साथ अश्व पर बैठ जाओ......"

"कभी बैठी तो नहीं हूँ" गंगा ने कहा, "परन्तु तुम्हारी आज्ञा है तो आज अवश्य बैठूँगी। अश्व पर चढ़ा कैसे जाता है ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"उसकी चिन्ता न करो, मैं चढ़ा लूँगा।"

गंगा ने कहा "और उतारना भी तुम्हें ही होगा।"

"वह भी कर लूँगा।"

"तो चलो" गंगा ने कहा।

चन्द्रशेखर ने पूछा "गिरोगी तो नहीं ?"

"गिरूंगी कैसे ? तुम्हारे पीछे बैठूंगी और तुम्हें कसकर पकड़े रहूंगी।"

और उसने ऐसा ही किया भी। पीछे से चन्द्रशेखर की कटि में दोनों हाथ डालकर इस प्रकार पकड़ा कि चन्द्रशेखर को अपने पृष्ठ-भाग में दो स्वस्थ स्तनों के स्पर्श का स्पष्ट अनुभव होने लगा। कहा "भय लग रहा है ?"

"नहीं" गंगा ने उत्तर दिया, "तुम्हारे पीछे हूँ तुम्हें पकड़े हूँ फिर भी भय लगेगा ?"

चन्द्रशेखर ने अश्व को एड़ लगायी और वह स्वच्छन्द गति से श्रीपथ की दिशा में चल पड़ा।

—२७—

संध्या होते-होते चन्द्रशेखर श्रीपथ पहुँच गया।

यादवों की इस राजधानी में उसके कई मित्र और अनेक परिचित थे। परन्तु वह उनके यहाँ न जाकर एक पांथशाला में ठहरा। उसकी वर्तमान यात्रा का उद्देश्य गुप्त था, अतएव उसने परिचितजनों से दूर रहना ही उचित समझा। गंगा को वह सुविधापूर्वक श्रीपथ में छोड़ सकता था। परन्तु इसके लिए भी उसे अपने किसी परिचित से मिलना पड़ता, जो वह करना चाहता नहीं था। इसलिए उसने गंगा के लिए भी कहीं आगे चलकर व्यवस्था करने का निश्चय किया।

इस अंतिम निश्चय का एक और कारण भी था। चन्द्रशेखर गंगा को अधिकतम समय तक अपने साथ रखना चाहता था क्योंकि इसमें उसे अपना लाभ ही लाभ दिखाई पड़ रहा था। गंगा एक अत्यधिक वाचाल स्त्री थी। बोलते रहना उसके स्वभाव का एक अंग था। यह चन्द्रशेखर ने श्रीपथ पहुँचने से पूर्व मार्ग में ही देख और समझ लिया था। अश्व की पीठ से उसे पकड़कर बैठी हुई वह घड़ी भर भी मौन नहीं रही थी, यद्यपि चन्द्रशेखर के साथ उसका परिचय अभी कुछ ही घड़ियों का था। उसकी अबाध वाचालता के परिणामस्वरूप चन्द्रशेखर अपने मानसिक संघर्ष तथा तज्जनित विषाद से मुक्त रहा था। इसके अतिरिक्त गंगा के स्वभाव में उसने बाल-सुलभ सरलता पायी थी। चन्द्रशेखर के व्यक्तिगत जीवन तथा उसके गन्तव्य के सम्बन्ध में आरम्भ में ही दो चार प्रश्न करके तथा उनके समुचित उत्तर न पाकर उसने तुरन्त इन विषयों को निषिद्ध समझ लिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु इससे उसकी वाचालता में तनिक भी अन्तर नहीं आया था। जिसे कुछ न कुछ कहना ही हो उसे विषय का कभी अभाव नहीं होता। वह खेत-खलियान, वन-वृक्ष, पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष जो भी सामने पड़ जाता था उसके विषय में कुछ न कुछ अवश्य कहती थी, और पूर्ण निष्काम भाव से केवल कहने के लिए कहती थी, उसके पीछे कोई दूसरा उद्देश्य नहीं होता था। इन बातों से चन्द्रशेखर का ज्ञान-वर्धन नहीं होता था, परन्तु उनके कारण उसके विचारों को आत्म-केन्द्रित होने का अवसर भी नहीं मिल पाता था। गत कई दिनों की मानसिक यातना के पश्चात् यह स्थिति उसे वरदान-सी लग रही थी जिससे वह अपने आप को इतने शीघ्र वंचित नहीं करना चाहता था।

श्रीपथ पहुँते ही गंगा ने अपनी व्यावहारिक उपादेयता भी सिद्ध कर दी। चन्द्रशेखर को केवल रहने का स्थान खोज कर आवश्यक खाद्य-सामाग्री लानी पड़ी, शेष सारी व्यवस्था गंगा ने सँभाल ली। जब चन्द्रशेखर हाट से लौटा तब उसके विश्राम करने का प्रबंध हो चुका था, उसके हाथ-मुँह धोने के लिए जल रखा हुआ था, और गंगा भोजन बनाने की सम्पूर्ण प्रारम्भिक व्यवस्था किये बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। चन्द्रशेखर के आते ही वह अपने कार्य में जुट गयी। चन्द्रशेखर भी हाथ-पैर धोकर उसके निकट जा बैठा। गंगा की बातों का टूटा हुआ क्रम भी फिर आरम्भ हो गया। श्रीपथ क्या बहुत बड़ा नगर है? क्या मधुपुरी से भी बड़ा है? हाट कितनी बड़ी है? क्या पांथशाला से बहुत दूर है? यदि बहुत दूर नहीं है तो लौटने में इतना विलम्ब क्यों हुआ? पांथशाला का प्रबंधक बहुत भला है। परन्तु यात्री सब इतने भले नहीं हैं। एक पूछने आया था कि क्या तुम अकेली हो? दुष्ट कहीं का! उसका मुख श्वान जैसा था और कान मूषक जैसे।

इस प्रकार की बातों से प्रतीक्षा की घड़ियों को मधुर बनाकर गंगा ने शीघ्र ही अपना कार्य पूरा कर लिया। भोजन बन गया, चन्द्रशेखर के सामने परोस दिया गया और वह खाने भी लगा, परन्तु गंगा की बातों का प्रवाह मंद नहीं हुआ। वह भोजन करता रहा, गंगा बातें करती रही। उनका अन्त तभी हुआ जब चन्द्रशेखर भोजन समाप्त करके उठ खड़ा हुआ। बातों-बातों में वह भोजन इतना कर गया था कि उसे बैठे-बैठे ही शैय्या की सुधि आने लगी थी। अतएव वह हाथ-मुंह धोकर सीधा विश्राम के लिए जा लेटा और लेटकर निंद्रा का आवाहन करने लगा।

परन्तु निन्द्रा ने आने में कुछ विलम्ब किया, जिसके परिणामस्वरुप गंगा उससे पूर्व अपना कार्य समाप्त करके चन्द्रशेखर के पास आ बैठी और उसकी बातों का क्रम फिर आरम्भ हो गया। चन्द्रशेखर आश्चर्य कर रहा था कि कुछ घड़ियों के परिचय में ही वह इतनी खुल गयी थी और इस प्रकार बातें करने लगी थी मानों वे वर्षों से साथ-साथ रहते रहे हों। एक बार उसके मन में यह प्रश्न भी उठा कि जब कोई श्रोता नहीं मिलता होगा तब यह स्त्री क्या करती होगी?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रश्न जिह्वा तक आ गया था परन्तु चन्द्रशेखर ने उसे वहाँ से आगे नहीं बढ़ने दिया। गंगा की बातें उसकी निंद्रा में बाधक अवश्य हो रही थीं, परन्तु वह उनसे लाभान्वित भी हो रहा था, और उसने सोचा कि गंगा भी अवश्य उनसे लाभान्वित हो रही होगी। अतएव उसने निश्चय किया कि वह उनमें विघ्न नहीं डालेगा।

परन्तु उसकी पलकें बोझिल देखकर गंगा ने स्वयं कहा, "अब तुम सो जाओ। दिन भर की यात्रा के पश्चात बहुत थके होंगे ।"

"हाँ, थका तो हूँ", चन्द्रशेखर ने क्षमा-याचना सी करते हुए कहा ।

गंगा ने पूछा, "वस्त्र आदि क्या यहीं रख लूँ ?"

"जहाँ हैं वहीं रहने दो। तुम तो वहाँ रहोगी ही ।"

वह बोली, "मैं वहाँ नहीं रहूँगी ।"

"क्यों ? मैंने तुम्हारे ही कारण दुहरा प्रबंध किया है।"

"तुमने बड़ी कृपा की। परन्तु मैं वहाँ नहीं रहूँगी। मैं अकेली नहीं रहूँगी। मुझे भय लगता है।"

"भय लगता है ? तुम यहाँ रहोगी !" चन्द्रशेखर ने विस्मित स्वर में कहा। विस्मयातिरेक से उसकी पलकों पर झुकती हुई नींद पलायन करने लगी थी।

"हाँ, यहाँ तुम्हारे पास रहूँगी तो भय नहीं होगा। कितनी विचित्र बात है, है न ? आज से पहले तुम्हें देखा तक नहीं था, फिर भी तुम्हारे निकट मुझे तनिक भी भय नहीं लगता है। ऐसा क्यों है ?"

"परन्तु यहाँ......यहाँ तुम कैसे रहोगी ?" चन्द्रशेखर ने कहा।

"मुझे तनिक भी असुविधा नहीं होगी। तुम्हें भी नहीं होने दूँगी।" कहकर वह चन्द्रशेखर को फिर आपत्ति करने का अवसर दिये बिना उठकर चली गयी।

कुछ समय पश्चात् जब वह सामान लेकर लौटी तब चन्द्रशेखर उठकर बैठ चुका था। यह देखकर वह द्वार पर ही खड़ी हो गयी और बोली, "अरे, तुम उठकर क्यों बैठ गये ? लगता है तुम्हें मेरा यहाँ रहना अच्छा नहीं लग रहा है। तो लो, मैं जा रही हूँ। वहीं पड़ी रहूँगी।"

उसे द्वार पर से ही लौटते देखकर चन्द्रशेखर ने पुकार कर कहा, "ऐसा नहीं है, गंगा। तुम जा कहाँ रही हो ? तुम्हें यहीं सोना होगा।"

"और तुम ?" गंगा ने लौटते हुए कहा "इसी प्रकार बैठे रहोगे ? मेरे कारण जागरण करोगे ?"

"नहीं। लो, मैं भी लेट रहा हूँ।" और वह फिर लेट गया।

तब गंगा ने उसके पैरों की ओर धरती पर अपने लिए व्यवस्था की, कपाट बंद किये, और आंचल से दीपक बुझा दिया। इसके पश्चात् वह बिना कुछ बोले आकर लेट गयी। चन्द्रशेखर उसकी सारी चेष्टाओं को ध्यान से देख रहा था। वह बोला, "इसी कारण तो मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। तुम धरती पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेटोगी ?"

"कुछ नया नहीं करूँगी," गंगा ने उत्तर दिया। "मुझे शैया पर शयन करने का अभ्यास नहीं है। सदा धरती पर ही लेटती हूँ। मुझे उसकी गोद में बड़ा सुख मिलता है। धरती सबकी माता होती है न ?"

चन्द्रशेखर मौन हो गया, परन्तु कुछ समय पश्चात न जाने क्या सोच कर फिर बोला, "तुम्हारे लिए कुछ वस्त्रों की आवश्यकता पड़ेगी ?"

वह निद्रा के स्वर में बोली, "अभी लेने जा रहे हो क्या ?"

"सोच रहा था। आवश्यकता तो पड़ेगी ही ?"

"हो जाएँगे तो सुविधा रहेगी, नहीं होंगे तो भी निर्वाह होता रहेगा।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "कल क्रय कर लाऊँगा।"

गंगा ने कुछ नहीं कहा।

चन्द्रशेखर फिर बोला, "कल मध्याह्न तक यहाँ से प्रस्थान करेंगे।"

जब गंगा ने इसका भी कुछ उत्तर नहीं दिया तब चन्द्रशेखर को मौन हो जाना पड़ा, और इस बार के मौन को गंगा ने नहीं, गंगा की निद्रा ने भंग किया जो, उसके जागरण के समान, अत्यधिक मुखर थी।

गंगा लेटते ही सो गयी थी, परन्तु चन्द्रशेखर को विलम्ब तक निद्रा नहीं आयी। वह पड़ा-पड़ा न जाने क्या-क्या सोचता रहा, और उसके विचारों का सम्बंध लक्ष्मी से तनिक भी नहीं था। किन्नरी का मुख अवश्य कभी-कभी उभर आता था।

निद्रा उसे विलम्ब से आयी, परन्तु कब आयी यह वह स्वयं भी नही जान पाया। सोचते-सोचते न जाने कब उसकी पलकें अपने आप झुक गयीं और वह सो गया। और सोया भी ऐसा कि कोई सरलतापूर्वक उसे जगा नहीं सकता था।

जब उसकी आँखें फिर खुलीं तब प्रभात हो चुका था और गंगा वहाँ नहीं थी। परन्तु चन्द्रशेखर ने शैया छोड़कर धरती पर पांव रखा ही था कि वह आ उपस्थित हुई और उसके चरण स्पर्श करती हुई बोली, "यदि आशीर्वाद देना हो तो यही दो कि मुझे भी तुम्हारी जैसी निद्रा आने लगे। इतने निश्चिन्त होकर सोते हो कि मुझे ईर्ष्या होने लगी है।"

"आज ही इतना निश्चिन्त होकर सोया हूँ," चन्द्रशेखर ने कहा, "और उसके लिए तुम्हारा कृतज्ञ हूं।"

"परन्तु उतने नहीं होगे जितनी मैं तुम्हारी हूं," गंगा ने हंसकर कहा। मुझ वास्तव में स्मरण नहीं है कि मैं इतनी निश्चिन्त हो कर इससे पूर्व कब सोई थी। वह तो तड़के उठकर स्नान कर लेने का अभ्यास पड़ गया है, अन्यथा मैं तुमसे पहले कभी नहीं उठती।"

अब चन्द्रशेखर ने ध्यान से उसकी ओर देखा। उसके मुख पर वह विशेष प्रकार की स्वच्छता और प्रफुल्लता थी जो स्नान के पश्चात आती है। वह बोला, "परन्तु गंगा, तुमने अभी मेरे चरण क्यों छुए ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गंगा ने उत्तर मानों पहले से सोच रखा था। तुरन्त बोली, "यह भी कोई प्रश्न हुआ ? स्नान के पश्चात सभी अपने-अपने देवता के चरण स्पर्श करते हैं। फूल कहीं मिले नहीं, अन्यथा मैं तो माल्यार्पण भी करती। हाँ, जल ले आयी हूँ, बाहर रखा है।"

"परन्तु गंगा······"

"यह सब फिर किसी समय कह लेना, मैं भागी नहीं जा रही हूँ। देखते नहीं हो वैसे ही कितना विलम्ब हो गया है ? अभी तुम्हें हाट जाना है।"

"मुझे स्मरण है," चन्द्रशेखर ने कहा, "तुम्हारे लिए वस्त्र लाने हैं। बिछाने और ओढ़ने के लिए भी व्यवस्था करनी है।"

गंगा बोली, "मैं वस्त्रों के लिए उतावली नहीं हो रही हूँ। रात्रि में ही कह दिया था कि उनके बिना निर्वाह कर सकती हूँ। परन्तु कुछ खाद्य-सामग्री मुझे अभी चाहिए। अन्यथा प्रस्थान से पूर्व तुम्हें भोजन नहीं दे पाऊँगी।"

चन्द्रशेखर ने द्वार की ओर बढ़ते हुए कहा, "मैं निवृत्त होकर अभी हाट जाता हूँ, यद्यपि मुझे आज भोजन की आवश्यकता नहीं है।"

"क्यों ? आज एकादशी है क्या ?"

"रात्रि में ही इतना भोजन कर लिया था कि अब दो दिन तक आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए।"

"परन्तु मुझे पड़ेगी," गंगा ने मुस्कराकर कहा, "क्योंकि रात्रि में तुमने मेरे लिए कुछ छोड़ा ही नहीं था।"

इस संक्षिप्त प्रभातकालीन वार्तालाप के परिणामस्वरूप चन्द्रशेखर बड़ी प्रसन्न मुद्रा में बाहर निकला, नित्यकर्म से निवृत्त होकर तथा स्नान करके प्रसन्न मुद्रा में ही हाट गया, और जब वहाँ से आवश्यक खाद्य-सामग्री तथा गंगा के लिए वस्त्र लेकर लौटा तब भी बड़ा प्रसन्न था।

गंगा प्रतीक्षा में बैठी-बैठी थक चुकी थी, उसे देखते ही उपालम्भ के स्वर में बोली, "कितना विलम्ब कर दिया। अब प्रस्थान करने में विलम्ब हो तो मुझे दोष मत देना।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "उसका अवसर नहीं आएगा, गंगा। मैंने हाट में जितना समय अधिक व्यय किया है उतना तुम भोजन बनाने में बचा लोगी। अतएव प्रस्थान करने में विलम्ब नहीं होगा।"

परन्तु गंगा का उपालम्भ अभी समाप्त नहीं हुआ था। वह फिर बोली, "और ये इतने सारे वस्त्र क्यों उठा लाये हो ? हे भगवान ! इतनों का यात्रा में होगा क्या ? इन्हें लादेगा कौन ?"

"मैं जो साथ हूँ," चन्द्रशेखर ने हँसकर उत्तर दिया। "और जितने तुम्हारी आवश्यकता से अधिक होंगे उनका प्रयोग भी कर लूँगा।"

निरुत्तर होकर गंगा मुस्कराती हुई भोजन बनाने चली गयी।

चन्द्रशेखर अपने अश्व की परिचर्या में लग गया और उसके पश्चात् पांथशाला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के प्रबंधक के पास जा बैठा। जब वह लौटकर आया तब गंगा भोजन बना चुकी थी।

भोजन करके मध्याह्न से कुछ पूर्व ही वे फिर अपनी यात्रा पर निकल पड़े। नगर-द्वार तक दोनों पयादे ही गये। नगर से बाहर निकलकर अश्वारूढ़ होने का प्रस्ताव करते हुए चन्द्रशेखर ने कहा, "अश्व को पर्याप्त विश्राम मिल चुका है, आज तुम्हें इसकी गति दिखाऊँगा।"

"देखूँगी," गंगा ने उत्साहहीन स्वर में कहा।

"उदास क्यों हो ?" चन्द्रशेखर ने पूछा, "भय लग रहा है ?"

वह बोली, "भय क्यों लगेगा ? तुम्हारे साथ बैठूँगी, तुम जितनी अश्व की गति बढ़ाओगे उतना ही कसकर मैं तुम्हें पकड़ लूँगी। निश्चिन्त रहो, यदि गिरूँगी तो तुम्हारे साथ गिरूँगी, जिसकी अधिक सम्भावना नहीं है।"

चन्द्रशेखर क्षण भर कुछ सोचता रहा, फिर मुस्कराकर बोला, "तुम भी निश्चिन्त रहो, गंगा। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।"

"तो फिर विलम्ब क्यों कर रहे हो ?" गंगा ने कृत्रिम झुँझलाहट के स्वर में कहा, और अपनी दोनों बाँहें फैला दीं।

चन्द्रशेखर ने सहारा देकर उसे अश्व पर चढ़ा लिया। गत दिवस की भाँति उसने अपनी दोनों बाँहें चन्द्रशेखर की कटि में डाल लीं और उसकी पीठ से सटकर बैठ गयी। अश्व चल पड़ा।

गंगा अश्व पर बैठते ही न जाने क्यों मौन हो गयी थी। उसका मौन रहना एक ऐसी अस्वाभाविक घटना थी कि शीघ्र ही चन्द्रशेखर ने उसे लक्ष्य किया और उसकी वाचालता को स्फुरित करने के उद्देश्य से कहा, "जानती हो इस समय हम किस दिशा में चल रहे हैं ?"

"क्या ? तुमने कुछ कहा ?" गंगा ने चौंककर पूछा।

"हाँ, मैंने कहा था जानती हो यह मार्ग कहाँ को जाता है ?"

"नहीं," गंगा ने उत्तर दिया, "उसकी चिन्ता मैं क्यों करूँ ?"

"उचित है," चन्द्रशेखर ने कहा, "यही उचित है। चिन्ता करनी भी नहीं चाहिए। मैंने इस कारण पूछा था कि यह मार्ग मधुपुरी की दिशा में जाता है और हम इस समय वहीं चल रहे हैं। तुम्हें आपत्ति तो नहीं है ?"

"नहीं, मुझे कोई आपत्ति नहीं है," गंगा ने कहा।

"मधुपुरी चलोगी ?"

"तुम जहाँ ले चलोगे, मैं चलूँगी।"

"अपने भाई के पास जाओगी ?"

"तुम कहोगे तो वह भी कर लूँगी !"

क्षण-भर मौन रहने के पश्चात् चन्द्रशेखर ने कहा, "परन्तु मैं तुमसे ऐसा कुछ नहीं कहूँगा, गंगा। मैं तुम्हें मधुपुरी में नहीं छोड़ूँगा। मैं तुम्हें अधिक समय तक अपने साथ रखूँगा। मधुपुरी से बहुत आगे एक महात्मा जी रहते हैं। वे एक बार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालंजर पधारे थे, तभी से मेरे ऊपर विशेष कृपा रखते हैं। मैंने निश्चय कर लिया है कि तुम्हें उन्हीं के पास छोड़ूंगा, सो भी इस कारण कि उससे आगे तुम्हें साथ रखना सुरक्षित नहीं होगा। मेरे लौटने तक तुम महात्माजी के संरक्षण में रहोगी। लौटकर मैं तुम्हें अपने साथ महोत्सवनगर ले चलूंगा।''

गंगा ने कुछ उत्तर नहीं दिया, परन्तु दो बूंद आँसू उसकी आँखों में छलक आये। चन्द्रशेखर बिना सिर पीछे घुमाये उन्हें देख नहीं सकता था, गंगा बिना हाथ मुक्त किये उन्हें पोंछ नहीं सकती थी। अतएव दोनों मोती धीरे-धीरे पलकों से ढुलकर कपोलों पर से फिसलते हुए अपनी स्वामिनी के आंचल में विलीन हो गये।

उधर चन्द्रशेखर कह रहा था, "और अब सावधान हो जाओ। मैं अश्व की गति बढ़ा रहा हूँ। यथासम्भव गिरने नहीं दूंगा, परन्तु सावधान तुम्हें भी रहना चाहिए।''

गंगा सावधान हो गयी। उसने बिना कुछ कहे अपनी दोनों बाँहें और कस लीं, इतनी कस ली कि उसका वक्ष-प्रदेश और चन्द्रशेखर का पृष्ठ-भाग मिलकर एक हो गये।

—२८—

दोनों को इस प्रकार साथ-साथ यात्रा करते हुए पाँच दिन व्यतीत हो गये। इन पाँच दिनों में चन्द्रशेखर ने गंगा को गिरने नहीं दिया, और गंगा ने भी इस दिशा में विशेष प्रवृत्ति प्रदर्शित नहीं की।

पाँचों दिनों की चर्या लगभग एक सी रही। दोनों दिन भर यात्रा करते थे और सन्ध्या को पांथशाला में, मंदिर में, अथवा जहाँ कहीं स्थान मिल जाता था वहाँ रुक जाते थे। गंगा भोजन बनाती थी, निष्ठा पूर्वक चन्द्रशेखर की प्रत्येक सुविधा का ध्यान रखती थी, और प्रातःकाल उठ कर उसके चरण स्पर्श करती थी। श्रीपथ से प्रस्थान करने के पश्चात उसका मौन अधिक समय तक नहीं टिका था। जैसे शरद के निरभ्र नीलाकाश पर कभी-कभी बादल का एक टुकड़ा न जाने कहाँ से आ जाता है और आकर शीघ्र फिर न जाने कहाँ चला जाता है वैसा ही गंगा का मौन भी सिद्ध हुआ था। वह शीघ्र ही फिर बोलने लगी थी और हर समय बोलती रहती थी, मानों वर्षों के दमित मौन की क्षतिपूर्ति केवल कुछ दिनों में कर लेना चाहती हो। चन्द्रशेखर को अब आश्चर्य इस बात का था कि इतना अधिक बोलकर भी वह मूर्खता की कोई बात नहीं कहती थी।

चन्द्रशेखर प्रसन्न था। गंगा ने उसके सम्पूर्ण मानसिक आकाश को बदल दिया था। उसपर निरन्तर छाये रहने वाले द्विधा और द्वंद्व के बादल छंट गये थे, उसकी दिशाओं में व्याप्त संशय और संभ्रम का अन्धकार विदीर्ण हो गया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गंगा के प्रति आत्मीयता का अनुभव वह पहले दिन से ही करने लगा था, और यह आत्मीयता प्रति दिन अधिक गहरी होती जा रही थी। अतएव निकटआ रहे वियोग के सम्बन्ध में सोचना भी उसे अब रुचिकर नहीं प्रतीत होता था।

परन्तु समय व्यक्ति की रुचि अथवा सुविधा की चिन्ता नहीं करता। अनेक बार जब व्यक्ति उसे रोकना चाहता है, अथवा उसकी गति को धीमी करना चाहता है, तो वह व्यक्ति की क्षुद्रता पर विद्रूप-सा करता हुआ और अधिक क्षिप्र हो जाता है। चन्द्रशेखर के साथ उसने ऐसा ही किया। उसके पाँच दिन एक के समान बीत गये और वह अरुचिर घड़ी उड़ती हुई आकर उसके सामने खड़ी हो गयी जब उसे हाथ से संकेत करते हुए कहना पड़ा, "वह देखो गंगा, टीले पर जो मंदिर दिखाई पड़ रहा है वही स्वामी जी की कुटी है। वहीं तुम्हें रहना होगा।

गंगा ने बुझते हुए स्वर में पूछा, "स्वामी जी कैसे हैं ?"

"बहुत वृद्ध हैं," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया," उनकी बरौनियाँ तक श्वेत हो गयी हैं। और सिद्ध पुरुष हैं, सदा भक्तों से घिरे रहते हैं। बोलते बहुत कम हैं।"

गंगा ने कहा," मुझे कम बोलने वाले व्यक्ति अच्छे लगते हैं। मैं स्वयं भी बहुत कम बोलने का प्रयास करती हूँ।"

"अच्छा !" चन्द्रशेखर ने अपनी ग्रीवा पीछे घुमायी।

"हाँ", गंगा ने कहा, "परन्तु तुम्हारे सामने न जाने क्यों सफल नहीं हो पाती हूँ।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं तुम्हारे अधिक बोलने में ही प्रसन्न रहता हूँ। परन्तु स्वामी जी के सामने इसका दशांश भी मत बोलना। वैसे तुम्हारे लिए स्वामी जी के सामने जाना आवश्यक नहीं होगा। परन्तु यदि कभी जाना ही पड़ जाए तो ध्यान रखना।"

गंगा ने कहा, "यदि स्वामी जी न मिले तो मुझे कहाँ रखोगे ?"

इसकी सम्भावना बहुत कम है। स्वामी जी अब इतने वृद्ध हो गये हैं कि अधिक चलने-फिरने योग्य नहीं रह गये हैं। जब तक सामर्थ्य रही तब तक उन्होंने कुटी नहीं बनायी। अब बनायी है तो कहते हैं कि उसी में समाधि लेंगे।

"तुमने उनकी कुटी पहले भी देखी है क्या ?" गंगा ने पूछा।

"हां, मैंने गत वर्ष उनके दर्शन किये थे।"

"तुम गत वर्ष भी इधर आये थे ?"

"आया न होता तो स्वामी जी के दर्शन कैसे करता ?"

"स्वामी जी के दर्शन करने प्रति वर्ष आते हो ?"

"आता तो तुम्हें खोजने था" चन्द्रशेखर ने कहा "परन्तु तुम मिलती नहीं थीं तो स्वामी जी के दर्शन करके लौट जाया करता था।"

"प्रति वर्ष मुझे खोजने आते थे ?" गंगा ने गम्भीर होकर पूछा।

"तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गंगा ने कहा "नहीं-नहीं मुझे पूरा विश्वास है। तुम मिथ्या थोड़ ही कहोगे। मैं कुछ और सोच रही थी।"

"क्या सोच रही थी ? " चन्द्रशेखर ने पूछा।

गंगा ने कहा, "मैं सोच रही थी कि इस जन्म में तुमसे उऋण नहीं हो पाऊंगी। तुमने मेरे लिए जितना कुछ किया है जितना कष्ट उठाया है उतना मैं क्या कभी कर पाऊँगी ? मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है।"

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए ये लोग जिस टीले पर मंदिर स्थित था उसके नीचे तक आ गये, अब केवल थोड़ी सी चढ़ाई शेष रह गयी थी।

चन्द्रशेखर ने अश्व वहीं रोक कर कहा "तुम्हारी सामर्थ्य मैं देख चुका हूँ. गंगा तुम कभी किसी की ऋणी नहीं रहोगी। ऋणी यदि कोई है तो मैं हूँ। मैंने कुतूहलवश तुम्हें अपने साथ लिया था परन्तु उसके पश्चात से तुमने मेरे साथ जितना किया है उसे मैं ही जानता हूँ। परन्तु इस सम्बंध में इस समय और अधिक चर्चा व्यर्थ होगी। यात्रा से लौट आऊं तब करूंगा। और अब हमें अश्व से उतरना है। यहाँ से ऊपर कुटी तक पयादे चलेंगे।"

गंगा की बाँहें चन्द्रशेखर की कटि के चारों ओर अधिक कस गयीं। उसने कहा, "अभी एक प्रश्न और है, उसका उत्तर पाये बिना मैं अश्व पर से नहीं उतरूंगी। तुम्हें भी नहीं उतरने दूंगी।"

चन्द्रशेखर ने पूछा, "प्रश्न क्या है ?"

"तुम यात्रा से कब तक लौटोगे ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत कठिन है, गंगा। मुझे यहाँ से स्थानेश्वर जाना है। वहाँ युद्ध की आशंका है, इसी कारण तुम्हें साथ नहीं ले चल रहा हूँ। स्थानेश्वर में तीन-चार दिन रुकने के पश्चात् यदि आवश्यक हुआ तो और आगे जाऊँगा, अन्यथा लौट आऊँगा। इस कारण निश्चय के साथ कुछ भी कहना असम्भव है। दस दिन में लौटकर आ सकता हूँ और दो-तीन मास भी लग सकते हैं। निश्चित रूप से केवल इतना कह सकता हूँ कि आवश्यकता से अधिक एक दिन का भी विलम्ब नहीं करूंगा। बस अब उतरो।"

गंगा ने बिना कुछ और कहे अपनी बाँहें ढीली कर दीं, और दोनों अश्व से उतरकर मौन, धीरे-धीरे टीले के ऊपर चढ़ने लगे।

कुछ क्षण पश्चात, गंगा ने सहसा फिर कहा, "स्थानेश्वर में युद्ध हो रहा है ?"

"अभी तो नहीं हो रहा है," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "परन्तु आशंका है। कल रात्री पांथशाला में जो यात्री मिले थे वे वहीं से भागकर आ रहे थे।"

"भाग क्यों रहे थे ? यह तो कायरता हुई ।"

"वे सैनिक नहीं थे, न रणक्षेत्र से भाग रहे थे ?"

"फिर कहाँ से भाग रहे थे ? क्यों भाग रहे थे ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रशेखर ने कहा, "स्थानेश्वर से इस समय काफी लोग भाग रहे हैं। कहते हैं वहाँ तुरुष्कों का आक्रमण होने वाला है, युद्ध होगा।"

"तो हुआ करे, गंगा ने कहा, "युद्ध तो होते ही रहते हैं। अपने यहाँ भी होते हैं। परन्तु उनके कारण कोई अपनी भूमि और अपना घर छोड़ कर नहीं चला जाता है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "तुम तुरुष्कों जानती नहीं हो, इस कारण नहीं समझ पा-रही हो। वे अपने देश के नहीं हैं, विदेशी हैं, और विधर्मी हैं। उनका धर्म हमारे धर्म से भिन्न है और उनके युद्ध भी हमारे युद्धों से भिन्न होते हैं। वे स्त्रियों का अपहरण कर लेते हैं, नागरिकों पर अत्याचार करते हैं, ग्रामों को ध्वस्त और खड़े खेतों को भस्मसात करते चलते हैं। इस कारण उनके आने की सम्भावना होते ही प्रजा त्रस्त होकर इधर-उधर भागने लगती है।"

क्षण भर मौन रहने के पश्चात् गंगा ने कहा, "यदि ऐसा हो तो तुम्हीं ऐसे समय में स्थानेश्वर क्यों जा रहे हो ? फिर कभी चले जाना।"

बात इतनी सरल गम्भीरता के साथ कही गयी थी कि चन्द्रशेखर को हँसी आ गयी, परन्तु उसे छिपाते हुए बोला, "मेरा कार्य बहुत आवश्यक है, गंगा! उसे अभी होना है। यदि नहीं होगा तो बड़ी हानि हो जाएगी। फिर भी यदि तुम कहो तो मैं नहीं जाऊँगा। बोलो न जाऊँ ?"

गंगा ने कहा, "जिसमें तुम्हारी हानि हो वह करने को मैं कभी न कहूँगी, परन्तु······"और वह वाक्य अधूरा छोड़कर मौन हो गयी।

"मैं तुम्हारी चिन्ता को भली प्रकार समझ रहा हूँ, गंगा," चन्द्रशेखर ने कहा, "और यदि विवशता न होती तो तुम्हें छोड़कर कभी न जाता। परन्तु विश्वास रखो, मैं तुम्हारे पास लौटकर आऊँगा और उसके लिए तुम्हें अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।"

"वचन देते हो ?" गंगा ने कहा।

"हाँ, वचन देता हूँ।"

गंगा मौन हो गयी और दोनों चुपचाप ऊपर चढ़ने लगे। टीला अधिक ऊँचा नहीं था, वे शीघ्र उसके उपर पहुँच गये जहाँ मंदिर स्थित था। मंदिर के दक्षिण पार्श्व में स्वामीजी की कुटी थी।

कुटी के निकट पहुँच कर चन्द्रशेखर ने अश्व को एक वृक्ष से बाँध दिया और गंगा को उसी के निकट छाया में बैठाकर स्वयं कुटी में प्रवेश किया। कुछ समय पश्चात् जब वह फिर बाहर निकला तब उसके साथ एक व्यक्ति और था। वह व्यक्ति मंदिर की ओर चला गया, और चन्द्रशेखर ने गंगा के पास आकर कहा, "स्वामी जी हैं। तुम्हारे रहने की व्यवस्था हो गयी है। चलो !"

गंगा उठकर चुपचाप उसके पीछे चल दी। मंदिर की प्राचीर के भीतर एक पंक्ति में यात्रियों के ठहरने के लिए कुछ कोठरियाँ बनी थीं। इन्हीं में से एक में गंगा के लिए व्यवस्था की जा रही थी। जो व्यक्ति चन्द्रशेखर के साथ स्वामीजी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की कुटी से निकला था वह वहाँ उपस्थित था। चन्द्रशेखर ने परिचय कराया, "ये आत्मानन्द अपने विश्वस्त व्यक्ति हैं। मेरी अनुपस्थिति में ये ही तुम्हारे अभिभावक होंगे। तुम्हें जो भी आवश्यकता हो, इनसे कहना!"

इस प्रकार गंगा को उसके रहने का स्थान दिखाकर और आत्मानन्द को जल लाने के लिए भेजकर चन्द्रशेखर स्वयं भी फिर कुटी के भीतर चला गया। जब वह लौट कर आया तब तक गंगा चारों ओर घूमकर स्थान का निरीक्षण कर चुकी थी। आत्मानन्द जल ले आया था और उसके साथ थोड़ा प्रसाद भी रख गया था। चन्द्रशेखर ने गंगा के पास बैठकर उसे भी प्रसाद दिया और स्वयं भी ग्रहण किया। इसके पश्चात् जल पीकर वह उठ खड़ा हुआ और बोला, "अब मैं चल रहा हूँ, गंगा। पहले विचार था कि रात्रि में यहीं विश्राम करके प्रातःकाल प्रस्थान करूंगा। परन्तु अब सोचता हूँ कि जितना विलम्ब प्रस्थान में करूँगा उतना ही लौटने में भी होगा ?"

गंगा के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला।

चन्द्रशेखर ने फिर कहा, "न जाऊँ ?"

गगा उस बार भी कुछ नहीं बोली, परन्तु उसने झुककर चन्द्रशेखर के चरण स्पर्श कर लिए, जो उसकी मौन अनुमति का सूचक था।

चन्द्रशेखर ने कहा, "तुम व्यर्थ चिन्तित हो, गंगा। मैं शीघ्र लौट आऊँ-गा।"

"प्रतिज्ञा करते हो ?" गंगा ने क्षीण स्वर में कहा।

चन्द्रशेखर ने कहा, "हाँ, शीघ्र लौट आऊँगा।

"तो जाओ," गंगा बोली, "मैं निश्चिंत रहूँगी। और तुम भी निर्भय होकर जाओ, मेरे देवता तुम्हारी रक्षा करेंगे।"

चन्द्रशेखर बिना कुछ और कहे शीघ्रतापूर्वक मंदिर से बाहर निकल आया और अश्व पर आरूढ़ होकर धीरे-धीरे टीले से नीचे उतरने लगा। समतल भूमि पर पहुँचते ही उसने अपनी गति बढ़ा दी। वह वास्तव में यथासम्भव शीघ्र स्थानेश्वर पहुंचना चाहता था।

उसकी शीघ्रता का कारण वह सूचना थी जो उसे आत्मानन्द से प्राप्त हुई थी। सूचना यह थी कि स्थानेश्वर पर एक सप्ताह के भीतर आक्रमण होने वाला है जिसकी सम्भावना से भयभीत स्थानेश्वर नरेश पलायन का निश्चय कर चुके हैं।

आत्मानन्द उस क्षेत्र में नियुक्त चन्देल राज्य का मुख्य गुप्तचर था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

—२९—

जिस स्थान पर चन्द्रशेखर ने गंगा को छोड़ा था वह स्थानेश्वर से बहुत दूर नहीं था। अन्तर केवल तीन दिन की यात्रा का था, जिसे वह अब दो दिन में ही पूरा कर लेना चाहता था। इससे विशेष लाभ नहीं होना था, यह वह भली प्रकार जानता था। फिर भी स्थिति को देखने और समझने के लिए वह महमूद से पहले स्थानेश्वर पहुँच जाना चाहता था। उसकी इस उतावली का मूल्य उसके अश्व को चुकाना पड़ रहा था।

शरणार्थी पहले से ही मिलने लग गये थे, अब चन्द्रशेखर जैसे-जैसे आगे बढ़ता जा रहा था वैसे-वैसे उनकी संख्या भी बढ़ती जा रही थी। इसका अत्यन्त असुविधाकर अनुभव उसे रात्रि में हुआ। जब तक तनिक भी प्रकाश रहा तब तक वह चलता रहा। परन्तु जब अन्धकार बढ़ने लगा तो उसने प्रथम उपलब्ध पांथशाला में रात्रि व्यतीत करने का निश्चय किया। पांथशाला तो उसे समय से मिल गयी, परन्तु उसमें रात्रि व्यतीत करने का स्थान नहीं मिला। सम्पूर्ण पांथशाला यात्रियों से भरी थी जिनमें स्त्रियों, वृद्धों तथा बालकों की संख्या अधिक थी। परिणामतः चन्द्रशेखर को पांथशाला से बाहर एक वृक्ष के नीचे शीत में स्थान मिला। वहाँ उसने अपना अश्व बाँधा और ऊँजी-नीची धरती पर सोने का प्रबन्ध किया। वह उस समय भोजन से अधिक विश्राम की आवश्यकता का अनुभव कर रहा था।

परन्तु वह लेटा ही था कि शरणार्थियों के एक बड़े दल ने, जिसे उसकी भाँति पांथशाला के भीतर स्थान नहीं मिला था, उसी वृक्ष के नीचे आ डेरा जमाया। उसमें एक वृद्ध था जो वय तथा व्यवहार से कुलपिता प्रतीत होता था, तीन युवक थे जो उस वृद्ध के पुत्र प्रतीत होते थे, विविध वय की कई स्त्रियाँ थीं, और बालक बालिकाओं की एक पूरी सेना थी। उनके आते ही उस वृक्ष के नीचे ऐसा कोलाहल आरम्भ हो गया कि चन्द्रशेखर की पलकों से निद्रा पलायन कर गयी और कुछ समय पश्चात् वह खीझकर उठ बैठा। उसे बैठा देखकर वृद्ध कुलपति भी उसके निकट आ खड़ा हुआ और बोला, "क्षमा करना, आयुष्मान, हमारे कारण तुम्हें भी बड़ी असुविधा हो रही है।"

चन्द्रशेखर ने रूखे स्वर में संक्षिप्त उत्तर दिया, "यात्रा का दूसरा नाम ही असुविधा है।" वह वार्तालाप का सूत्र बढ़ाना नहीं चाहता था।

परन्तु वह वृद्ध वार्तालाप करना ही चाहता था। उसके दल की स्त्रियाँ अग्नि प्रज्वलित कर चुकी थीं और अब प्रकाश में भोजन बनाने की व्यवस्था कर रही थीं। बाल-सेना अग्नि के चारों ओर घेरा डाल कर बैठी बाल सुलभ विग्रह में संलग्न थी। तीनों युवक सुरक्षा तथा विश्राम की व्यवस्था में व्यस्त थे। वृद्ध कुलपति केवल बातें कर सकता था, जिसके लिए उस समय उसे एक श्रोता की आवश्यकता थी। अतएव उसने कहा, "मैंने तुम्हें पांथशाला में देखा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभी-अभी आ रहे हो ?''

''हाँ'', चन्द्रशेखर ने कहा।

''और आते ही सोने की व्यवस्था करने लगे ! भोजन कर लिया ?''

''भोजन नहीं करूँगा'', चन्द्रशेखर ने बोझिल स्वर में उत्तर दिया।

परन्तु वृद्ध का उत्साह क्षीण नहीं हुआ। वह बड़ी आत्मीयता के स्वर में बोला, ''क्यों ? कुछ अस्वस्थ हो क्या ? मुझे बताओ, क्या कष्ट है ?''

''मुझे कोई कष्ट नहीं है'', चन्द्रशेखर ने कहा।

''तो फिर भोजन क्यों नहीं करोगे ? ऐसे भला कब तक चलेगा ? यह तो यात्रा का पहला सिद्धान्त है। पर्याप्त भोजन और पर्याप्त विश्राम यात्री की प्रथम आवश्यकताएँ हैं। मैं इसी सिद्धान्त के सहारे काशी से कश्मीर तक भ्रमण कर आया हूँ। दिन भर चला, संध्या को पेटभर भोजन किया, और रात्रि में नींद भर सोया। बस, न कभी अस्वस्थ हुआ, न थका। ऐसा ही तुम्हें भी करना चाहिए, और यदि नहीं करोगे तो मैं कराऊँगा। मैं तुम्हारे पिता की आयु का हूँ, मुझे अधिकार है। भोजन बन रहा है, अपने सामने बैठा कर खिलाऊँगा तब सोने दूँगा।'' और इस प्रकार अधिकार पूर्ण निमंत्रण देकर वह निस्संकोच चन्द्रशेखर के निकट बैठ गया।

चन्द्रशेखर ने कहा, ''इस समय मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है।''

परन्तु वृद्ध के पास प्रत्येक आपत्ति का उत्तर था। उसने कहा, ''थक अधिक गये हो इस कारण ऐसा लग रहा है। जब हाथ-मुँह धोकर बैठोगे और भोजन सामने होगा तब इच्छा भी होने लगेगी। मुझे इसका व्यक्तिगत अनुभव है।''

''परन्तु......'' चन्द्रशेखर ने अन्तिम, क्षीण आपत्ति की।

''हम ब्राह्मण हैं,'' वृद्ध ने उसे टोकर कहा, ''और मधुपुरी के निवासी हैं। स्थानेश्वर में भी अपना घर है। वहाँ मैं आयुर्वेद का अभ्यास करता हूँ और मेरे दो पुत्र राजकर्मचारी हैं। तुम कहाँ के निवासी हो, आयुष्मान ?''

''श्रीपथ का'', चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।

''अर्थात् अपने ही क्षेत्र के हो ! तब तो तुम्हें मेरा निमंत्रण स्वीकार ही करना पड़ेगा। इस समय श्रीपथ ही चल रहे हो न ?''

''मैं इस समय स्थानेश्वर जा रहा हूँ,'' चन्द्रशेखर ने कहा !

''स्थानेश्वर जा रहे हो !'' वृद्ध ने ऐसे स्वर में दुहराया कि इस अंधकार में भी उसकी मुद्रा की सरलतापूर्वक कल्पना की जा सकती थी। उसके स्वर में विस्मय की इतनी अधिक मात्रा थी मानों चन्द्रशेखर ने नागलोक अथवा इन्द्र-लोक जाने की नितान्त असम्भव बात कह दी हो।

चन्द्रशेखर ने कहा, ''हाँ, मुझे स्थानेश्वर जाना है। क्या कल संध्या तक वहाँ पहुँच सकता हूँ ?''

''दिन-भर चलते रहो तो पहुँच अवश्य सकते हो,'' वृद्ध ने उत्तर दिया, ''परन्तु मैं तुम्हें इस समय स्थानेश्वर जाने का परामर्श नहीं दूँगा। विचित्र बात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है ! सारा लोक स्थानेश्वर से भाग रहा है। प्रजा भाग रही है, महाराज भाग रहे हैं। और तुम हो कि ऐसे समय में स्थानेश्वर जा रहे हो, और इतने उतावले हो कि कल संध्या से पूर्व ही पहुँच जाना चाहते हो ! ऐसा वहाँ क्या अटका है ?"

"माता ने कभी मान्यता मानी थी, सो भगवान चक्रधर को भेंट चढ़ानी है," चन्द्रशेखर ने बताया।

"तो तुम मेरे साथ लौट चलो," वृद्ध ने निर्णय-सा देते हुए कहा, "और समझ लो कि तुमने भेंट चढ़ा दी है ! जो वर्षों से भगवान की अर्चना-आराधना करते रहे हैं, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी सेवा में व्यतीत किया है, वे भी इस समय स्थानेश्वर से भाग रहे हैं। उन्हें भी भगवान चक्रधर की शक्ति का विश्वास नहीं रह गया है। और तुम हो कि दौड़ते-भागते मृत्यु के मुख में चले जा रहे हो ! मेरा कहना मानो और हमारे साथ लौट चलो। यदि भगवान स्वयं अपनी रक्षा कर लें तो फिर कभी आकर भेंट चढ़ा जाना।"

चन्द्रशेखर ने अनजान बनकर पूछा, "परन्तु हुआ क्या है ? तुम इतने भयभीत क्यों हो ? लोक स्थानेश्वर से भाग क्यों रहा है ?"

"तुम्हें ज्ञात नहीं है क्या ?" वृद्ध ने स्वर नीचा करके कहा, "स्थानेश्वर पर महमूद तुरुष्क का आक्रमण हो रहा है।"

"आक्रमण हो रहा है !" चन्द्रशेखर ने आश्चर्य प्रदर्शित किया, "क्या महमूद तुरुष्क स्थानेश्वर पहुँच चुका है ? क्या वहाँ युद्ध हो रहा है ?"

"नहीं, अभी युद्ध नहीं हो रहा है। परन्तु महमूद को तुम नहीं जानते हो। वह आँधी की गति से चलता है। किसी दिन, किसी क्षण स्थानेश्वर में आ खड़ा हो सकता है। इसी कारण सब वहाँ से भाग रहे हैं।"

"क्या महाराज भी नगर छोड़कर चले गये हैं ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"मैं चला था तब तक तो नहीं गये थे। परन्तु चर्चा नगर भर में थी।"

चन्द्रशेखर का स्वर उत्तेजित हो गया। उसने कहा, "विचित्र बात है ? राजा भी पलायन कर रहा है, प्रजा भी पलायन कर रही है, और दोष देवता के सिर मढ़ा जा रहा है ! क्या भगवान ने तुम से कहा है कि देश, जाति और धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों का दाँव न लगाओ ? धर्म क्या कायरता सिखाता है ? और भागकर क्या कभी आँधी से बचा जा सकता है ?"

"तुम अभी युवा हो, वत्स," वृद्ध ने अविचलित भाव से कहा, मानों गुरु शिष्य को उपदेश कर रहा हो। "तुम्हारा रक्त अधिक उष्ण है, और तुम्हारे सिर पर उत्तरदायित्व का भार नहीं है। अतएव तुम जो चाहो कह सकते हो, और मुझे पूर्ण विश्वास है कि जैसा कहते हो, वैसा कर भी सकते हो। परन्तु यदि तुम मेरी स्थिति में होते, अर्थात् वृद्ध होते और तुम्हारे सिर पर सम्पूर्ण परिवार की सुरक्षा का उत्तरदायित्व होता, तो तुम भी वही करते जैसा मैं कर रहा हूँ। वीरता और विवेक में केवल अवस्था का अन्तर होता है, वत्स !"

चन्द्रशेखर और चिढ़ गया। बोला, "क्या तुम समझते हो कि भाग कर अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिवार की सुरक्षा कर लोगे ? क्या महमूद वहाँ तक नहीं पहुँच सकेगा जहाँ तुम जा रहे हो ? यह उसे रोकने का उपाय नहीं है। उसका उपाय केवल एक है—विरोध, संघर्ष, युद्ध तथा बलिदान। पलायन महमूद का मार्ग प्रशस्त करता है। जिस प्रकार वह पुष्पपुर से नगरकोट और उद्‌भाण्ड आ पहुँचा है और आज स्थानेश्वर को आक्रान्त करने चला आ रहा है, उसी प्रकार कल उसकी सेना मधुपुरी और श्रीपथ में होगी। तब तुम क्या करोगे ? कहाँ जाओगे ?"

वृद्ध अनुभव करने लगा था कि उसका पक्ष बहुत सबल नहीं है। अतएव उसने कहा, "तुम सम्भवतः सत्य कह रहे हो, वत्स ! परन्तु इसमें हमारा क्या दोष है ? हम मात्र प्रजा हैं, राजाज्ञा का पालन और अपने परिवार का पोषण करना भर जानते हैं। हमें सुरक्षा प्रदान करना राजा का कर्तव्य है। जब वही अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, और स्वयं अपनी सुरक्षा के लिए पलायन का मार्ग खोजता है तो हम उसका अनुकरण करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते हैं ?"

"कर क्यों नहीं सकते ?" चन्द्रशेखर ने कहा। "यह सत्य है कि सबसे अधिक दोष हमारे शासकों का है जो परस्पर के विग्रह में ही अपने शौर्य और साधनों का दुरुपयोग करते रहते हैं तथा बाह्य शत्रु के सम्मुख मित्रता की भिक्षा माँगने लगते हैं अथवा अपनी प्रजा के समक्ष पलायन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। परन्तु शास्त्रों का मत है कि जो राजा अपनी प्रजा की रक्षा नहीं करता उसे शासन करने का कोई अधिकार नहीं रह जाता है। अपने कर्तव्य से च्युत होते ही वह अपने अधिकारों से भी वंचित हो जाता है। ऐसी स्थिति में प्रजा को अपनी, अपने देश की तथा अपने धर्म की रक्षा का उत्तरदायित्व स्वयं सँभाल लेना चाहिए।"

"अवश्य सँभाल लेना चाहिए," वृद्ध ने कहा, "परन्तु कौन सँभाले ? और कैसे सँभालें ? बात सुनने में जितनी अच्छी लगती है, व्यवहार में उतनी ही कठिन है, और मैं तो कहूँगा कि असम्भव है। और फिर, हमारे महाराज का दोष भी नहीं है। क्या वे अकेले महमूद का अवरोध कर सकते हैं ? देश में और अनेक शासक भी तो हैं। धर्म और जाति की रक्षा करना उन का भी कर्तव्य है। परन्तु वे सब सो से रहे हैं, एक भी हमारे महाराज की सहायता के लिए नहीं आया है।"

"जब उद्‌भाण्ड के महाराज जयपाल महमूद के विरुद्ध युद्ध कर रहे थे तब तुम्हारे महाराज उनकी सहायता करने गये थे ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

वृद्ध असमंजस में पड़ गया। प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दे देना बहुत सरल था परन्तु उस नकारात्मकता का औचित्य सिद्ध करना कठिन था। परन्तु उसके सौभाग्य से इसी समय उसकी बाल सेना की एक टुकड़ी ने कोलाहलपूर्वक आकर उसे घेर लिया और एक आठ-नौ वर्ष की बालिका, जो उसका नेतृत्व कर रही थी, बोली, "कल वाली कथा क्या पूरी नहीं करोगे, दादा ? हम कथा सुने बिना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न सोएँगे, न तुम्हें सोने देंगे।"

इसके परिणामस्वरूप वृद्ध को उठकर वहाँ जाना पड़ा जहाँ शेष बाल-सेना पहले से ही अग्नि के निकट व्यूहाकार बैठी थी। वह उसके मध्य में बैठ कर गत रात्रि की कथा पूरी करने लगा। इधर चन्द्रशेखर को भी वांछित एकान्त मिल गया और वह अपने विचारों में खो गया। इस समय उसके मस्तिष्क में महमूद और स्थानेश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

कथा पूरी कर के वृद्ध जब भोजन के लिए उसे बुलाने आया तब चन्द्रशेखर लेट चुका था परन्तु सोया नहीं था। भूख उसे लग रही थी और वह जानता था कि उसका आगामी दिन पूरा यात्रा में ही व्यतीत होगा। अतएव उसने केवल थोड़ा-सा संकोच और व्यक्त करके वृद्ध तथा उसके पुत्रों के साथ भोजन किया। भोजन के समय विशेष वार्तालाप नहीं हुआ, परन्तु जब चन्द्रशेखर उठकर चलने लगा तब वृद्ध ने फिर पूर्ववत् अधिकार के स्वर में घोषणा की, "मैं तुम्हेंस थानेश्वर नहीं जाने दूँगा।" चन्द्रशेखर ने इस घोषणा का कोई व्यक्त विरोध नहीं किया।

परन्तु रात्रि का अवसान होते ही, सुर्योदय से कुछ पूर्व वह अश्वारूढ़ स्थानेश्वर की दिशा में चला जा रहा था। वृद्ध तथा उसके प्रचुर परिवार के अन्य सदस्य अभी सोकर नहीं जगे थे।

—३०—

भली प्रकार भोर हो चुकने के पश्चात् चन्द्रशेखर एक सरोवर के निकट पहुँच कर रुका। वहाँ उसने अश्व को सरोवर के तटवर्ती शाद्वल क्षेत्र में उदर-पोषण करने के लिए अबाध छोड़ दिया और स्वयं नित्य-कर्म से निवृत्त होकर स्नान किया। इसके पश्चात् वह फिर अश्वारूढ़ होकर चल पड़ा।

वह यथासम्भव शीघ्र स्थानेश्वर पहुँच जाना चाहता था और उसके लिए यथासम्भव प्रयास भी कर रहा था। परन्तु स्थानेश्वर पहुँचकर करना क्या होगा? इन प्रश्न का उत्तर वह प्रयास करके भी नहीं खोज पा रहा था।

स्पष्ट था कि महमूद इस समय तक स्थानेश्वर के बहुत निकट आ चुका होगा। यह भी स्पष्ट था कि स्थानेश्वर की सहायता के लिए कहीं से कोई सेना नहीं आयी है और स्थानेश्वर के पास महमूद का अवरोध करने के लिए पर्याप्त अपनी सेना नहीं है। यदि होती तो स्थानेश्वर-नरेश पलायन का विचार न करते। ऐसी स्थिति में अकेला चन्द्रशेखर स्थानेश्वर पहुँच कर भी क्या कर सकता था, किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकता था? यदि युद्ध की बात होती तो वह अकेला भी उसमें योग तो दे ही सकता था। परन्तु यहाँ युद्ध का प्रश्न ही नहीं था। फिर वह क्या करेगा?

युवराज विद्याधर ने उसे स्थानेश्वर में ऐसे सम्पर्क स्थापित करने का कार्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौंपा था जो भविष्य में, यदि महमूद और आगे बढ़े और चन्देलों के साथ उसका संघर्ष हो तब, सहायक सिद्ध हो सकें। युवराज की योजना अच्छी और व्यावहारिक थी। चन्द्रशेखर को विश्वास था कि वह सफल सिद्ध होगी। परन्तु वर्तमान स्थिति में स्थानेश्वर पहुँचकर उसे आगे बढ़ाना भी सम्भव नहीं था। यह निश्चित था कि किस प्रकार के व्यक्तियों के साथ उसे सम्पर्क स्थापित करना था वैसा एक भी इस समय स्थानेश्वर में नहीं मिलेगा। फिर वह वहाँ क्यों जा रहा है ?

परन्तु यह सब सोचकर भी चन्द्रशेखर ने न अपनी दिशा बदली, न गति में ही अन्तर आने दिया; क्योंकि इस समय महमूद से पहले स्थानेश्वर पहुँच जाने में एक बहुत बड़े लाभ की सम्भावना भी थी। वह नगर में कहीं छिपकर महमूद की गतिविधियों पर दृष्टि रख सकता था। और यदि तुरुष्क वहाँ से आगे बढ़ें तो धिल्लिका, श्रीपथ और मधुपुरी को उसके आक्रमण की पूर्व-सूचना दे सकता था। अतएव वह बिना अपने अथवा अश्व के भोजन-विश्राम की चिन्ता किये द्रुत गति से अविराम चलता रहा। मध्याह्न आया और चला गया, अपराह्न आया और व्यतीत हो गया, परन्तु चन्द्रशेखर समय-सा अविराम चलता रहा। सूर्य नीचे उतरता-उतरता क्षितिज के छोर पर जा पहुँचा, उसका बिम्ब रक्ताभ हो गया। उसकी यात्रा समाप्त हो चुकी थी; परन्तु चन्द्रशेखर की अभी नहीं समाप्त हुई थी। वह पश्चिम की ओर मुख किए, रक्ताभ सूर्य-बिम्ब की ओर बार-बार देखता हुआ द्रुत गति से चला जा रहा था।

अन्त में जब सूर्य क्षितिज के सारे सोपान उतर कर अदृश्य हो गया और आकाश में, बीत-चुके की स्मृति-सा, उसका धूमिल, पलायनशील आभास मात्र शेष रह गया, तब वृक्षों के एक झुरमुट को पार करते ही सहसा चन्द्रशेखर का गन्तव्य भी उसके सामने साकार हो उठा। शून्य में से निकल कर मन्द-प्रभासित पश्चिमाकाश की पृष्ठिभूमि में मंदिरों के शिखरों की छायाकृतियाँ उभर आयीं। स्थानेश्वर अब उसके सामने था। कुछ ही क्षणों में नगर-प्राचीर की अपेक्षाकृत अधिक काली रेखा भी दिखाई पड़ने लगी। चन्द्रशेखर ने संतोष की साँस ली और अपने अश्व की गति कुछ धीमी कर दी।

परन्तु अनेक बार गन्तव्य सम्मुख होकर भी प्राप्य नहीं होता है और जिसकी कल्पना भी न की गयी हो वह घटित हो जाता है। चन्द्रशेखर के साथ ऐसा ही हुआ। वह अपनी योजना बनाता नगर की ओर बढ़ता चला जा रहा था। परन्तु सहसा उसका आगे बढ़ना असम्भव हो गया और उसे अपना अश्व रोक देना पड़ा। दस-बारह सुसज्जित अश्वारोही न जाने कहाँ से आकर उसके मार्ग में खड़े हो गये थे। चन्द्रशेखर ने अर्ध-प्रकाश में भी दूर से ही उन्हें पहचान लिया। वे तुरुष्क सैनिक थे।

विरोधियों की संख्या इतनी अधिक थी कि उनके बीच से मार्ग बनाकर निकल जाना असम्भव था। अतएव चन्द्रशेखर ने अपने अश्व का मुख दाहिनी ओर को मोड़ दिया। परन्तु मार्ग उस दिशा में भी अवरुद्ध था। चन्द्रशेखर ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पीछे घूमकर देखा। उधर भी तुरुष्क सैनिक आ गये थे, और इस प्रकार उसे घेर-कर अब वे चारों ओर से उसकी ओर बढ़ते चले आ रहे थे।

चन्द्रशेखर का हाथ अपने खड्ग की ओर बढ़ा।

परन्तु तभी उसके मस्तिष्क में एक विचार कौंध गया और उसने शीघ्रता-पूर्वक अपना हाथ खींच लिया। तुरुष्क उसके समीप आ चुके थे। उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठा दिये और उच्च स्वर में पुकार कर कहा, "ठहरो! तुम लोग क्या चाहते हो?"

तुरुष्क सधे हुए से सब एक साथ ठहर गये। केवल एक, जो उस दल का नायक प्रतीक होता था, दो पग आगे बढ़ आया और बोला, "हम तुम्हें कब्जे में करना चाहते हैं—"जिन्दा या मुर्दा।"

"क्यों?" चन्द्रशेखर ने कहा। "मैं परदेशी आदमी हूँ और तुमसे लड़ने नहीं आया हूं। फिर तुम क्यों मुझे कब्जे में करना चाहते हो?"

दल-नायक ने कहा, "तुम कौन हो, क्या हो और कहाँ के हो, इससे हमें कतई सरोकार नहीं है। तुम शहर के अन्दर जाने की कोशिश कर रहे थे, लिहा-जा हम तुम्हें गिरफ्तार करते हैं।"

"मगर मुझे शहर के अन्दर नहीं जाना है।" चन्द्रशेखर ने कहा "मुझे सुल्तान महमूद के पास जाना है। मैं बहुत दूर से आ रहा हूँ और सुल्तान के लिए पैग़ाम लाया हूँ।"

"शादी का?" एक विनोदी तुरुष्क ने पूछा।

"हमारा भी कुछ इंतज़ाम करा दोगे?" दूसरे ने कहा।

उनके नायक ने हाथ उठाकर उन्हें चुप किया और चन्द्रशेखर से कहा, "क्या पैग़ाम है?"

"यह सुल्तान को ही बताया जा सकता है," चन्द्रशेखर ने कहा।

"किसका है?"

"तुम्हें यह भी नहीं बताया जा सकता।"

"तुम्हारे पास कोई शिनाख्त है?"

"नहीं।"

"फिर हमें तुम्हारा यक़ीन कैसे हो?" नायक ने कहा।

"करने से होगा," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया। "तुम किसी तरह सुल्तान के पास तक इतनी खबर पहुँचा दो कि जिस नौजवान से उन्होंने ओहन्द में कुछ देने को कहा था वह आया है। फिर जैसा वह कहें वही करना। मैं कहीं भाग नहीं जाऊँगा।"

नायक ने निकट खड़े हुए अपने एक साथी से धीमे स्वर में कुछ परामर्श किया और उसके पश्चात् कहा, "हम फ़िलहाल तुम्हारा यक़ीन कर लेंगे और तुम्हारी दरख्वास्त सुल्ताने-आलम के पास तक पहुँचाने का इंतज़ाम भी कर देंगे। मगर इस दरम्यान तुम हमारी हिरासत में रहोगे। अपनी तलवार हमें दे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो और हमारे साथ चलो।''

चन्द्रशेखर ने हाथ अपनी तलवार पर रखते हुए कहा, ''साथ चलने की बात तो समझ में आती है। मगर तलवार नहीं दूंगा। यह मर कर ही हाथ से छूटेगी।''

नायक ने फिर अपने साथी से परामर्श किया और उसके पश्चात् कहा, ''अच्छा, चलो। मगर कोई हरकत की तो मेरा हाथ सिर्फ़ एक बार उठेगा। समझे?''

चार तुरुष्क अश्वारोही चन्द्रशेखर को घेरकर दक्षिण को ओर ले चले। उनका नायक अपने अन्य सैनिकों के साथ पीछे-पीछे चलने लगा।

इस प्रकार लगभग आध कोस तक अर्ध-अन्धकार में चलने के पश्चात् चन्द्रशेखर को प्रकाश दिखाई पड़ा। सामने स्थान-स्थान पर अनेक होलिकाएँ जल रही थीं जिनका प्रकाश नीचे रह जाता था परन्तु धूम्र आकाश की ओर उठ रहा था। चन्द्रशेखर ने अनुमान लगाया कि अब वह मुख्य तुरुष्क शिविर के निकट आ गया है। शीघ्र ही पूछताछ भी आरम्भ हो गयी और थोड़ा आगे चलकर चन्द्रशेखर को अपने अश्व पर से उतरना पड़ा। उसे बताया गया कि शिविर के भीतर केवल सुल्तान अथवा उनके सेनापति ही अश्वारूढ़ जा सकते हैं।

संध्या अब रात्रि का काला आवरण ओढ़ चुकी थी। शिविर में स्थान-स्थान पर प्रकाश की व्यवस्था थी, परन्तु वह इतना नहीं था कि दूर तक स्पष्ट देखा जा सके। फिर भी चन्द्रशेखर को जितना चलना पड़ रहा था उससे स्पष्ट था कि शिविर बहुत बड़ा है।

अन्त में न जाने कितना चल चुकने के पश्चात्, उसने अपने आपको एक बड़े और भव्य स्कंधावार के निकट पाया जिसके द्वार पर नंगे खड्ग लिए रक्षक खड़े थे। उसकी भव्यता तथा उस पर लहराते हुए ध्वज को देखकर चन्द्रशेर ने अनुमान लगाया कि यह स्कंधावार सुल्तान महमूद का होगा। उसके सामने कई अपेक्षाकृत छोटे और नीचे स्कंधावार और थे जिनमें से एक में चन्द्रशेखर को ले जाया गया।

वहाँ कई सैनिक अधिकारियों के बीच में एक भयानक मुखाकृति वाला व्यक्ति बैठा था जो उन सबका अधिकारी प्रतीत होता था। चन्द्रशेखर तथा अपने अन्य साथियों को द्वार के निकट खड़ा करके नायक उस व्यक्ति के पास गया और अभिवादन करके अपनी भाषा में शीघ्रतापूर्वक कुछ कहने लगा। उसकी पूरी बात सुनने के पश्चात् उस व्यक्ति ने—जो वास्तव में महमूद का वीर सेनानायक जाज़िब था—अपना संक्षिप्त आदेश दिया। नायक तुरन्त सिर झुकाकर अपने साथियों को पीछे आने का संकेत करता हुआ बाहर चला गया।

तब जाज़िब कपने स्थान से उठकर वहाँ आया जहाँ चन्द्रशेखर अब अकेला खड़ा था। क्षण भर वह बिना कुछ बोले चन्द्रशेखर को ऊपर से नीचे तक देखता रहा, फिर कहने लगा, ''अपने आदमियों की गुस्ताखी के लिए मैं शर्मिन्दा हूँ।''

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"लेकिन मुझे उनसे कोई शिकायत नहीं है," चन्द्रशेखर ने कहा।

"यह तुम्हारी शराफ़त है।......तुम्हारा नाम क्या है ?"

"चन्द्रशेखर !"

"मुझे जानकर खुशी हुई," "जाज़िब ने कहा। "तुम कालंजर के हो न ? दर-असल मैं तुम्हें पहले से जानता हूँ, हालांकि तुम ग़ालिबन मुझे नहीं जानते होगे। मगर तुम्हारा नाम नहीं जानता था।"

"मैं तो तुम्हारा नाम अब भी नहीं जान पाया हूँ," चन्द्रशेखर बोला।

"उससे कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा," जाज़िब ने कहा। "तुम इस वक्त सुल्ताने-आलम के रूबरू पेश होना चाहते हो न ? चलो, मैं खुद तुम्हें ले चलूंगा। मेरा क़यास है कि सुल्ताने-आलम को भी तुमसे मिलकर खुशी होगी। चलो।" यह कहकर वह द्वार की ओर बढ़ा।

परन्तु दो पग चलकर वह फिर खड़ा हो गया और घूम कर बोला, "एक दरख्वास्त है। मानोगे ?"

"कहो," चन्द्रशेखर चौंककर बोला।

जाज़िब ने कहा, "मैं बख़ूबी जानता हूँ कि जांबाज़ों को अपनी तलवार जान से भी बढ़कर अज़ीज़ होती है। मैं खुद जान दे सकता हू, तलवार नहीं दूंगा। मगर कभी-कभी ऐसे मुक़ाम भी आ जाते हैं जब मैं अपनी तलवार हिफ़ाज़त के साथ कहीं रख देता हूँ और वक्त गुज़र जाने पर वहाँ से फिर उठा लेता हूँ। मेरी दरख्वास्त यह है कि तुम भी मुझे अपना दोस्त और भाई समझकर अपनी तलवार फ़िलहाल हिफ़ाज़त के साथ यहाँ मेरी तलवार के पास रख दो, और लौटना तब खुद उठा लेना। इसकी इज्ज़त का ज़ामिन मैं हूँ।"

चन्द्रशेखर क्षण भर मौन खड़ा कुछ सोचता रहा, फिर धीरे-धीरे अपनी कटि से तलवार खोलता हुआ बोला, "यह लो, जहाँ चाहो रख दो।"

—३१—

कुछ समय पश्चात् जब चन्द्रशेखर ने जाज़िब के पीछे-पीछे सुलतान के स्कंधवार में प्रवेश किया तब महमूद वहाँ लगभग अकेला बैठा था। केवल एक तरुण युवती और थी जो हाथों में मद्य-भाण्ड लिए उसके पीछे खड़ी थी। गहरी लाल मदिरा से आधा भरा हुआ स्वर्ण-पात्र सुलतान के हाथ में था।

सिर हिलाकर अभिवादन स्वीकार करते हुए महमूद ने कहा, "आओ नौजवान, इधर मेरे नज़दीक आ बैठो। तुम भी इसी तरफ़ आ जाओ, जाज़िब, और बैठ जओ। हाँ बैठ जाओ, खड़े रहने की शर्त नहीं है। मैं इस वक्त तफ़रीह के लिए नहीं पी रहा हूँ, वर्ना तुम लोगों को अन्दर आने की इजाज़त ही न मिलती। इस वक़्त ग़म ग़लत करने के लिए पी रहा हूँ, लिहाज़ा मेरे क़रीब आकर बैठ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाओ ताकि मैं अपना ग़म तक़सीम भी कर सकूं।"

आज्ञानुसार बैठते हुए जाज़िब ने कहा, "जहांपनाह अपना सारा ग़म बंदे को अता फ़रमायें।"

"यही तो अफ़सोस है, जाज़िब" सुलतान ने कहा, "तुम भी कुछ नहीं कर सकोगे। इसी बात का तो ग़म है। उसकी वजह जानते हो ?" यह कहते हुए उसने मदिरा का पात्र अधरों की ओर बढ़ाया। जाज़िब और चन्द्रशेखर दोनों मौन बैठे रहे।

दो घूंट मदिरा पीकर महमूद ने फिर कहना आरम्भ किया, "हम अपने जांबाज़ों की इतनी बड़ी फ़ौज के साथ दूर-दराज़ ग़ज़नी से यहाँ तक क्यों आये हैं ? जानते हो ? हमें जंग की ख्वाहिश थी, जंग का हौसला था। हमने सुन रखा था कि हिन्द जांबाज़ों का मुल्क है। क्यों, तुम क्या कहते हो ?"

महमूद को अपनी ओर देखते हुए पाकर चन्द्रशेखर ने कहा, "सुल्तान ने ठीक ही सुना था।"

"ठीक ही सुना था ?" महमूद ने कहा, "हाँ हमने ठीक ही सुना होगा। मगर कहनेवाले ने ग़ालिबन ठीक नहीं कहा था। हम उसकी बात का यक़ीन करके हर साल बड़े हौसले के साथ हिन्दी जांबाज़ों की तलाश में अपने मुल्क से चलकर तुम्हारे मुल्क आते हैं। मगर हमें आज तक कोई ऐसा नहीं मिला जो हमसे कहता···आओ मैं तुम्हारा हौसला पूरा करूँगा और तुम्हें सबक़ सिखाऊँगा ताकि तुम फिर इस तरफ़ रुख करने की जुर्रत न करो। हमारे हौसले हर बार दिल के दिल में ही रह जाते हैं और हम अब मायूस होने लगे हैं। हम जंग माँगते हैं, और तुम्हारे राय दोस्ती का दम भरने लगते हैं, या हमारे आने से पेश्तर भाग खड़े होते हैं। थानेसर का राय भी, हमने सुना है, भागने की कोशिश कर रहा है।"

"हम उसे भागने नहीं देंगे," जाज़िब ने कहा।

"नहीं जाज़िब, नहीं। क़तई नहीं। हमारी ग़ैरत यह कभी गवारा नहीं करेगी," महमूद ने सिर हिलाते हुए कहा और मदिरा का पात्र फिर अधरों से लगा लिया। उसे रिक्त करके अपने पीछे खड़ी युवती की ओर बढ़ाता हुआ वह फिर बोला, "जिसकी शहर-पनाह से हमारे ऊपर एक तीर भी न छोड़ा गया हो उसपर तलवार उठाकर हम अपनी तलवार की तौहीन नहीं करेंगे। जिसे जान अज़्मत से ज़्यादा अज़ीज़ है उसको जंग करने के लिए मजबूर करके हम उसे इज़्ज़त नहीं अता करेंगे। इसी मक़सद से शहर को घेरते वक्त हमने उसका एक दरवाज़ा खुला छोड़ दिया है। अगर राय जाना चाहता है तो हम उसका रास्ता नहीं रोकेंगे। मगर हमें अफ़सोस होगा, और हमारे जांबाज़ों को मायूसी होगी, और राय की बुज़दिली का ख़मियाज़ा उसकी ग़रीब रियाया को भुगतना होगा।"

"यह अनुचित है," चन्द्रशेखर के मुख से हठात् निकल पड़ा।

महमूद ने अपनी दृष्टि उसके मुख पर गड़ा दी, "तुमने कुछ कहा ?"

"ऐसा नहीं होना चाहिये," चन्द्रशेखर ने दुहराया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महमूद ने कहा, "तुम सही कहते हो, ऐसा नहीं होना चाहिए। मगर होता ऐसा ही है। हमेशा, हर जगह यही होता है। सिर्फ़ तुम्हारे मुल्क में शायद नहीं होता है, और शायद इसी वजह से फ़ौजों में जंग का जोश नहीं नज़र आता है।"

"सुल्तान ने हमारी फ़ौजें अभी देखी नहीं हैं," चन्द्रशेखर ने कहा।

"कहाँ मिलती हैं?" महमूद ने व्यंग किया।

"यहाँ स्थानेश्वर में भी मिल सकती हैं," चन्द्रशेखर ने कहा "यदि सुल्तान की इच्छा हो तो मैं जाकर अपने महाराज से निवेदन करूँ।"

"हमारी मायूसी की एक वजह यह भी है," महमूद ने कहा। "तुम्हारे महाराज लमग़ान और ओहन्द तक अपनी फ़ौज भेज सकते थे, तो यहाँ क्यों नहीं भेजी ? क्या दोस्ती करना चाहते हैं ?"

चन्द्रशेखर बोला, "महाराज आनन्दपाल के साथ हमारी संधि थी, इसलिए चन्देल सेना ओहन्द गयी थी। स्थानेश्वर के साथ हमारी कोई संधि नहीं है, इसलिए चन्देल सेना यहाँ नहीं आयी है। हमारे महाराज की गजनी के साथ कोई शत्रुता नहीं है। वे मित्रता चाहते हैं, परन्तु मित्रता का हाथ तभी स्वीकार करेंगे या बढ़ाएंगे जब सुल्तान हमारे देश पर आक्रमण बन्द कर दें। यदि ऐसा हो जाये तो हमारे महाराज को बड़ी प्रसन्नता होगी।"

"मगर हमने तुम्हारे मुल्क पर हमला किया ही कब है ?" महमूद ने कहा, "दर-अस्ल हमारा इस किस्म का फ़िलहाल कोई इरादा भी नहीं है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "हमारा देश गांधार से कन्या कुमारी तक फैला हुआ है। सुल्तान का यह आक्रमण भी हमारे देश पर ही है।"

"हम तुम्हारी इस दलील के क़ायल नहीं है, नौजवान," महमूद ने कहा। "मुल्क हम सिर्फ़ उस ज़मीन को मानते हैं जिसके लिए इन्सान अपनी जान दे सके। ग़जनी हमारा मुल्क है चूंकि हम उसके लिए जान दे सकते हैं। तुम्हारा मुल्क वह है जिसके तुम मालिक हो, जहाँ तुम्हारे महाराज की हुकूमत है, और जिसके लिये तुम जान दे सकते हो। तुम्हारे उस मुल्क पर हम कभी हमलावर नहीं होंगे क्योंकि हम चन्देलों की दिलेरी और दूरंदेशी की इज्ज़त करते हैं और तुम्हारे महाराज के साथ बिरादराना दोस्ती क़ायम करना चाहते हैं। हमारा यह पैग़ाम तुम अपने महाराज तक पहुँचा सकते हो। और हाँ, तुम भी तो हमारे लिए कोई पैग़ाम लाये हो ? तुम्हारे महाराज का है ?"

"हाँ, महाराज ने......"

"खत लाये हो ?" महमूद ने पुछा।

"नहीं महाराज ने......"

"यानी तुम्हारे महाराज इस पैग़ाम को तहरीर के क़ाबिल नहीं समझते हैं ? खैर, कहो।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "हमारे महाराज ने अनुरोध किया है कि आप हमारे धर्म-स्थानों को नष्ट न करें। नगरकोट में जो कुछ हुआ उससे उन्हें भारी ठेस पहुँची है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"आनन्दपाल ने भी हमसे यही कहा है," महमूद बोला, "और आनन्दपाल हमारा दोस्त है। वह हमें हर क़िस्म की सहूलियत मुहैया कर रहा है और मौजूदा मुहिम में उसकी एक फ़ौज हमारे साथ है। मगर हमने उसकी यह ख्वाहिश नामंजूर कर दी है। हम तुम्हारे मज़हब को इस्लाम से कमज़ोर साबित करने के साथ-साथ खुद ज़रदार होने का यह बेहतरीन मौक़ा किसी क़ीमत पर हाथ से नहीं जाने देंगे।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "हम अपने धार्मिक स्थानों का प्रयोग युद्ध के लिये नहीं करते हैं और दूसरों के धार्मिक स्थानों को आक्रमण का लक्ष्य नहीं बनाते हैं। धर्म और ईश्वर सबका अपना-अपना होता है और···"

"बस !" महमूद ने वर्जनशील हाथ उठाकर आदेश के स्वर में कहा, "हमतक-रीरें सुनने के आदी नहीं है। मुख्तसिर बात यह है कि हमने तुम्हारा पैग़ाम सुना और उसे नामंजूर कर दिया। वह बात ख़त्म हो गयी। अब दूसरी होगी। ओहन्द हमने तुमसे एक पेशकश की थी और तुम्हें उस पर ग़ौर करने का वक्त दिया था। क्या तुमने उसकी बाबत कुछ फ़ैसला कर लिया है। तुम हमारी फ़ौज में शामिल हो जाओ तो हमें बेहद खुशी होगी। हम तुम्हें अच्छा ओहदा देंगे।"

"सुल्तान की मेरे ऊपर बड़ी कृपा है," चन्द्रशेखर ने किंचित् तने हुए स्वर में उत्तर दिया, "परन्तु इस प्रस्ताव का उत्तर मैंने उसी समय दे दिया था।"

"हाँ," महमूद ने कहा "तुमने उस वक्त कहा था कि चन्देलों की फ़ौज में खरीद फ़रोख्त का रिवाज़ नहीं है। यही कहा था न ?"

"हाँ।"

महमूद ने कहा, "मगर यह ग़लत है, और इन्सानी फितरत के खिलाफ़ है। हर इन्सान अपनी बहबूदी चाहता है, और उसके लिए बड़ी से बड़ी क़ीमत अदा करने को तैयार रहता है। हम भी अगर हर मुसीबत उठाकर, हर ख़तरा झेल-कर, इतनी दराज मुहिम पर निकले हैं तो अपनी बहबूदी के लिए, महज अपनी बहबूदी के लिए। लिहाजा हम तुम्हें भी यही मशवरा देंगे कि अपनी बहबूदी का यह नायाब मौक़ा हाथ से न जाने दो। खरीद-फरोख्त कोई गुनाह नहीं है। वह महज एक नज़रिया है—बहबूदी का नज़रिया, दानिशमंदी का नज़रिया। और तुम्हारी यह दलील कतई ग़लत है कि तुम्हारी क़ौम में इसका रिवाज नहीं है। सुबूत चाहते हो ?"

चन्द्रशेखर प्रमाण की प्रतीक्षा में मौन बैठा रहा।

महमूद ने अपने सेनापति को सम्बोधित करके फिर कहना आरम्भ किया, "यह वही नौजवान है, जाज़िब, जो ओहन्द में तुम्हें कैद करने की जिद कर रहा था। मगर इस वक्त यह हमारा मेहमान है। लिहाजा हम मेहमाननेवाजी का अपना फ़र्ज अदा करेंगे। इसकी जिम्मेदारी तुम्हारी होगी। समझे ? इसे कहाँ ले जाओगे ?"

"अपने साथ रखूंगा," जाज़िब ने उत्तर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"तुम हमारे लायक़ सिपहसालार हो, जाज़िब" महमूद ने कहा, "मगर मेहमाननेवाज़ी के मामलों में किसी क़दर बेवकूफ़ भी हो। अपने साथ रखकर क्या इसे भूखा मारोगे। इसे अपने नए हिन्दी साथी के पास ले जाओ और वहीं छोड़ देना। मगर आख़िरी ज़िम्मेदारी तुम्हारी ही रहेगी।"

जाज़िब तुरन्त उठकर खड़ा हो गया।

महमूद फिर चन्द्रशेखर की ओर घूमा और, "जाओ, नौजवान, और खुद इत्मीनान कर लो। मुमकिन है इस तजरबे के बाद तुम अपना इरादा तब्दील कर दो। कर दोगे तो हमें खुशी होगी। नहीं करोगे तो भी हम अपना फ़र्ज़ पूरा करेंगे। जब तक हम यहाँ हैं तब तक तुम्हारी मेहमाननेवाज़ी करेंगे और तुम्हें कोई तकलीफ़ नहीं होने देंगे। अगर आगे चलने की कोई सूरत निकल आयी तो तुम्हारे ही साथ चलकर तुम्हारे महाराज से मुलाक़ात करेंगे। मगर ऐसा होना ज़रा मुश्किल नज़र आता है क्योंकि हमें आनन्दपाल की तरफ़ से पूरा इत्मीनान नहीं है। यह सही है कि उसका भाई अपनी फ़ौज के साथ हमारी रहनुमाई कर रहा है, फिर भी हमें पूरा इत्मीनान नहीं है। मगर हम तुम्हारे महाराज से मुलाक़ात करना चाहते हैं, और जल्द करेंगे। इसका उन्हें हमारी तरफ़ से यक़ीन दिलाना। जाओ, खुदा हाफ़िज़।"

चन्द्रशेखर जाज़िब के साथ ही उठकर खड़ा हो चुका था। महमूद के मौन होने पर उसने कहा, "हमारे महाराज को प्रसन्नता होगी, आप को सम्भव है न हो।"

"हमें भी होगी, और उनसे कम नहीं होगी," महमूद ने कहा और अपने पीछे खड़ी हुई युवती के हाथ से भरा हुआ मदिरा-पात्र लेकर फिर अपने अधरों से लगा लिया।

चन्द्रशेखर जाज़िब के पीछे-पीछे स्कंधावार से बाहर निकल आया।

—३२—

महमूद के स्कंधावार से निकलकर जाज़िब चन्द्रशेखर को शिविर के जिस भाग में ले गया वह मध्य से अधिक अन्तर पर नहीं था क्योंकि दोनों शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये। परन्तु वहाँ का सम्पूर्ण वातावरण शेष शिविर से भिन्न था। यह भिन्नता इतनी स्पष्ट थी कि चन्द्रशेखर को अपनी आँखों पर विश्वास करना कठिन प्रतीत होने लगा।

जिस स्कंधावार के सामने पहुँचकर जाज़िब रुका वह पर्याप्त बड़ा और ऊँचा था तथा उसके द्वार पर खड़े दोनों रक्षक रूप-रंग और वेष-भूषा से भारतीय प्रतीत हो रहे थे। जाज़िब ने निकट जाकर धीमे स्वर में उन्हें कुछ निर्देश दिया और इसके पश्चात् चन्द्रशेखर को बाहर प्रतीक्षा करने के लिए कहकर वह स्वयं स्कंधा-

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वार के भीतर चला गया। शीघ्र ही जब वह फिर बाहर आया तो उसके साथ एक व्यक्ति और था जिसे देखकर आश्चर्य के कारण चन्द्रशेखर की आँखें खुली रह गयीं और उसके मुख से हठात् निकल पड़ा, "तुम !"

वह व्यक्ति विजय सिंह था।

विजयसिंह ने शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़कर चन्द्रशेखर को कंठ से लगा लिया और कह, "हाँ, मैं ही हूँ, और तुम्हें एक बार फिर अपने निकट पाकर बहुत प्रसन्न हूँ। चलो, भीतर चलो।"

"मैं भी तुम्हें जीवित पाकर बहुत प्रसन्न हूँ," चन्द्रशेखर ने अपने आश्चर्य को समेटने का प्रयास करते हुए कहा, "परन्तु···

"परन्तु कुछ नहीं। कम से कम अभी यहाँ, कुछ नहीं," विजयसिंह ने टोककर कहा। "पहले भीतर चलकर बैठो, फिर तुम्हें जो कुछ कहना हो, कह लेना। पर्याप्त समय मिलेगा, और मेरे पास तुम्हारे प्रत्येक परन्तु का समुचित उत्तर है। चलो, भीतर चलो।" यह कहकर उसने चन्द्रशेखर को भीतर ले जाते हुए एक बार ग्रीवा घुमाकर पीछे देखा। जाज़िब जाने के लिए घूम चुका था।

भीतर पहुँचकर उसने कहा, "तुम्हारा आश्चर्य स्वाभाविक है, मित्र। इतने समय से मेरा कोई समाचार न पाकर तुमने यह समझ लिया होगा कि मैं अब इस संसार में नहीं हूँ। तुम्हारी स्थिति में होता तो मैं भी यही समझता।"

"मैंने यह अवश्य सोचा था कि तुम वीर-गति को प्राप्त हुए होगे अथवा बंदी बना लिए गये होगे, परन्तु," चन्द्रशेखर ने चारों ओर देखते हुए कहा, "तुम बंदी तो नहीं प्रतीत होते हो ?"

"तुम्हारा अनुभव सत्य है, मित्र। मैं बंदी नहीं हूँ। परन्तु तुम क्षण भर इधर आकर बैठो। मैं तुम्हारे लिए भोजन और विश्राम की व्यवस्था करके अभी आता हूँ, तब तुम्हारी शंकाओं का समाधान करूँगा।"

विजयसिंह यह कहकर बाहर चला गया, और चन्द्रशेखर इंगित स्थान पर बैठकर निरीक्षक दृष्टि से चारों ओर देखने लगा। परन्तु उसका यह निरीक्षण पूरा नहीं हो सका क्योंकि विजयसिंह कुछ ही क्षणों में लौटकर आ गया और उसके निकट बैठता हुआ फिर बोला, "हाँ, तो मैं कह रहा था कि तुम्हारा अनुमान सत्य है। मैं बंदी नहीं हूँ। मैं सुल्तान महमूद का एक सेनापति हूँ। पक्ष मैंने स्वेच्छा से स्वीकार किया है, और पद सुल्तान की उदारता का परिणाम है।"

"मैं महमूद की इस उदारता को दो बार अस्वीकार कर चुका हूँ," चन्द्र-शेखर ने तीखे व्यंग के स्वर में कहा।

परन्तु विजयसिंह पर इस व्यंग की तनिक भी प्रतिक्रिया नहीं हुई। उसने अत्यंत सहज भाव से टिप्पणी की, "मुझे इसकी बड़ी प्रसन्नता है। तुमने वही किया है जो तुम्हें करना चाहिए।"

"और तुमने ?" चन्द्रशेखर ने पैने स्वर में कहा।

"मैंने भी," विजयसिंह ने पूर्ववत् उत्तर दिया, "वही किया है जो मुझे करना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहिए। उन्नति के अवसर को खो देना मैं मूर्खता समझता हूँ।"

"और मैं अपनी उन्नति के लिए देश, जाति तथा धर्म के साथ विश्वासघात करने को निकृष्ट कोटि की नीचता समझता हूँ." चन्द्रशेखर ने कहा।

"यहाँ मैं तुमसे पूर्णतया सहमत हूँ," विजयसिंह ने पूर्ववत् सहज स्वर में उत्तर दिया। "देश, जाति और धर्म के साथ विश्वासघात प्रत्येक अवस्था में नीचता है। परन्तु इस जघन्य अपराध के दोषी न तुम हो, न मैं हूँ। अतएव यहाँ उसकी चर्चा अनावश्यक है।"

चन्द्रशेखर ने और अधिक उत्तेजित होकर कहा. "अनावश्यक नहीं है। मैं तुम्हें देश-द्रोह और जाति-द्रोह का दोषी समझता हूँ।"

"मैं तुम्हें मूर्ख समझने लगूँ तो क्या तुम वास्तव में मूर्ख हो जाओगे? उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे समझने मात्र से देश-द्रोही नहीं हो जाता हूँ। तुम भूल जाते हो, मित्र, कि देश-सेवा के एक से अधिक मार्ग हो सकते हैं। मैं भी जहाँ और जिस स्थिति में हूँ वहाँ देश और जाति की सेवा ही कर रहा हूँ।"

चन्द्रशेखर ने इसका तीखा प्रतिवाद करने को मुख खोला ही था कि एक भारतीय सैनिक ने स्कंधावार में प्रवेश किया। उसने विजय सिंह के निकट आकर धीरे से कुछ कहा जिसके उत्तर में विजयसिंह ने अनुमतिसूचक सिर हिला दिया। सैनिक बाहर चला गया और क्षण भर पश्चात् एक तलवार लिए हुए फिर लौट आया। उसके हाथ से तलवार लेकर चन्द्रशेखर की ओर बढ़ाते हुए विजयसिंह ने कहा, "जाज़िब ने तुम्हारी तलवार भेजी है और कहलाया है कि तुम्हारा अश्व भी यहीं आ जाएगा। यह सम्मान सुल्तान की ओर से तुम्हें दिया गया है।"

चन्द्रशेखर ने तुरन्त इसके उत्तर में कुछ नहीं कहा। परन्तु जब सैनिक फिर बाहर चला गया तब उसने घोषणा की, "मैं भोर होते ही यहाँ से चला जाऊँगा।"

"कहाँ जाओगे?" विजयसिंह ने पूछा।

"जहाँ से आया हूँ।"

"महोत्सवनगर?"

"हाँ।"

"आये क्यों थे?"

"तुम से भेंट करने।"

विजयसिंह ने कहा. "मित्र हो तो तुम्हारा जैसा। परन्तु कल प्रातःकाल तुम्हारा यहाँ से जाना थोड़ा कठिन होगा।"

"क्यों? क्या मैं अपने आप को बन्दी समझूँ?"

"नहीं, तुम इस समय सुल्तान महमूद के सम्मानित अतिथि हो। अतएव तुम्हारे प्रस्थान के लिए सुल्तान की अनुमति आवश्यक है, और कल प्रातःकाल सम्भवतः सुल्तान को तनिक भी अवकाश नहीं होगा"

चन्द्रशेखर ने कहा, "पुरानी मित्रता के नाते तुम मेरी कुछ सहायता नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करोगे ?"

"मैं प्रत्येक सम्भव सहायता करूँगा," विजयसिंह ने उत्तर दिया, "परन्तु ऐसा कुछ नहीं करूँगा जिसमें मेरे मित्र का अहित हो। अतएव मेरा परामर्श यह है कि तुम कल प्रातःकाल यहाँ से जाने का विचार मन से निकाल दो। तुम्हारा हित अभी यहाँ बने रहने में है। मेरा अनुमान है कि कल स्थानेश्वर का निर्णय हो जाएगा, और उसके पश्चात् सुल्तान स्वयं यहाँ रुकना नहीं चाहेंगे।"

'धन्यवाद। मेरे लिए और कोई परामर्श तो नहीं है?' चन्द्रशेखर ने व्यंग किया।

"हाँ, है," विजयसिंह ने कहा, "एक परामर्श और है। तुम्हें यहाँ से उद्-भाण्ड जाकर युवराज त्रिलोचनपाल तथा राजकुमार भीम के साथ सम्पर्क स्थापित करना चाहिए।"

"तुम्हें लज्जा नहीं आती ?" चन्द्रशेखर ने उत्तेजित होकर कहा, "स्वयं देश-द्रोह करके मुझे उपदेश दे रहे हो ?"

विजयसिंह ने मुस्कराकर कहा, "नहीं, मित्र, मुझे लज्जा नहीं आ रही है। मेरी देश-प्रेम की परिभाषा तुम्हारी से भिन्न है। मैं सुलतान की सेवा में रहकर भी अपने देश तथा धर्म के हित में कार्य कर रहा हूँ। तुम्हें आर्य महामात्य ने भेजा है ?"

स्पष्ट था कि महामात्य प्रभास की मृत्यु का समाचार अभी तुरुष्क शिविर में नहीं पहुँचा था। अतएव चन्द्रशेखर ने उसे प्रकट न करने का निश्चय करके कहा, "तुम तुरुष्कों के साथ रहकर निर्लज्ज हो गये हो।"

विजयसिंह ने पूर्ववत् मुस्कराते हुए कहा, "तुम व्यंग और क्रोध, दोनों का अपव्यय कर रहे हो, मित्र। तुम मुझे अन्यथा समझ रहे हो, और अपने आप को बहुत ऊँचा समझ रहे हो। तुम ऊँचे रहो, इसमें मुझे प्रसन्नता है, क्योंकि तुम मेरे मित्र हो। परन्तु मैं भी उतना नीच नहीं हूँ जितना तुम समझ रहे हो। मैं अपनी वर्तमान स्थिति को पतन नहीं मानता हूँ, और आज भी भारतीय हूँ, भागवत हूँ, चन्देल हूँ, और तुम्हारा मित्र हूँ। यदि इसके पश्चात् भी तुम मुझे अन्यथा समझो तो दोष मेरा नहीं है।"

चन्द्रशेखर पर इस आश्वासन का केवल इतना प्रभाव पड़ा कि उसने उत्तर में कुछ नहीं कहा। कुछ क्षण मौन रहने के पश्चात् विजयसिंह ने ही फिर कहना आरम्भ किया, "मुझे भी तुमसे बहुत कुछ पूछना है। मैंने तुम्हें एक उत्तरदायित्व सौंपा था, और तुमने मुझे एक वचन दिया था। उस सम्बंध में तुमने अभी तक एक शब्द नहीं कहा है। तुम्हारी मनःस्थिति को देखकर मैंने भी अभी तक नहीं पूछा है। परन्तु पूछूँगा अवश्य। आज नहीं कल पूछूँगा। इस समय तुम्हारा मन ठीक नहीं है, और मेरे पास समय नहीं है। अतएव अब भोजन करने चलो। उसके पश्चात् तुम विश्राम करना, मुझे आवश्यक कार्य से जाना होगा। मेरी प्रतीक्षा में जागते मत रहना क्योंकि तुम थके होगे और मुझे लौटने में विलम्ब हो सकता है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह कहकर विजयसिंह ने लगभग बलात् चन्द्रशेखर को वहाँ से उठाया। चन्द्रशेखर को भूख लग रही थी, यद्यपि विजयसिंह के साथ बैठकर भोजन करने की उसकी इच्छा नहीं हो रही थी। परन्तु विजयसिंह का आग्रह ऐसा था कि उसके लिए बचना असम्भव हो गया।

भोजन के पश्चात् जब चन्द्रशेखर लौटा तब उसके विश्राम की व्यवस्था हो चुकी थी। विजयसिंह उसे वहाँ छोड़कर तुरन्त कहीं चला गया।

—३३—

रात्रि में जब विजयसिंह बहुत विलम्ब से लौटकर आया तब चन्द्रशेखर सो चुका था, और प्रातःकाल बहुत तड़के जब वह सोकर जगा तब विजयसिंह फिर कहीं जा चुका था। यह चन्द्रशेखर को अखर गया क्योंकि रात्रि में भली प्रकार सो लेने के पश्चात् अब उसका मस्तिष्क सुस्थिर हो गया था और वह विजयसिंह के साथ बहुत-सी बातें करना चाहता था। परन्तु विजयसिंह का कहीं पता नहीं था।

चन्द्रशेखर स्कंधावार से बाहर निकला। शिविर में चारों ओर आश्चर्य-जनक शान्ति थी और इधर-उधर बहुत थोड़े व्यक्ति दिखाई पड़ रहे थे। परन्तु जिस स्कंधावार में वह सोया था उसके द्वार पर दो सशस्त्र रक्षक पूर्ववत् खड़े थे। उन्होंने उसे सूचित किया कि उसके लिए स्नानादि की सम्पूर्ण व्यवस्था है परन्तु शिविर में घूमने-फिरने की स्वतंत्रता नहीं है। चन्द्रशेखर ने अनुमान लगाया कि सम्पूर्ण तुरुष्क सेना इस समय स्थानेश्वर में आक्रमणरत होगी। उसने रक्षकों से पूछा परन्तु उनसे कोई सूचना पाना बड़ा कठिन था। उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि विजयसिंह कहाँ गया है और कब तक लौटेगा।

अपनी स्थिति की विवशता को समझकर चन्द्रशेखर ने चुपचाप स्नान किया। एक रक्षक स्कंधावार में ही उसके लिए कलेवा ले आया। चन्द्रशेखर कलेवा करके फिर लेट गया और विजयसिंह के लौटने की प्रतीक्षा करने लगा।

विवश प्रतीक्षा की अवधि जैसे-जैसे दीर्घ होती गयी वैसे-वैसे चन्द्रशेखर का मन भी दूर और अधिक दूर भागने लगा। सबसे पहले वह टीले पर स्थित उस मंदिर के प्रांगण में जा खड़ा हुआ जहाँ चन्द्रशेखर गंगा को प्रतीक्षा करने के लिए छोड़ आया था। गंगा की वाचाल मुद्रा उसकी आँखो के सामने उभर आयी। गंगा हँस रही थी। परन्तु आज पहली बार चन्द्रशेखर को उस हँसी के पीछे एक काली छाया दिखाई पड़ी, उस वाचालता के नीचे कुंठित नारीत्व की कसमसाहट का अनुभव हुआ, और उसके हृदय में उस सरला के प्रति सहानु-भूति का सागर उमड़ आया जो इतना सब सहकर भी हँसना नहीं भूली थी, जिसके अन्तर में प्रवाहित स्नेह के स्रोत को बीस वर्ष का दीर्घ आतप भी नहीं सुखा पाया था। चन्द्रशेखर सोचने लगा—क्या गंगा की अकथ व्यथा का कभी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्त नहीं होगा ? क्या उस असहाया को मैं शरण और सहानुभूति के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकता हूँ ? मात्र सहानुभूति से क्या उसकी भूख मिट सकेगी ? क्या उसके लिए और कुछ नहीं किया जा सकता है ?

गंगा के विषय में सोचते-सोचते उसके मन ने ऐसे ही अनेक प्रश्नों को अनिर्णीत छोड़ दिया और फिर शून्य में उड़ना आरम्भ किया। शीघ्र ही वह महोत्सवनगर जा पहुँचा और सुमेरगढ़ में लक्ष्मी के सामने जा खड़ा हुआ। वह मान से भरी, अनमनी बैठी थी। चन्द्रशेखर का मन उसके अंक में जा गिरा और मनुहारें करने लगा। बोला—तुम मेरी प्राण हो, लक्ष्मी, तुम मेरी सर्वस्व हो। यौवन के उद्दाम प्रथम प्रणय में मैंने तुमसे यही कहा था, और आज भी यही कह रहा हूँ। समय बदल गया है, स्थिति बदल गयी है, परन्तु मैं नहीं बदला हूँ। मेरा विश्वास करो, लक्ष्मी ! मैं वहीं हूँ, तनिक भी नहीं बदला हूँ। तुम मेरी नहीं हो, कभी मेरी नहीं हो सकोगी, परन्तु मैं अब भी तुम्हारी कामना करता हूँ। मैं सदा तुम्हारी कामना करता हूँ, लक्ष्मी, और सदा तुम्हारी कामना करता रहूँगा। परन्तु मैं मूर्ख हूँ, और इस कारण तुम्हारा अपराधी हूँ। मैं लहराते सरोवर से मुख फेर कर अतृप्ति के मरु में भटकता फिरता रहा हूँ। मुझे क्षमा कर दो, लक्ष्मी। बस एक बार क्षमा कर दो, मैं फिर कभी ऐसी मूर्खता नहीं करूँगा। अब मैंने जान लिया है कि जिस व्यक्ति के लिए मैं यह कर रहा था वह इतने बड़े आत्म बलिदान के योग्य नहीं है। तुमने उसे पहले पहचान लिया था, मैं अब जान पाया हूँ। वह निश्चय ही तुम्हारे प्रणय के योग्य नहीं था, और मेरी मित्रता के योग्य भी नहीं है।

विजयसिंह का संदर्भ आते ही चन्द्रशेखर का मन सुमेरगढ़ से लौट आया और स्थानेश्वर के इधर-उधर मँडराने लगा। वह सोचने लगा—महमूद इस समय स्थानेश्वर के भीतर होगा। उस अरक्षित, अभागे नगर की रक्षा के लिए यदि युद्ध हुआ भी होगा तो वह घड़ी भर से अधिक नहीं चला होगा। महमूद पहले प्रासाद में गया होगा और फिर मंदिर की ओर। इन दोनों स्थानों से उसे इतना धन मिला होगा कि उसकी आकांक्षा कम से कम कुछ काल के लिए अवश्य तृप्त हो गयी होगी। महमूद से घृणा की जा सकती थी, परन्तु उसे समझा भी जा सकता था क्योंकि उसका उद्देश्य बहुत स्पष्ट था। वह विजय और धन का भूखा था। इन्हीं दो उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उसने इतनी बड़ी सेना एकत्र की थी, इन्हीं के लिए वह प्रतिवर्ष अपने देश से इतनी-इतनी दूर चलकर आता था। उसके सेनापति और सैनिक उसकी महत्त्वाकांक्षाओं के साझीदार थे, जो उसे मिलता था उसका कुछ अंश वे भी पाते थे। परन्तु विजयसिंह ? क्या वह भी धन का भूखा था ? और इतना भूखा था कि उसके लिए इतना बड़ा मूल्य दे सकता था, यश और सम्मान खो सकता था, पत्नी और परिवार, देश और जाति तक के साथ विश्वासघात कर सकता था ? वह भी इस समय मंदिर के देवार्पित धन से अपनी क्षुधा शान्त कर रहा होगा, अथवा असहाय प्रजा पर किये जा रहे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत्याचार तथा भारतीय कुल-ललनाओं पर किये जा रहे बलात्कार में योग दे रहा होगा।

चन्द्रशेखर को सहसा किन्नरी की सुधि आ गई और उसका मन स्थानेश्वर को अपने भाग्य पर छोड़कर सुदूर कालंजर की ओर उड़ चला। किन्नरी विचित्र स्त्री थी, जितनी स्निग्ध उतनी ही शीतल, जितनी हठी उतनी ही नयशील। वह चन्द्रशेखर के लिए एक पहेली थी, साक्षात्कार के प्रथम क्षण से कालंजर की अन्तिम भेंट तक वह कभी उसे पूर्णतया समझ नहीं पाया था। लक्ष्मी को वह समझ सकता था, गंगा को उसने तुरन्त समझ लिया था, परन्तु किन्नरी में न जाने ऐसा क्या था कि वह सदा नयी, सदा रहस्यमयी प्रतीत होती थी। उससे दूर जाना असम्भव था, उसके निकट पहुँचना यदि असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य था। उसकी समर्पणशीलता में गौरव था और उसके संकुचन में आत्मीयता का भाव।

इस प्रकार किन्नरी के विषय में सोचते-सोचते चन्द्रशेखर का मन काव्य रचना करने लगा। भूत भविष्य और वर्तमान मिलकर एक हो गये, जैसे कई रंग मिलकर एक नया वर्ण धारण कर लेते हैं। महमूद और विजयसिंह, लक्ष्मी और गंगा की आकृतियाँ धुंधली पकड़कर विलीन हो गयीं, जैसे चौंककर आँखें खोलते ही स्वप्न विलीन हो जाते हैं। रह गयी केवल किन्नरी, जैसे उषा अगणित नक्षत्र दीपों को बुझाकर आकाश में अकेली रह जाती है। परन्तु उस उषा को अपने चारों ओर पाकर भी चन्द्रशेखर स्पष्ट नहीं देख पा रहा था, और जितना सोचता था उतना ही उलझता जा रहा था, यहाँ तक कि सोचते-सोचते उसकी चेतना शिथिल होने लगी और आँखें अपने आप मुंद गयीं।

जब विजयसिंह ने आकर उसे जगाया तब अपराह्न हो चला था, और बाहर बड़ा कोलाहल हो रहा था। चन्द्रशेखर आँखें मलता हुआ उठकर बैठ गया और क्षमा याचना के स्वर में बोला, "मैं सो गया था।"

"और करने को भी क्या था" विजयसिंह ने हँसकर कहा "सो लिये तो अच्छा ही किया, यात्रा की थकान मिट गयी होगी।"

"और तुम ? स्थानेश्वर हो आये ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"हाँ, वहीं से आ रहा हूँ।"

"युद्ध हुआ था ?" चन्द्रशेखर ने फिर पूछा।

"नहीं। युद्ध करने के लिए नगर में एक भी भारतीय सैनिक नहीं था। केवल नागरिक थे, उनमें भी सम्पन्न वर्ग का कोई नहीं मिला।"

"फिर ?"

"फिर क्या, अभियान एक प्रकार से विफल ही रहा।"

"मंदिर में भी कुछ नहीं मिला ?"

"मंदिर में मिला, परन्तु सुल्तान उतने से संतुष्ट नहीं हैं। उन्होंने सुन रखा था कि स्थानेश्वर की सेना में सिंहल के हाथी हैं, सो एक भी नहीं मिला।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके अतिरिक्त सेना के हाथ कुछ नहीं लगा। इस कारण सुल्तान को बहुत क्षोभ है। उन्होंने तो मेरा परामर्श मानकर धिल्लिका तक बढ़ चलने का निश्चय भी कर लिया था, परन्तु अन्य सेनापतियों ने इसका विरोध किया।"

"क्यों?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"उन्हें शाहियों का विश्वास नहीं है।"

"फिर निश्चय क्या हुआ? महमूद यहाँ से लौट जाएगा?"

विजयसिंह ने कहा, "मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देते-देते थक गया हूँ, और तुम्हारी निपट हृदयहीनता से क्षुब्ध होने लगा हूँ। अतएव अब पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो। लक्ष्मी कैसी है?"

चन्द्रशेखर ने अपनी दृष्टि कुछ क्षण तक विजयसिंह के मुख पर स्थिर रखने के पश्चात् वहाँ से हटा ली और दूसरी ओर देखते हुए कहा, "तुम्हारी पत्नी? अच्छी है वह, अब एक पुत्र की माता है।"

प्रथम पितृत्व की प्रसन्नता से विजयसिंह का मुख चमक उठा। उसने कहा, "और पुत्र कैसा है?"

"तुम्हारा है तो तुम्हारे जैसा ही होगा। मैंने कभी उसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया," चन्द्रशेखर ने रूखे स्वर में कहा।

"और उसकी माता की ओर?" विजय सिंह ने उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए प्रश्न किया।

चन्द्रशेखर थोड़ा संकुचित होकर बोला, "कहा तो, लक्ष्मी अच्छी है।"

"यह मैं सुन चुका हूँ, और जानकर बहुत प्रसन्न हूँ। अब यह जानना चाहता हूँ कि तुमने उसकी ओर कितना ध्यान दिया है।"

चन्द्रशेखर मौन रहा।

विजयसिंह ने फिर पूछा, "ध्यान दिया भी है कि नहीं?"

"नहीं," चन्द्रशेखर ने धरती की ओर देखते हुए उत्तर दिया।

"क्यों?"

"यह मैं नहीं बता सकता।"

"तो तुमने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया है?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "यह असत्य है। मुझे करना नहीं चाहिए था, फिर भी मैंने तुम्हारे प्रति अपने कर्त्तव्य का निरन्तर पालन किया है।"

"जिसका अर्थ यह हुआ कि तुमने लक्ष्मी के प्रति अपने कर्तव्य की उपेक्षा की है।"

चन्द्रशेखर मौन हो गया और कुछ क्षण तक विचारमग्न रहा। फिर उसने सहसा कहा, "लक्ष्मी के साथ मेरे पहले के सम्बन्ध का तुम्हें ज्ञान था, था न?"

"था," विजयसिंह ने स्वीकार किया।

"फिर भी तुमने मुझे उसके पास भेजा?"

"हाँ, मैंने उसके, तुम्हारे और अपने हित में यही उचित समझा।"

"मेरे हित में भी ?"

"हाँ, तुम्हारे हित में भी। तुम अपने जीवन को रिक्त अनुभव करने लगे थे और उसे विषाक्त बनाये ले रहे थे। मुझे विश्वास है कि अब उस स्थिति में सुधार हुआ होगा।"

"परन्तु यह सुधार मुझे बहुत मँहगा पड़ रहा है." चन्द्रशेखर ने कहा, और अब मुझे उसकी दिशा बदलनी होगी। तुम्हारी वर्तमान स्थिति को देख लेने के पश्चात मैं अपने वचन से मुक्त हो गया हूँ।"

विजयसिंह ने हँसकर कहा, "रोग जितना कठिन होता है, मित्र, उसका उपचार भी उतना ही अधिक कष्टकर होता है। जीवन की सार्थकता उसे जीने में होती है, और जीने की कला का अर्थ है यथार्थ को पहचानकर उसके अनुसार आचरण करना। जो हो चुका है अथवा अनिवार्य है उसके सामने सिर झुका लेने में ही बुद्धिमानी है। तुम वीर हो, समर्थ हो, क्षत्रीत्व के आदर्श हो। परन्तु जीने की कला तुम्हें अभी सीखनी है और उसे सीखने के लिए जीना आवश्यक है। जब जिओगे तो बदलोगे भी, क्योंकि परिवर्तन जीवन की प्रक्रिया का सहज-सनातन गुण है। परन्तु जिस ओर तुम संकेत कर रहे हो वह तुम्हारी सहज दिशा नहीं है। उसे तुम कभी ग्रहण नहीं कर सकोगे। यह मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह रहा हूँ। इसका एक कारण तुम्हारी अपनी प्रकृति है जिसे भली प्रकार पहचान कर ही मैंने तुम्हें यह उत्तरदायित्व सौंपा था, और दूसरा यह है कि मेरी वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में तुम्हारा भ्रम अधिक समय तक नहीं टिकेगा।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "इसका निर्णय समय पर छोड़ दो, और यह बताओ कि मुझे तुम्हारे साथ कब तक टिकना पड़ेगा ? या मुझे गजनी ले जाया जाएगा ?"

"नहीं," विजयसिंह ने उत्तर दिया, "तुम अब मुक्त हो और जहाँ चाहो वहाँ जा सकते हो। सुल्तान का आदेश हो चुका है। परन्तु मेरा अनुरोध है कि आज की रात्रि और मेरे साथ व्यतीत कर लो। प्रातः काल हमें भी प्रस्थान करना है, और फिर न जाने कब भेंट हो।"

"शीघ्र होगी" चन्द्रशेखर ने कहा "और ईश्वर की कृपा हुई तो रणभूमि में होगी। मुझे अब तुम्हारे संग-साथ का तनिक भी चाव नहीं रह गया है। अतएव इस समय मैं अपनी इच्छा से क्षण भर भी नहीं रुकूँगा। बंदी बनाकर जब तक चाहो रख सकते हो।"

इसके पश्चात् विजयसिंह ने बहुत समझाया, बहुत अनुरोध किया, परन्तु चन्द्रशेखर अपने निश्चय पर अडिग रहा। अन्त में बहुत खीझकर विजयसिंह ने कहा, "मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि तुम इतने मूर्ख सिद्ध होगे। तुम्हारे यहाँ रुकने से मेरा कोई लाभ नहीं है, क्योंकि अपनी वर्तमान मनःस्थिति में तुम मुझसे वह भी छिपाओगे जो मैं पहले से जानता हूँ। उदाहरण के लिए तुमने मुझसे महामात्य प्रभास के निधन की बात छिपायी जो मैं पहले से जानता हूँ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महोत्सवनगर के समाचार प्राप्त करने के मेरे अपने सूत्र हैं जो तुमसे अधिक विश्वस्त हैं। परन्तु मुझसे तुम्हें कुछ ऐसे तथ्य ज्ञात हो सकते थे जो अन्यत्र नहीं होंगे। अतएव मेरे साथ रुकने में यदि किसी का लाभ था तो तुम्हारा।"

"मुझे उस लाभ की अपेक्षा नहीं है," चन्द्रशेखर ने कहा।

"तो अब मैं तुमसे रुकने को भी नहीं कहूँगा। परन्तु भोजन किए बिना नहीं जाने दूंगा। तब तक के लिए तुम मेरे बंदी हो। उसके पश्चात् मैं स्वयं चल कर तुम्हें शिविर के बाहर तक भेज आऊँगा।"

इसके पश्चात् दोनों में कोई बात नहीं हुई। चन्द्रशेखर ने बहुत थोड़ा भोजन किया। विजयसिंह ने इसे लक्ष्य किया परन्तु कहा कुछ भी नहीं। भोजन के पश्चात् उसने तुरन्त चन्द्रशेखर का अश्व मँगाया। शिविर में पैदल ही चलना था, अतएव एक सैनिक अश्व को लेकर पीछे-पीछे चला। मार्ग में भी दोनों ओर से पूर्ण मौन रहा। शिविर की अन्तिम सुरक्षा चौकी पार करने के पश्चात् विजयसिंह खड़ा हो गया और बोला, "अब तुम अश्वारूढ़ हो सकते हो। यदि उचित समझो तो मुझे इतना और बता दो कि इस समय तुम कहाँ जाओगे।"

चन्द्रशेखर ने अश्व की वल्गा अपने हाथ में ले ली और कूदकर उस पर आरूढ़ हो गया। अश्व की पीठ पर बैठकर उसने बिना विजयसिंह की ओर देखे कहा, "स्थानेश्वर," और एड़ लगा दी।

उस समय दिशाओं में संध्या का आभास होने लगा था।

—३४—

वह रात्रि चन्द्रशेखर ने स्थानेश्वर में व्यतीत की।

परन्तु उससे पूर्व जब तक तनिक भी प्रकाश शेष रहा तब तक वह निरुद्देश्य नगर में घूमता रहा। राज-मार्ग सूने पड़े थे और सम्पूर्ण नगर में निर्जन नीरवता का साम्राज्य था। जो थोड़े-से लोग भाग कर कहीं नहीं जा सके थे वे अपने-अपने घरों में सहमे हुए बैठे थे। रक्तपात के अवशेष अधिक नहीं थे क्योंकि तुरुष्कों का अवरोध कहीं हुआ ही नहीं था। परन्तु लूट-पाट का दृश्य चारों ओर था। निर्जन आवासों के बलपूर्वक तोड़े गये द्वार खुले पड़े थे, लूटी गयी पण्यशालाओं की विविध सामग्री इधर-उधर बिखरी थी। करका-पात के पश्चात् जो दृश्य हरे-भरे उद्यान का हो जाता है वैसा ही उस समय स्थानेश्वर में प्रस्तुत था—वही सर्वव्यापी विध्वंस, वैसी ही शिथिल, प्रताड़ित नीरवता।

चन्द्रशेखर का खिन्न मन और अधिक खिन्न हो गया। उसने अपने अश्व को मुख्य मंदिर की दिशा में मोड़ दिया।

मंदिर का दृश्य और भी अधिक हृदय-विदारक था। उसके बाहरी प्रांगण में बिखरे हुए शव अपनी करुण-कथा कह रहे थे। ये सभी शव ब्राह्मणों के थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मंदिर के गर्भ-गृह से रक्त बहकर बाहर तक आया था। चन्द्रशेखर ने बाहर से ही झांककर देखा गर्भ-गृह में चतुर्दिक पुजारियों तथा ब्राह्मणों के रक्त से लथपथ रुंड-मुंड पड़े थे, और देव-मूर्ति का कहीं पता नहीं था। चन्द्रशेखर के लिए वहाँ खड़े रहना असम्भव हो गया। खिन्न, धीमी गति से चलता हुआ वह मंदिर से बाहर निकल आया और अश्वारूढ़ होकर फिर चल पड़ा। इस समय उसके मस्तिष्क में अधिक सोचने की शक्ति नहीं रह गयी थी। उसे आवास की आवश्यकता थी क्योंकि अंधकार घना होने लगा था और उसके मन में विनाश के और दृश्य देखने का साहस नहीं रह गया था। इसी कारण वह इस समय किसी उत्पीड़ित स्थानेश्वर निवासी से भी नहीं मिलना चाहता था।

अतएव निरुद्देश्य भटकते हुए अपने आप को एक पांथशाला के सामने पाकर उसने रात्रि वहीं व्यतीत करने का निश्चय किया। यह पांथशाला मंदिर से बहुत दूर नहीं थी और उस समय पूर्णतया निर्जन तथा खुली पड़ी थी। तुरुष्क वहाँ आये अवश्य होंगे, यह स्पष्ट था। परन्तु वे अपने पीछे विनाश नहीं छोड़ गये थे। विनाश के लिए उन्हें वहाँ सम्भवतः कुछ मिला ही नहीं होगा।

उस रात्रि चन्द्रशेखर को निद्रा नहीं आयी। आँखें थक कर कई बार लगीं अवश्य परन्तु प्रत्येक बार कोई भयानक स्वप्न देखकर शीघ्र ही फिर खुल गयीं। प्रत्येक बार जब उसकी आँखें खुलती थीं तो उसे अपने कंठ में कांटों का तीक्ष्ण अनुभव होता था, परन्तु उस अज्ञात, निर्जन स्थान में अंधकार के कारण जल की खोज लगभग असम्भव थी। उस सर्वव्यापी, सर्वग्राही अंधकार ने मानो बलात्कृत स्थानेश्वर की निर्जन नीरवता को भी मुखर बना दिया था, मानो वह कराह रही थी, और उसका बेदना-रंजित स्वर शीत बनकर चन्द्रशेखर के रोम-रोम को हिला रहा था। वह रह-रह कर न जाने किस अज्ञात भय से काँप उठता था।

प्रातःकाल भली प्रकार प्रकाश हो जाने के पश्चात् जब वह उठ कर बैठा तब उसकी आँखें जल रही थीं और सारा शरीर टूट रहा था। परन्तु सबसे अधिक कष्ट का अनुभव उसे अपने कंठ-प्रदेश में हो रहा था। वहाँ तरलता का लेश भी नहीं रह गया था, केवल जलन थी और काँटे थे। अतएव उसने उठकर सबसे पहले जल की खोज की। इस समय इसमें अधिक कठिनाई नहीं हुई। वापिका निकट ही मिल गयी। उसने पहले स्वयं जी भर कर शीतल जल पिया, फिर अपने अश्व को पिलाया। जल पीकर अश्व अपनी रुचि की दूर्वा खोजने में संलग्न हो गया, और उसका स्वामी नित्य कर्म से निवृत होने लगा। उस समय सम्पूर्ण स्थानेश्वर नगर में खुले आकाश के नीचे सम्भवतः ये ही दो प्राणी थे। भयभीत नगरवासी अभी अपने छिपने के स्थानों से निकल कर बाहर नहीं आये थे। उन्हें तुरुष्कों के पुनरागमन की आशंका थी।

स्नान करने के पश्चात् चन्द्रशेखर ने अपने आप को अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ अनुभव किया। इस अन्तर में उसका अश्व भी अपना उदर-पोषण कर चुका था। अतएव चन्द्रशेखर ने उस पर आरूढ़ होकर नगर के उस द्वार का मार्ग पकड़ा

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिससे गत दिवस उसने प्रवेश किया था। सूना राजमार्ग उस समय प्रभात की सुनहरी धूप में और अधिक सूना लग रहा था। परन्तु चन्द्रशेखर कहीं रुका नहीं, और न उसने इस विषय में अधिक सोचा ही। इस समय उसका मन कहीं और था।

नगर से बाहर आकर उसने अपने अश्व की गति धीमी कर दी और सतर्कता के साथ, अपने आप को छिपाते हुए, उस दिशा में बढ़ना आरम्भ किया जिधर तुरुष्क शिविर स्थित था। कुछ दूर तक इस प्रकार चलने के पश्चात् वह अश्व पर से उतर पड़ा और उसे एक वृक्ष से बाँधकर स्वयं ओट लेता हुआ एक टीले की ओर बढ़ा। उसकी यह सतर्कता वास्तव में अनावश्यक थी क्योंकि उस टीले के दूसरी ओर लगभग आध कोस की दूरी पर स्थित तुरुष्क शिविर में उस समय किसी को इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं थी कि कोई उनकी गति-विधियों को देख तो नहीं रहा है।

टीले के ऊपर पहुँचकर चन्द्रशेखर ने भी देख लिया कि तुरुष्क शिविर उखड़ चुका है। सेना का कुछ भाग प्रस्थान भी कर चुका था। पश्चिम की ओर उठ रहे धूल के बादल घोषणा कर रहे थे कि महमूद ने गजनी लौट जाने का निश्चय कर लिया है।

चन्द्रशेखर कुछ काल तक वहीं खड़ा-खड़ा तुरुष्कों का प्रत्यागमन देखता रहा, फिर उसने धीरे-धीरे टीले से नीचे उतरना आरम्भ किया। अपने अश्व के निकट पहुँचकर तथा उसे खोल कर वह फिर कुछ काल तक खड़ा-खड़ा न जाने क्या-क्या सोचता रहा। इसके पश्चात् वह अश्व पर आरूढ़ हो गया और उत्तर की ओर चल पड़ा। अब उसके लिये तुरन्त महोत्सवनगर लौटना आवश्यक नहीं रह गया था।

—३५—

चन्द्रशेखर जब स्थानेश्वर से चला था तब उसका मन बहुत खिन्न था परन्तु शरीर से पूर्णतया स्वस्थ था। जब वह लौटकर फिर गंगा के पास पहुँचा तब मन की खिन्नता हल्की पड़ चुकी थी परन्तु शरीर टूटने की स्थिति के निकट आ पहुँचा था। इस अवधि में वह चल ही रहा था, और मन की खिन्नता के कारण शरीर की आवश्यकताओं के प्रति उदासीन रहा था। यही उसके वर्तमान अस्वास्थ्य का मुख्य कारण था।

वैसे वह मन से भी बहुत संतुष्ट नहीं था क्योंकि अपनी यात्रा के उद्देश्य में उसे आशा के अनुरूप सफलता नहीं प्राप्त हुई थी। आरम्भ में नगरकोट से उसे रिक्त-हस्त लौटना ही पड़ा था। वहाँ के राजपूतों ने उसके प्रस्ताव के प्रति तनिक भी उत्साह नहीं प्रदर्शित किया था। वे राजपूत थे, पीछे से आघात करने की कभी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कल्पना भी नहीं कर सकते थे। "हम महमूद के लिए पर्याप्त हैं," उन्होंने सगर्व घोषणा की थी, "हमें न किसी संधि की आवश्यकता है न सहायता की। हमारी अनुपस्थित का लाभ उठाकर तुरुष्क इस ओर आ गये थे, अब साहस करें तो हम भी देखें।" चन्द्रशेखर ने इस गर्वोक्ति का अर्थ यह समझा कि नगरकोट के राजपूत बहुत भयभीत हैं और महमूद के विरुद्ध किसी योजना में सम्मिलित होकर उसे फिर निमंत्रित नहीं करना चाहते हैं। अतएव उसने उन्हें समझाने का अधिक प्रयत्न नहीं किया। परन्तु उसे खेद अवश्य हुआ। वह स्पष्ट देख रहा था कि यही कायरतापूर्ण, संकीर्ण मनोवृत्ति भारत में महमूद का मार्ग प्रशस्त कर रही थी।

उद्भाण्ड में उसे अपेक्षाकृत अधिक सफलता प्राप्त हुई थी, परन्तु उसके लिए दौड़ना भी अधिक पड़ा था। महाराज आनान्दपाल सहज उपलब्ध थे, परन्तु उनसे वह भेंट नहीं करना चाहता था। क्योंकि उनकी महमूद के प्रति मित्रता की नीति अब सर्वविदित हो चुकी थी। युवराज त्रिलोचनपाल से उसे कुछ आशा थी, परन्तु वे राजधानी में उपलब्ध नहीं थे। ज्ञात हुआ कि वे उद्भाण्ड से लगभग अस्सी कोस उत्तर पहाड़ियों में नयी राजधानी का निर्माण करा रहे हैं। परिणामतः चन्द्रशेखर को फिर अश्वारूढ़ होना पड़ा। परन्तु इस लम्बी यात्रा के पश्चात् भी उसकी भेंट केवल राजकुमार भीम के साथ हो सकी क्योंकि युवराज इसी बीच उद्भाण्ड लौट गये थे। राजकुमार भीम ने चन्द्रशेखर के प्रस्ताव में पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की, परन्तु पिता के साथ परामर्श किये बिना वे कोई निश्चित उत्तर देने की स्थिति में नहीं थे। अतएव चन्द्रशेखर को फिर उद्भाण्ड लौटना पड़ा। वहाँ युवराज त्रिलोचनपाल से उसकी भेंट हुई जिसका परिणाम संतोषजनक निकला। युवराज ने उसे आश्वासन दिया कि यदि महमूद ने कभी महोत्सवनगर पर आक्रमण किया तो वे प्रत्येक प्रकार से सहायक सिद्ध होंगे। "चन्देलों ने हमारे पितामह तथा पिता के पक्ष में जो रक्त बहाया है उससे उऋण होने को हम स्वयं बहुत उत्सुक हैं और समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। परन्तु अधिक सम्भवाना इस बात की है," युवराज ने कहा, "कि महमूद अन्तर्वेद तक कभी पहुँचेगा ही नहीं। हम उसे नहीं पहुँचने देंगे। पिताजी जिस नीति का अनुसरण कर रहे हैं वह अधिक दिन नहीं चलेगी। हम आरम्भ से ही उसका विरोध कर रहे हैं, और सेना हमारे साथ है। हमें महमूद से प्रतिशोध लेना है। हम उससे एक टक्कर और लेंगे, और उसे फिर इस ओर देखने के योग्य नहीं रखेंगे। यह हमारी प्रतिज्ञा है। नयी राजधानी का निर्माण हम इसी उद्देश्य से, और महाराज की इच्छा के विरुद्ध, करा रहे हैं।"

इस प्रकार आश्वस्त होकर चन्द्रशेखर जब उद्भाण्ड से चला उस समय वास्तव में उसे चलना नहीं चाहिए था। दो मास से अधिक की अनवरत यात्रा तथा उत्तरोत्तर वृद्धिशील शीत के प्रकोप से जर्जरप्राय उसके शरीर को उस समय विश्राम की अपेक्षा थी। परन्तु चन्द्रशेखर अब यथासम्भव शीघ्र लौटना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहता था। उसे गंगा की चिन्ता बहुत सताने लगी थी। परन्तु यह सम्भवतः उसकी आत्म-प्रवंचना मात्र थी। उसके अन्तर्मन के किसी कोने में लक्ष्मी की कामना सम्भवतः फिर अँगड़ाई लेने लगी थी जिसे वह अपने आप से भी स्वीकार नहीं कर रहा था। उसके उपचेतन में कहीं यह धारणा अवश्य आ बैठी थी कि नये संदर्भ में लक्ष्मी अब उतनी अवांछनीय नहीं रह गयी थी।

अतएव वह युवराज त्रिलोचनपाल से आश्वासन पाने के पश्चात् अविलम्ब उद्भाण्ड से चल पड़ा और यथासम्भव शीघ्रता के साथ यात्रा करने लगा। दिन भर मन पीड़ित शरीर को खींचता रहता था, परन्तु रात्रि में जब चन्द्रशेखर कहीं विश्राम करने के लिये रुकता था तो वह अनुभव करता था कि उसे ज्वर है और अब यात्रा करना बहुत कठिन होगा। प्रातःकाल होते-होते यह कठिनाई फिर सरल प्रतीत होने लगती थी और मनोबल के अश्व पर आरूढ होकर वह फिर चल पड़ता था, मानों कोई उसे खींच रहा हो।

इस प्रकार यात्रा करता हुआ उद्भाण्ड से प्रस्थान करने के पाँच दिन पश्चात् वह उस टीले के निकट पहुँच गया जिसके ऊपर स्थित मंदिर में उसने गंगा को छोड़ा था। उस समय शिशिर का सूर्य नीचे उतरना आरम्भ कर चुका था। चन्द्रशेखर अपने अश्व को दौड़ाता हुआ टीले के ऊपर चढ़ने लगा और शीघ्र ही गंगा की कोठरी के सामने जा खड़ा हुआ।

कोठरी का द्वार भीतर से बंद था, परन्तु उसके बाहर का दृश्य देखकर चन्द्रशेखर का मन प्रफुल्लित हो उठा। द्वार के सामने का स्थान स्वच्छ तथा उसी दिन का लीपा हुआ था और द्वार के आगे सुन्दर मंगल-चौक अंकित थी। चन्द्रशेखर क्षण भर खड़ा उसे देखता रहा, फिर उसने पुकारा, "गंगा"

एक ही पुकार में द्वार खुल गया और गंगा का प्रफुल्ल मुख दिखाई पड़ा। वह बोली, "तुम आ गये ! मैं जानती थी आज अवश्य आओगे।"

"तुम्हें ज्योतिष आता है क्या ?" चन्द्रशेखर ने कहा।

गंगा ने बाहर आकर पहले उसके चरण स्पर्श किये, फिर कहा, "हम स्त्रियों का अपना अलग ज्योतिष होता है जो कभी मिथ्या नहीं उतरता। तुम पूछोगे वह कैसा होता है, पूछोगे न ? तो भीतर चलो, पहले भीतर चलो। यहाँ मैं नहीं बताऊँगी। चलो, पहले चार क्षण बैठ कर विश्राम कर लो और मेरा ज्योतिष समझ लो। फिर हाथ-मुँह धोकर भोजन करना। मैंने तुम्हारे लिए बना कर रखा है। जानती थी न कि तुम आज अवश्य आओगे !"

यह कह कर वह लगभग खींचती हुई चन्द्रशेखर को भीतर ले गयी और एक ओर भूमि पर बिछी हुई अपनी शैय्या के निकट ले जाकर बोली, "यहाँ बैठो, मैं अभी तुम्हें अपना ज्योतिष दिखाती हूँ।"

चन्द्रशेखर बैठ गया और उस छोटी-सी किन्तु स्वच्छ कोठरी का निरीक्षण करने लगा। परन्तु उसे निरीक्षण के लिए अधिक समय नहीं मिला। गंगा शीघ्र ही कोने में रखा हुआ शिला-खंड उठा कर लौट आयी और उसके निकट बैठ कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बोली, "यह है मेरा ज्योतिष !" उसके स्वर से उत्साह फूटा पड़ रहा था।

"यह ?" चन्द्रशेखर ने अपना आश्चर्य व्यक्त किया।

"हाँ, यह ! तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है ?" शिलाखंड उसके सामने रखते हुए गंगा ने कहा, "अच्छा, इन्हें गिनो तो !"

चन्द्रशेखर ने देखा उस शिला खंड के असम धरातल पर गेरू से अनेक रेखाएँ अंकित की गयी थीं। कुछ सीधी थीं तो कुछ टेढ़ी, कुछ आड़ी थीं तो कुछ बेड़ी, परन्तु थीं इतनी कि किसी आकार की एक भी अतिरिक्त रेखा के लिए स्थान नहीं रह गया था।

वह बोला, "इन रेखाओं को ? क्यों ?"

"गिनो तो !"

चन्द्रशेखर ने गिन कर बताया, "पैंसठ हैं !"

"तुम जब मुझे यहाँ छोड़ कर गये थे," गंगा ने कहा, "तबसे इतने दिन पूरे हो चुके हैं। मैं प्रतिदिन सूर्यास्त के पश्चात इस शिला-खंड पर एक रेखा खींच देती थी। कल मैंने देखा कि अब इस पर एक रेखा के लिए भी स्थान शेष नहीं रह गया है। तभी मेरे मन ने कह दिया था कि आज सूर्यास्त से पहले तुम अवश्य आ जाओगे।"

गंगा के इस विचित्र ज्योतिष को देख-समझ कर चन्द्रशेखर को अच्छा लगा और उसने हँसने का प्रयास करते हुए कहा, "तो तुम्हारा ज्योतिष ही आज मुझे यहाँ खींच लाया है ?"

गंगा ने पहली बार दृष्टि उठाकर चन्द्रशेखर के मुख की ओर देखा, और देखते ही उसके मस्तक पर चिन्ता की रेखाएँ उभर आयीं। वह बोली, "तुम वैसे नहीं हो जैसे गये थे। तुम्हारा मुख उतरा हुआ है, और स्वर क्षीण है। क्या अस्वस्थ हो गये थे ?"

"नहीं तो," चन्द्रशेखर ने कहा, "अस्वस्थ होता तो यहाँ तक आता कैसे ? आज थोड़ा ज्वर हो गया लगता है।"

"ज्वर ?" गंगा का हाथ यंत्रवत् चन्द्रशेखर के मस्तक पर जा पहुँचा, "हाँ, है। परन्तु अधिक नहीं है। आज ही हुआ है ?"

"कभी-कभी हो जाता है," चन्द्रशेखर ने स्वीकार किया।

"कब से ?"

"एक सप्ताह हुआ होगा।"

"रात्रि में होता है ?"

"हाँ।"

"तुम्हें शीत लग गया है," गंगा ने घोषणा की।

"सम्भव है," चन्द्रशेखर ने स्वीकार किया, "परन्तु चिन्ता का कोई कारण नहीं है। अब एक सप्ताह में हम महोत्सवनगर में पहुँच जाएँगे, वहाँ शीत और ज्वर दोनों का इलाज हो जाएगा। कल प्रातःकाल प्रस्थान करके तीन दिन में

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मधुपुरी और उसके पश्चात अधिक से अधिक पाँच दिन में महोत्सवनगर। रात्रि में ही प्रस्थान की सारी व्यवस्था कर लेनी है।"

निर्णायक की भाँति सिर हिलाते हुए गंगा ने घोषणा की, "कल प्रस्थान नहीं होगा। परसों भी नहीं होगा। और परसों के पश्चात् भी तब तक नहीं होगा जब तक ज्वर तुम्हें छोड़ नहीं जाता है। जो असावधानी कर चुके सो कर चुके, अब नहीं करने दूंगी। तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है और तुम्हें विश्राम करना होगा।"

इसके पश्चात् चन्द्रशेखर ने बहुत समझाया, बार-बार कहा कि उसका शीघ्रातिशीघ्र महोत्सवनगर पहुँचना नितान्त आवश्यक है, परन्तु गंगा टस से मस नहीं हुई। अन्त में चन्द्रशेखर ने अपने अधिकार की दुहाई देकर आदेशास्त्र का प्रयोग किया, परन्तु वह भी विफल हो गया। गंगा ने कहा, "तुम रोगी हो, और मैं तुम्हारी परिचारिका हूँ। अतएव इस समय आदेश देने का अधिकार मेरा है।" और चन्द्रशेखर को उसका यह अधिकार स्वीकार करना पड़ा।

गंगा परिचर्या में जुट गयी। शीत के रोगी को धरती पर लिटाना उचित नहीं था, अतएव आत्मानन्द की सहायता से उसने एक ऊँचे काष्ठ-पीठ की व्यवस्था की। चन्द्रशेखर के बाहर निकलने पर प्रतिबंध लग गया। आत्मानंद को औषधि लाने के लिए निकट के ग्राम में भेजा गया, और गंगा ने तुलसीदल का काढ़ा बनाकर और उसमें मधु मिलाकर रोगी को पिलाना आरम्भ किया। यह क्रम पूरे तीन दिन चलता रहा, और उसके पश्चात् अनावश्यक हो गया। चन्द्रशेखर का रोग वास्तव में अविश्राम-जन्य था। अतएव तीन दिन के पूर्ण विश्राम और गंगा की अथक सेवा के परिणामस्वरूप वह फिर अपने आप को पूर्ण स्वस्थ अनुभव करने लगा।

तब गंगा ने कहा, "आज रात्रि में यात्रा की व्यवस्था कर लूंगी। क्या मुझे भी महोत्सवनगर चलना है?"

"तुम और कहीं जाना चाहती हो?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"नहीं तो! मेरे लिए दूसरा स्थान बस एक ही है।"

"कौन-सा?"

गंगा ने कहा, "अच्छे-भले में उसका नाम नहीं लेना चाहिए।"

—३६—

गंगा ने रात्रि में ही सारी व्यवस्था कर ली थी, परन्तु प्रस्थान समय से नहीं हो सका। रात्रि के मौन अंधकार में ही किसी समय ऋतु ने भी अपना रूप-परिवर्तन कर लिया था। प्रातःकाल हुआ, परन्तु प्रभात का सूर्य इतने परदों में छिपकर निकला कि ध्यान से देखने पर उसका आभास मात्र मिल सकता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्पूर्ण आकाश, मानो एक अनन्त, अछोर बादल से आवृत, ताँबे के रंग का हो गया था। उत्तर का पवन अपनी एकान्त हिम-गुहा से निकल कर वृक्षों को झकझोरता, शरीरों को भेदता, विक्षिप्त-सा चीत्कार करता दिशाओं में डोलने लगा था।

यह दृश्य देखकर गंगा काँप उठी और बोली, "प्रस्थान स्थगित करना होगा। ऐसे में चलना ठीक नहीं है।"

चन्द्रशेखर को यह व्यस्था नहीं रुची। वह अब रोगी नहीं रह गया था। वह स्वामी था, अतएव आदेश देने का अधिकार उसका था। उसने अपने अधिकार का दृढ़तापूर्वक प्रयोग किया।

परन्तु गंगा विद्रोह पर उतर आयी। उसने कपाट भीतर से बंद कर लिये ओर सट कर धरती पर बैठते हुए कहा, "मैं ऐसे में नहीं चलूंगी, नहीं चलूंगी, नहीं चलूंगी। और तुम्हें भी नहीं जाने दूंगी। देखूं कैसे जाते हो।"

इस नारी हठ के समक्ष चन्द्रशेखर को झुकना पड़ा। उसने कहा, "मैं शीघ्र महोत्सवनगर पहुँचना चाहता था, इस कारण आग्रह कर रहा था। परन्तु तुम्हारा कथन भी सर्वथा मिथ्या नहीं है, ऐसे में चलना कष्टकर सिद्ध हो सकता है। अतएव प्रस्थान स्थगित करना ही अधिक अच्छा रहेगा।"

"हाँ," गंगा ने प्रसन्न होकर कहा, "और यदि कुछ समय पश्चात् स्थिति सुधर जाए, बादल छँट जाएँ और सूर्य निकल आए तो मैं कोई आपत्ति नहीं करूँगी। तब तक भोजन भी बनाये लेती हूँ। रात्रि मे न जाने कहाँ रुकना पड़े।"

और वह उठकर भोजन की व्यवस्था में व्यस्त हो गयी।

मध्याह्न से कुछ पूर्व जब चन्द्रशेखर भोजन कर रहा था तो सूर्य सहसा बादलों के आवरण को हटाकर बाहर निकल आया। चन्द्रशेखर ने मुस्करा कर गंगा की ओर देखा, गंगा ने उत्तर में स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया। किन्तु कुछ ही क्षणों में बादलों ने पुनर्संगठित होकर फिर सूर्य को ढक लिया। इस बार गंगा ने मुस्कराकर चन्द्रशेखर की ओर देखा, और चन्द्रशेखर ने कोई उत्तर नहीं दिया।

परन्तु जब गंगा स्वयं भोजन करके उठी तब तक सूर्य फिर निकल आया था। वह बिना कुछ कहे शीघ्र ही यात्रा के लिए तत्पर हो गयी, और इस प्रकार दोनों ने, पूर्ववत एक ही अश्व पर, मधुपुरी की दिशा में प्रस्थान किया।

लगभग दस कोस का अन्तर उन्होंने बिना कहीं रुके पार कर लिया। आकाश में सूर्य बादलों के साथ आँखमिचौली खेल रहा था, कभी छिप जाता था तो कभी निकल आता था।

परन्तु एक बार वह ऐसा छिपा कि फिर उस दिन निकला ही नहीं। पवन का विक्षेप फिर द्विगुणित वेग से आरम्भ हो गया और उसमें शीत की मात्रा बढ़ने लगी। नये बादल न जाने कहाँ-कहाँ से दौड़-दौड़कर आने लगे, छाया अंधकार में परिणत होने लगी और अंधकार शीघ्रतापूर्वक घना होने लगा। बादलों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गम्भीर गर्जन आरम्भ हो गया और बिजली निश्शील तड़पने लगी। झुंड के झुंड शरणातुर पक्षी घने वृक्षों की ओर भागने और उनमें विलीन होने लगे। यदा-कदा मृग, शशक इत्यादि वन्य पशु भी भयातुर भागते हुए दिखाई पड़ने लगे।

गंगा ने चन्द्रशेखर की कटि में पड़ी अपनी दोनों बाँहों को सुदृढ़ करते कहा "लक्षण अच्छे नहीं हैं, शीघ्र ही कहीं शरणस्थल खोजो।"

लक्षण चन्द्रशेखर भी देख रहा था, परन्तु शरणस्थल कहीं दृष्टि में नहीं आ रहा था। मार्ग के दोनों ओर कहीं वृक्ष थे तो कहीं खेत। दूर तक कहीं किसी ग्राम अथवा बस्ती का चिह्न भी नहीं दिखाई पड़ रहा था। उसने अपने अश्व की गति और बढ़ाते हुए कहा, "यहाँ केवल वृक्ष हैं।"

"वृक्ष पर्याप्त नहीं होंगे," गंगा ने कहा।

चन्द्रशेखर भी जानता था कि वृक्ष पर्याप्त नहीं होंगे, अतएव वह बिना कुछ उत्तर दिये अधिकतम गति से इस आशा में आगे बढ़ने लगा कि खेत हैं तो आस-पास कहीं कोई ग्राम भी अवश्य होगा।

तभी गंगा सहसा चिल्ला उठी। "वह देखो ! उधर !" अपना एक हाथ मुक्त करके संकेत करते हुए उसने कहा।

चन्द्रशेखर ने इंगित दिशा में दृष्टि घुमायी। दाहिनी ओर मार्ग से थोड़ा हटकर वृक्षों के एक झुरमुट में लगभग छिपी हुई फूस की एक ऊँची मड़ैया-सी दिखाई पड़ रही थी। चन्द्रशेखर ने बिना कुछ कहे अपना अश्व तुरत उस दिशा में मोड़ दिया और बीच के खेतों को रौंदते हुए आगे बढ़ना आरम्भ किया। परन्तु उस स्थान तक पहुँचने से पहले बूंदों के साथ छोटे-छोटे ओले गिरने लगे। ओले शरीर पर लगते ही अश्व ने स्वतः अपनी गति और बढ़ा दी, और गंगा ने चन्द्रशेखर की कटि को अमूल्य निधि की भाँति दोनों बाँहों में कस लिया।

यात्रियों के सौभाग्य से वह स्थान उस समय शरण के लिए बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ। वह वास्तव में किसी समृद्ध क्षेत्रपति द्वारा रात्रि में अपने खेतों की रक्षा करने वालों की सुविधा के लिए निर्मित एक मड़ैया थी। रात्रि में उस स्थान पर सम्भवतः कभी-कभी हिंस्र पशु भी आ जाया करते होंगे, इस कारण मड़ैया धरती से लगभग आठ हाथ की ऊँचाई पर बनायी गयी थी। अनगढ़ शिला खंडों से निर्मित चार आधार स्तम्भों पर काठ का एक मंच था जिसे चारों ओर से तथा ऊपर से ढककर मड़ैया का रूप दे दिया गया गया था। चन्द्रशेखर तथा गंगा ने अश्व-सहित उस मंच की छाया में शरण ग्रहण की।

आकाश मानों इन दो यात्रियों के कारण इस समय तक संकोच करता रहा था। उनके सुरक्षित स्थान में पहुँचते ही उसने भैरव का रूप धारण कर लिया। उसके सहस्र-सहस्र कर्णभेदी डमरू एक साथ बज उठे। छोटे-बड़े दाड़िम के आकर तक के ओले प्रचण्ड वेग से धरती पर गिरने लगे। रह-रह कर, कभी इधर तो कभी उधर, बिजली चमकने लगी, मानों आकाश अपनी विनाश-लीला निहारने के लिए बार-बार अपने विशाल नयन खोल रहा हो। देखते-देखते खड़े खेत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धराशायी हो गये, दृष्टि पर्यन्त धरती हिम-धवला हो गयी, और वृक्षों की आधी पत्तियाँ उनसे विलग होकर उनके चरणों में आ बिछीं।

ओले समाप्त होते ही मूसलाधार वर्षा आरंभ हो गयी और पवन का वेग इतना बढ़ गया कि बौछार मंच के नीचे खड़े यात्रियों को भी भिगोने लगी। पहले जो स्थान सुरक्षित था वह अब सुरक्षित नहीं रह गया। गंगा शीत के कारण थर-थर काँपने लगी। उसकी यह दशा देखकर चन्द्रशेखर ने कहा, "मुझे शीत लग रहा है, गंगा। ऊपर मड़ैया में न चढ़ चलें ?"

"वहाँ कोई होगा," गंगा ने आपत्ति की।

"होगा तो कुछ सहायता ही करेगा, ऐसे में भगा तो देगा नहीं," चन्द्रशेखर ने कहा, "और इस समय हमारे सामने अन्य कोई उपाय भी नहीं है। तुम अभी यहीं रहो, मैं ऊपर जाकर देखता हूं।"

ऊपर पहुँचना उतना सरल नहीं सिद्ध हुआ जितना चन्द्रशेखर ने सोचा था। मंच धरती से आठ हाथ की ऊँचाई पर टँगा हुआ था और उस पर चढ़ने के लिए कोई नियमित व्यवस्था नहीं थी। चन्द्रशेखर ने तो एक निकटवर्ती वृक्ष पर चढ़ कर, उसकी एक डाल के सहारे मंच के ऊपर तक पहुँच कर, और वहाँ से नीचे मंच पर कूदकर किसी प्रकार इस कठिनाई का निराकरण कर लिया, परन्तु उसे चिन्ता इस बात की कि थी यह वानर-लीला गंगा के लिए सम्भव नहीं होगी।

परन्तु सौभाग्य से इस कठिनाई का समाधान उसे मड़ैया में प्रवेश करते ही प्राप्त हो गया। खेतों की ओर स्थिति मंच का अग्र-भाग, जहाँ वह कूदा था, खुला हुआ था। लगभग तीन हाथ चौड़े इस भाग के अतिरिक्त शेष मंच चारों ओर से तथा ऊपर से ढका हुआ था। चारों ओर की दीवारें बांस और फूस की थीं, ऊपर की छत भी बांस और फूस की ही थी। इस प्रकार घिरा हुआ स्थान बहुत थोड़ा था। अग्र भाग में दाहिनी ओर, जहाँ चन्द्रशेखर कूदा था उसके ठीक सामने, मड़ैया के भीतर जाने के लिए एक छोटा-सा द्वार था जो इतना नीचा था कि चन्द्रशेखर को प्रवेश करने के लिए लगभग दुहरा झुक जाना पड़ा।

मड़ैया सूनी पड़ी थी। चन्द्रशेखर ने सोचा, रक्षक संध्या को आते होंगे और आज सम्भवतः नहीं आएँगे। उसने इधर-उधर दृष्टि दौड़ायी। बायीं ओर फूस का मोटा बिछावन-सा फैला था और उसके निकट अर्ध-अन्धकार में लकड़ी की एक हल्की सीढ़ी पड़ी हुई थी। उसे देखकर चन्द्रशेखर के मस्तिष्क पर से एक भार हट गया। उसने शीघ्रतापूर्वक सीढ़ी बाहर निकाली और उसे नीचे लटका दिया। फिर उसने गंगा को पुकार कर कहा, "यहाँ कोई नहीं है, गंगा, और स्थान बहुत अच्छा है।"

इसके पश्चात् वह सीढ़ी के सहारे उतर कर नीचे आया। मंच के नीचे पहुँचकर उसने सबसे पहले अश्व की पीठ पर से अपनी तथा गंगा की वस्त्रादि सम्पूर्ण चल-सम्पत्ति उतार कर गंगा के हाथों में पकड़ायी और अश्व को निकट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के वृक्ष से इस प्रकार बाँध दिया कि उसे आवश्यकतानुसार स्थान-परिवर्तन की पूरी स्वतन्त्रता रहे। फिर उसने गंगा से कहा, "तुम ऊपर चली जाओ, वस्त्रादि तुम्हें पकड़ाकर मैं भी आजाऊँगा।"

और इस प्रकार ऊपर पहुँचकर उसने अन्त में सीढ़ी खींच ली और उसे द्वार के निकट खुले में ही डाल दिया।

वर्षा का वेग इस अन्तर में कुछ कम हो गया था, किन्तु पवन की तीक्ष्णता समय के साथ बढ़ती जा रही थी।

चन्द्रशेखर के सारे वस्त्र भीग गये थे और वह शीत के कारण काँप रहा था। काँप गंगा भी रही थी, परन्तु वह उतना अधिक भीगी नहीं थी। उसने भीतर पहुँचते ही बिना कुछ कहे सूखे वस्त्र निकालकर चन्द्रशेखर को दिये और फिर बिछे हुए फूस पर बिछावन डालकर उसके लिए विश्राम की व्यवस्था करने लगी। चन्द्रशेखर वस्त्र बदलकर उस पर जा बैठा। वह अब भी कांप रहा था, शीत उसकी अस्थियों तक में व्याप्त हो गया था।

गंगा अपना कार्य समाप्त करके भी बैठी नहीं। इस समय वह असाधारण रूप से मौन तथा गम्भीर थी।

चन्द्रशेखर ने पूछा, "तुम कहाँ लेटोगी ?"

"यहाँ," गंगा ने हाथ से दिखाते हुए उत्तर दिया।

"वहाँ ? द्वार के सामने ? वहाँ शीत लगेगा।"

"और कहीं स्थान भी तो नहीं है," गंगा ने कहा।

बात सत्य थी, और सत्य नहीं भी थी। चन्द्रशेखर कुछ क्षण उस पर विचार करता रहा, फिर बोला, "तो वहीं बिछा लो। परन्तु शीघ्रता करो। फिर अन्धकार में बड़ी कठिनाई होगी।"

बाहर अभी गोधूलि का सा प्रकाश था, परन्तु भीतर अंधकार हो आया था।

गंगा ने शीघ्रता की। उसका बिछावन भी द्वार के ठीक सामने बिछ गया और वह भी चन्द्रशेखर की भाँति ओढ़ कर बैठ गयी।

चन्द्रशेखर ने एक बार फिर धीमे स्वर में कहा, "गंगा, वहाँ तुम्हें शीत लग रहा होगा ?"

गंगा को शीत लग रहा था। अहेरी पवन खुले द्वार से बार-बार उसके शरीर पर लक्ष्य-वेध कर रहा था, और उसका रोम-रोम काँप रहा था। परन्तु उसने अत्यधिक धीमे स्वर में कहा, "नहीं।"

इसके पश्चात् विलम्ब तक मौन का साम्राज्य रहा। बाहर प्रकाश का आभास भी शेष नहीं रह गया, भीतर का अन्धकार इतना गहरा हो गया कि अपना हाथ भी न दिखाई पड़े। वृष्टि धीमी पड़ चुकी थी परन्तु अभी बंद नहीं हुई थी। चन्द्रशेखर लेट गया था, परन्तु शीत के कारण अपने अंगों को अनेक मुद्राओं में समेटने का प्रयास कर रहा था और निद्रा उसकी आँखों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोसों दूर थी। गंगा अब भी पूर्ववत् सिमटी-सिकुड़ी, मौन बैठी थी।

सहसा चन्द्रशेखर ने पुकारा, "गंगा!"

"हाँ," क्षीण स्वर में उत्तर मिला।

"तुम अभी सोयी नहीं हो?" चन्द्रशेखर ने अनावश्यक प्रश्न किया।

"नहीं।"

"तो फिर मौन क्यों हो? कुछ कहो तो समय ही कटे।"

"तुम्हीं क्यों नहीं कुछ कहते हो?" गंगा ने कहा।

"मैं? मैं तो सुनने का अभ्यस्त हूँ, गंगा।"

गंगा फिर मौन हो गयी और उस गहन अंधकार में स्वर का आदान-प्रदान कुछ काल के लिए फिर बंद हो गया, जिससे ऊबकर अन्त में चन्द्रशेखर ने फिर पुकारा, "गंगा!"

"तुम मुझे अपने साथ महोत्सवनगर क्यों लिए चल रहे हो?" गंगा ने तुरन्त पूछा, मानों वह इस पुकार की राह ही देख रही हो।

"तुम कहीं और जाना चाहती हो क्या?" चन्द्रशेखर ने प्रश्न किया।

"नहीं," गंगा ने उत्तर दिया, "मैं कहीं और नहीं जाना चाहती हूँ। जा ही नहीं सकती हूँ, क्योंकि मेरे लिए संसार में अन्य कोई स्थान नहीं है। परन्तु प्रश्न मेरी इच्छा का नहीं, तुम्हारी का है। तुम क्या चाहते हो? मुझे अपने साथ क्यों लिए चल रहे हो?"

चन्द्रशेखर ने कुछ क्षण रुककर उत्तर दिया, "मैंने अभी इस सम्बन्ध में कुछ विचार नहीं किया है।"

"कब करोगे?" गंगा ने पूछा।

"महोत्सवनगर चलकर देखूँगा"।

"देखोगे? और वह भी महोत्सवनगर चलकर? आज अभी क्यों न कर डालो? कठिनाई क्या है?"

"कठिनाई तो कोई नहीं है," चन्द्रशेखर ने कहा, और फिर बिना वाक्य पूरा किये मौन धारण कर लिया।

गंगा कुछ क्षण तक उसके बोलने की प्रतीक्षा करती रही, फिर स्वयं भी लेट गयी और कहने लगी, "अब सो जाओ। मुझे निद्रा लग रही है।"

उसी समय बाहर से पवन का एक अधिक शक्तिशाली झोंका भीतर घुस आया। गंगा सिर से पैर तक काँप उठी।

चन्द्रशेखर की ओर से फिर स्वर आया, "तुम्हें शीत लग रहा होगा?"

"मैं उसकी अभ्यस्त हूँ, गंगा ने उत्तर दिया, "मुझे कुछ नहीं होगा। अब सो जाओ और मुझे भी सोने दो।"

गंगा का यह स्वर इतना नया था कि चन्द्रशेखर चौंक गया। उसे स्मरण हो आया। यह स्वर उसने सुमेरगढ़ में भी सुना था। संदर्भ दूसरा था, शब्द भिन्न थे, परन्तु स्वर यही था। वह लक्ष्मी के सम्बन्ध में सोचने लगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और लक्ष्मी के सम्बन्ध में सोचते-सोचते न जाने कब उसकी आँख झपक गयी।

परन्तु गंगा की आँखों से निद्रा बहुत दूर थी, और उसके मन-प्राण को जो अदृश्य झंझावात झकझोर रहा था वह वृक्षों के आततायी झंझावात से कहीं अधिक प्रबल, कहीं अधिक भयानक और कहीं अधिक विक्षेपकर था।

इस अन्तर में बाहर वर्षा का वेग फिर बढ़ गया था। जो बादल बरस कर रिक्तप्राय हो चुके थे, उनका स्थान नये, भरे बादलों ने ले लिया था। दामिनी फिर रह-रह कर भयंकर अट्टहास करती हुई चमकने लगी थी। वह जब चमकती थी तो क्षणांश के लिए एकान्त पर्णशाला को भी आलोकित कर जाती थी जिसमें उस समय एक पुरुष सो रहा था और एक नारी जग रही थी, और उस क्षणांश में गंगा की दृष्टि हठात् उस ओर उठ जाती थी जहाँ चन्द्रशेखर सोया था।

एक बार दामिनी असाधारण रौद्र स्वर में कड़की, और उसका अधिक तीव्र प्रकाश क्षणांश से कुछ अधिक काल तक बना रहा, मानों वह द्वार पर आकर खड़ी हो गयी हो। गंगा चौंककर उठ बैठी।

उसी समय पवन का अधिक तीक्ष्ण झोंका खुले द्वार से भीतर घुस आया और अपने शत-शत शरों से गंगा का सम्पूर्ण शरीर बेध गया।

अंधकार ने दामिनी को फिर अपने श्याम अंक में समेट लिया, परन्तु गंगा उठकर फिर नहीं लेटी। वह कुछ काल तक शीत से काँपती हुई बैठी कुछ सोचती रही, फिर ओढ़ने के वस्त्र में लिपटी हुई उठकर खड़ी हो गयी।

सघन अंधकार में पैरों से फूस की शैय्या को टटोलती हुई वह चन्द्रशेखर के निकट जा खड़ी हुई और कुछ क्षण तक मौन खड़ी रही। फिर उसने झुककर दोनों हाथों से चन्द्रशेखर का शरीर टटोला और इस प्रकार स्थिति-ज्ञान प्राप्त करके अपना ओढ़ने का वस्त्र उतार कर उसके ऊपर डाल दिया। इसके पश्चात् वह स्वयं भी दुहरे ओढ़ावन के नीचे चन्द्रशेखर के शरीर की अपेक्षाकृत अधिक उष्णता से अपने शीत-ग्रस्त शरीर को सेंकती हुई, लेट गयी।

चन्द्रशेखर उस समय जग रहा था। दामिनी के भैरव अट्टहास ने उसकी निद्रा भी खंडित कर दी थी।

प्रातः काल जब चन्द्रशेखर जगा तब तक गंगा नहीं उठी थी। उसने सिर तक ओढ़ रखा था।

चन्द्रशेखर उठकर द्वार से बाहर निकला। वर्षा रात्रि में ही किसी समय बंद हो चुकी थी। सूर्य इस समय क्षितिज से ऊपर आ चुका था, परन्तु उसकी किरणें सम्पूर्ण वातावरण में व्याप्त घने कुहरे को भेद नहीं पा रही थीं। कुहरे ने सूर्य की किरणों के साथ चतुर्दिक फैले हुए गत रात्रि के विनाश को भी अपने विस्तीर्ण आँचल में छिपा रखा था।

चन्द्रशेखर फिर भीतर लौट आया। गंगा पूर्ववत् भली प्रकार ढकी-लिपटी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ी थी। चन्द्रशेखर ने उसके मुख पर से वस्त्र हटा लिया। उसकी आँखें मुंदी थीं, और उसके मुख पर संतोष का एक ऐसा भाव था जिसे चन्द्रशेखर वहाँ पहली बार देख रहा था।

चन्द्रशेखर ने बिना कुछ कहे दोनों हाथों से पकड़कर उसे झकझोर दिया।

गंगा कुनमुनायी, परन्तु उसने अपनी आँखें नहीं खोलीं।

तब चन्द्रशेखर ने अपनी क्रिया के उद्देश्य को स्वर देते हुए कहा, "उठो।"

गंगा ने आँखे खोलीं और चन्द्रशेखर को देखा। फिर वह मुस्करायी, उठ कर बैठ गयी, और उसके चरण स्पर्श करती हुई बोली, "क्यों ? मुझे गत रात्रि के झंझावत की सुधि क्यों दिला रहे हो ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "चलना नहीं है क्या ? अब तक पड़ी सो रही हो।"

"चलना क्यों नहीं है" गंगा ने उत्तर दिया, "और मैं सो कहाँ रही थी जो भोर होते ही प्रताड़ना करने लगे हो ?"

"तो क्या कर रही थीं ?"

गंगा ने कहा, "यह मैं नहीं जानती। परन्तु सो नहीं रही थी। जब तुम उठ कर बाहर गये थे तब भी नहीं सो रही थी।"

चन्द्रशेखर निरुत्तर हो गया। बोला, "तो उठो, चलो।"

"परन्तु अभी तो प्रभात भी नहीं हुआ है," गंगा ने आपत्ति की।

"प्रभात अब कल होगा," चन्द्रशेखर ने कहा। "कुहरा है जिसके कारण प्रकाश अभी उभर नहीं पाया है।"

"तो क्या ऐसे में ही चल दोगे ?"

"हाँ। यहाँ विलम्ब करना व्यर्थ है। किसी ऐसे स्थान पर चल कर रुकेंगे जहाँ जल और उसके साथ कुछ कलेवा करने को भी मिल सके, क्षुधा सता रही है।"

गंगा उठकर खड़ी हो गयी और वस्त्र सँभालती हुई बोली, "तो चलो। जहाँ जल मिले वहाँ रुक जाना। कलेवा के लिए थोड़ा पक्वान्न अपने पास है।"

— ३७ —

चन्द्रशेखर लौट कर महोत्सव नगर आ गया।

परन्तु वह अकेला ही लौटा था। गंगा को वह श्रीपथ में अपने एक परिचित के यहाँ छोड़ आया था। गंगा इसके लिए सहमत नहीं हो रही थी। परन्तु जब चन्द्रशेखर ने यह कहा कि चन्देल राज्य में उसे अपने साथ अश्व पर बैठा कर ले जाना उसके लिए हानिकर सिद्ध हो सकता है तो वह तुरन्त मान गयी।

अतएव महोत्सवनगर पहुँचकर चन्द्रशेखर ने सबसे पहले गंगा को श्रीपथ से बुलाने की व्यवस्था की। उसने शंकर को बुलाकर पहले उसे भली प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समझाया कि कहाँ जाना है, किससे मिलना है, क्या कहना है और क्या करना है, और फिर आदेश दिया कि वह अगले दिन प्रातःकाल ही रथ लेकर चला जाए ।

शंकर ने बिना विशेष उत्साह प्रदर्शित किये आदेश सुन लिया, परन्तु न कुछ कहा न वहाँ से जाने की तत्परता ही दिखायी । उसे धरती पर दृष्टि गड़ाये खड़ा देखकर चन्द्रशेखर ने पूछा, "क्यों ? कुछ कहना चाहता है?" वह अपने अनुचर-अभिभावक की इस मुद्रा से भली प्रकार परिचित था ।

शंकर ने अपने शरीर का भार बाएँ पैर से हटा कर दाहिने पर डाला, कंठ के संदिग्ध अवरोध का श्वासोपचार किया, और फिर बिना दृष्टि ऊपर उठाये कहा "यह कौन हैं ?" उसकी मुद्रा अनुचर की थी, परन्तु स्वर अभिभावक का था ।

चन्द्रशेखर ने कहा, "कौन, गंगा ? वह एक स्त्री हैं, मूर्ख ।"

"कैसी है ?" तुरन्त दूसरा प्रश्न हुआ ।

"जैसी स्त्रियाँ होती हैं, जैसी तेरी पत्नी होती यदि विधाता तेरे भाग्य में विवाह लिखना भूल न गये होते ।"

परन्तु शंकर की गम्भीरता रंचमात्र विचलित नहीं हुई । उसने पूर्ववत् स्वर में फिर पूछा, "वह यहाँ क्या करने आ रही है ?"

"तेरा सिर फोड़ने," चन्द्रशेखर ने झुँझलाकर कहा ।

"वह यहाँ क्या करने आ रही है ?" शंकर ने अविचलित भाव से फिर पूछा ।

"तेरा उपचार करने," चन्द्रशेखर ने कहा ।

"मेरा उपचार ? मुझे क्या हुआ है ?"

"तू बहुत निरंकुश हो गया है, उसका उपचार करेगी । अब वह यहीं रहेगी और तेरे ऊपर शासन करेगी, तेरी स्वामिनी बन कर रहेगी ।"

शंकर तन गया । उसकी दृष्टि ऊपर उठ गई और वह बोला, "मैं श्रीपथ नहीं जाऊँगा । मैं उसे अथवा किसी और को, एक के अतिरिक्त किसी भी और को, स्वामिनी स्वीकार नहीं करूँगा । मैं उसे हवेली में पैर भी नहीं रखने दूंगा । मैं उसकी हत्या कर दूंगा, उसकी भी और सुमेरगढ़ वाली रानी की भी । श्रीपथ जाना हो तो तुम स्वयं चले जाओ, मैं कालंजर जा रहा हूँ ।"

"मैं कालंजर जा रहा हूँ" को शंकर अपना ब्रह्मास्त्र समझता था, क्योंकि चन्द्रशेखर सदा इसके सम्मुख अपने अस्त्र डाल दिया करता या । परन्तु इस युद्ध में अन्तिम विजय किसकी होती है, शंकर का सच्चा-सीधा हृदय इस विषय में कभी विचार नहीं करता था । वह यह भी नहीं समझ पाता था कि चन्द्रशेखर जान-बूझकर पहले उसे उत्तेजित कर देता है और फिर कभी समझाकर, बहला कर, और कभी आत्म समर्पण का आडम्बर रचकर अन्त में अनिवार्य रूप से अपना मनचाहा करा लेता है । उस समय भी उसने यही किया । उसने अपनी सौगंध देकर कालंजर न जाने और माता से कुछ न कहने का बार-बार अनुरोध किया, हवेली में उसकी स्वीकृत स्वामिनी को ही लाने का आश्वासन दिया, और इस प्रकार अन्त में शंकर को द्रवीभूत कर लिया । शंकर श्रीपथ जाने के लिए

सहमत हो गया, और संध्या हो रही थी इस कारण यात्रा का प्रबंध करने के लिए तत्परता पूर्वक वहाँ से चला गया।

रात्रि में पर्याप्त विश्राम-लाभ करके तथा प्रातःकाल शंकर को श्रीपथ भेजकर चन्द्रशेखर प्रासाद में युवराज विद्याधर से भेंट करने गया।

— ३८ —

महामात्य प्रभास के निधन के पश्चात् महोत्सवनगर की राजनीति में कई ऐसे तत्व प्रबल हो उठे थे जो अन्ततोगत्वा राज्य तथा देश, दोनों के लिए अहितकर सिद्ध हो सकते थे। महामात्य ने अपने जीवन के अन्तिम दो-तीन वर्षों में अपने आपको निवृत-सा कर लिया था। वे शासन-चक्र के सामान्य संचालन में यथासम्भव हस्तक्षेप नहीं करते थे, और अधिक महत्वपूर्ण विषयों में भी केवल परामर्श देते थे। परन्तु उस परामर्श की अवहेलना करने का साहस किसी में नहीं था, और अन्त में वही राज्य की नीति बन जाता था। अब राज्य उससे वंचित हो गया था, और महामात्य के अभाव की पूर्ति करनेवाला, उनके अनुभव, उनकी विद्वत्ता, उनकी अन्तर्दृष्टि और दूरदर्शिता वाला कोई दूसरा व्यक्ति मिलना बहुत कठिन था। इसके अतिरिक्त महामात्य अपनी आयु तथा विशिष्ट स्थिति के कारण, महाराज से लेकर सामान्य अधिकारियों तक, सभी के आदर-भाजन थे। सब उनसे डरते थे, सब पर उनका अंकुश था। अब उनकी मृत्यु के परिणामस्वरूप वह अंकुश नहीं रह गया था। सभी निरंकुश हो चले थे और खुलकर अपनी नव-प्राप्त स्वच्छंदता का दुरुपयोग कर रहे थे।

स्वयं महाराज गंडदेव इन स्वेच्छाचारियों के अग्रणी थे। कविता-कामिनी के उपासक वे पहले से ही थे। परन्तु महामात्य के सामने जो थोड़ा-सा संकोच रहता था, जो थोड़ा-सा द्वैत-भाव था, वह अब नहीं रह गया था। वे स्वयं भी काव्यरचना करते थे और सदा कवियों तथा काव्य-मर्मज्ञों से घिरे रहते थे जिनमें यथार्थ कम होते थे, आडम्बर करनेवाले अधिक। महाराज अब राजधानी में रहते भी कम थे। उनका अधिकांश समय खजुराहो में व्यतीत होता था। कवियों, संगीतज्ञों तथा चाटुकार परजीवियों की एक सेना उनके पीछे चलती थी, और राज्य के चतुर अधिकारीगण खजुराहो जाकर तथा महाराज के काव्य की प्रशंसा करके उनसे इच्छित आदेश प्राप्त कर लाते थे।

राज्य का शासन-चक्र अब पूर्णतया सर्वाधिकरण जाजुक के हाथों में था, और बड़े अलसित भाव से चल रहा था। जाजुक साधारणतया एक कुशल प्रशासक और भेद-नीति का विशेषज्ञ था। परन्तु विद्वता के साथ-साथ उसमें साहस और दूरदर्शिता का भी अभाव था, और उसका दृष्टिकोण बहुत सीमित था। तुरुष्कों के सम्बंध में महामात्य प्रभास की नीति को वह हृदय से कभी स्वीकार नहीं कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाया था। उसकी धारणा थी कि तुरुष्क चन्देल राज्य की सीमा तक कभी नहीं आ सकेंगे, अतएव महोत्सवनगर को उनसे अकारण शत्रुता नहीं मोल लेनी चाहिए। महामात्य के जीवन-काल में वह अपनी इस धारणा को कभी व्यक्त भी नहीं करता था, परन्तु अब उनकी मृत्यु के पश्चात् उसी के अनुसार शासन की नीतियों का नियमन करने लगा था। महाराज को प्रसन्न रखने की कला में वह पारंगत था, अतएव उसकी नियामक सत्ता को चुनौती देना बड़ा कठिन था।

यह युवराज विद्याधर की सबसे बड़ी समस्या थी। युवराज एक शूर-वीर महत्वाकांक्षी नवयुवक थे। उन्हें युद्ध से प्रेम था, युद्ध उनका व्यवसाय भी था और मनोरंजन भी। राजनीति में उनका प्रशिक्षण महामात्य प्रभास के निर्देशन में हुआ था, जिसके परिणामस्वरूप उनके साहस पर विवेक और दूरदर्शिता का पुट चढ़ गया था। वे जाजुक की नीति से सहमत नहीं थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि चन्देलों को महमूद के आक्रमण की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि प्रत्येक अभियान के साथ उसकी शक्ति-वृद्धि हो रही थी और उसी अनुपात में भारतीयों का मनोबल क्षीण होता चला जा रहा था। परन्तु महामात्य की मृत्यु के पश्चात् युवराज एक प्रकार से असहाय और अनाथ हो गये थे। वे जाजुक की नीति का विरोध करना चाहते थे, परन्तु असमर्थ थे। जब महाराज स्वयं उसका समर्थन कर रहे थे तो उसका विरोध करना शिला से सिर टकराने के समान था। वह कूप-मंडूकता, अकर्मण्यता और स्वार्थपरता की नीति थी, अन्य सभी भारतीय राज्य उसका अनुकरण कर रहे थे, तथा महाराज भी उसी के पक्ष में थे। अतएव उसे सहज ही चारों ओर से समर्थन प्राप्त होने लगा था। युवराज अकेले पड़ गये थे, सहायता दूर रही, उन्हें समर्थक भी नहीं मिल पा रहे थे।

परन्तु समर्थन के अभाव में भी उनकी आस्था क्षीण नहीं हुई थी, और सहायकों के अभाव में भी उनके प्रयास का अन्त नहीं हुआ था। उन्होंने प्रयत्न करके अपने आप को सम्पूर्ण चन्देल सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त करा लिया था। उनकी दृष्टि भविष्य पर थी। सेना को अपने हाथ में तथा युद्ध के लिए सुसंगठित रखना भविष्य से सम्बंधित उनकी अपनी योजना के लिए आवश्यक था। अतएव आजकल वे इस कार्य में अत्यधिक व्यस्त थे।

परन्तु अत्यधिक व्यस्त होने पर भी उन्होंने सूचना पाते ही तुरन्त चन्द्रशेखर से भेंट की और उसकी यात्रा का विस्तृत विवरण सुना। विजयसिंह से संबंधित वृत्तांत को उन्होंने विशेष ध्यान से सुना और कई प्रश्न पूछे। जब चन्द्रशेखर अपना विवरण समाप्त कर चुका तब उन्होंने टिप्पणी की, "इसका अर्थ हुआ कि त्रिलोचनपाल के अतिरिक्त किसी में महमूद के विरुद्ध खड़े होने का साहस नहीं है।"

"और युवराज त्रिलोचनपाल का साहस वर्तमान संदर्भ में निरर्थक है," चन्द्रशेखर ने कहा, "क्योंकि सत्ता उनके हाथ में नहीं है।"

अर्थात् महमूद का अगला अभियान हमारे विरुद्ध होगा," युवराज ने मुखर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिन्तन-सा करते हुए कहा। "बीच में कोई उसे रोकने वाला नहीं रह गया है। परन्तु और कोई करे या न करे, हम उसका अवरोध अवश्य करेंगे, और वह युद्ध भारत-भूमि पर उसका अन्तिम युद्ध होगा।"

इसके पश्चात् युवराज ने एक छोटा-सा सम्भाषण दे डाला जिसमें उन्होंने अपने उद्देश्य की कई प्रकार से व्याख्या की, महामात्य के निधन से हुई देश की तथा अपनी क्षति का कई बार उल्लेख किया, और एक बार चन्द्रशेखर की सराहना भी की। परन्तु अपनी भविष्य की योजना पर उन्होंने रंचमात्र प्रकाश नहीं डाला, और अपनी कठिनाइयों की ओर संकेत तक नहीं किया। सम्भाषण के अन्त में उन्होंने कहा, "मुझे विश्वास है कि तुम हमारे उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होगे। परन्तु इस समय मैं बहुत व्यस्त हूँ। महाराज ने प्रधान सेनापति का पद देकर मुझे सम्मानित किया है। उत्तरदायित्व भारी पड़ रहा है, परन्तु उसके प्रति न्याय तो करना ही है। इसी कारण व्यस्त हूँ। तुम्हें भी लम्बी और कठिन यात्रा के पश्चात् विश्राम की आवश्यकता होगी। परन्तु उपलब्ध रहना, मैं शीघ्र ही तुम्हारे लिए उपयुक्त उत्तरदायित्व खोजकर तुम्हें स्मरण करूँगा।"

युवराज वास्तव में बहुत व्यस्त थे। जब चन्द्रशेखर प्रणाम करने के लिए झुका तब वे उठकर खड़े हो चुके थे।

—३९—

चन्द्रशेखर निर्दिष्ट विश्राम का सेवन करने लगा।

परन्तु वह एक स्वस्थ और खुली हवा का अभ्यस्त युवक था, और हवेली में उस समय अकेला था। अतएव दो दिन में ही विश्राम से ऊबकर वह बाहर निकल पड़ा, और बाहर निकलकर उसने स्वभावतः सबसे पहले सुमेरगढ़ का मार्ग पकड़ा। उसका चेतन मस्तिष्क कह रहा था कि विजयसिंह के जीवित होने का समाचार सुमेरगढ़ पहुँचाना उसका नैतिक कर्तव्य है। उसका उपचेतन मन क्या कह रहा था इसे वह स्वयं भली प्रकार नहीं समझ पा रहा था।

इस सम्बन्ध में चन्द्रशेखर के विचार वास्तव में बहुत उलझे हुए थे। परन्तु एक तथ्य इतना सुनिश्चित और सुस्पष्ट था कि वह अपने आप से भी उसे अस्वीकार नहीं कर पाता था, और वह यह था कि अब उसके हृदय में लक्ष्मी के प्रति प्रणयाकांक्षा की वह उद्दाम भावना नहीं रह गयी थी जिसने उसे कुछ काल के लिए जीवन तक से विरक्त कर दिया था। इसका कारण सम्भवतः स्वयं लक्ष्मी थी। वह भी अब वैसी नहीं रह गयी थी जैसी पहले थी। पहले की लक्ष्मी, जिसे चन्द्रशेखर ने अपना हृदय दिया था, एक लज्जाशील, अर्ध-विकसित कली थी। अपने विकास से संकुचित वह जब हँसती थी तो मानों चंद्रिका बिखर जाती थी, बोलती थी तो उसके अधरों से मधु झरता था, और बिना बोले स्निग्ध दृष्टिपात करती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी तो चन्द्रशेखर की आंखों में स्वप्न झूलने लगते थे। परन्तु अब वह कली खिलकर फूल बन चुकी थी। उसकी कमनीयता अब रूपान्तरित होकर स्वयं अदम्य कामना बन गयी थी। लज्जाप्रिय मुग्धा अब रूपगर्विता में परिणत हो गयी थी जो पुरुषत्व को अभिभूत करने के लिए उद्यत उसे बार-बार ललकारती थी।

यदि लक्ष्मी दूसरी बार उसे सामान्य परिस्थितियों में मिली होती तो चन्द्रशेखर प्रेम का ज्वार उतर जाने के पश्चात् भी इस ललकार को सम्भवतः अश्रुत नहीं रहने देता। परन्तु लक्ष्मी उसे तब मिली जब वह अपने आप को बाँध चुका था, एक मित्र को उसकी पत्नी के सम्मान की रक्षा करने का वचन दे चुका था। वचन ने सहज संकोच को बल दिया, सहज संकोच ने वचन को दृढ़ता प्रदान की और चन्द्रशेखर अविजित खड़ा रहा। परन्तु खड़ा वहीं रहा, दूर नहीं जा सका। कुसुम की मादक गंध से बँधा हुआ भ्रमर उसी पर मँडराता रहा, और यदि किन्नरी बीच में न आ गयी होती तो सम्भव था बैठ भी जाता।

किन्तु किन्नरी अपने सहज, निश्छल समर्पण द्वारा अनजाने ही उसे अपनी ओर खींचने लगी थी। चन्द्रशेखर के मन के किसी कोने में लक्ष्मी की जो कामना छिपी बैठी थी वह किन्नरी के आकर्षण का विरोध करती रही। वह बचता रहा, कतराता रहा, परन्तु लक्ष्मी के निकट नहीं जा पाया और किन्नरी की ओर खिंचता रहा, और अन्त में कालंजर जाकर वचन दे आया कि वह उसके योग्य बनेगा, अर्थात् लक्ष्मी की कामना को अपने हृदय से निकाल फेंकेगा। परन्तु यह सरल नहीं सिद्ध हुआ और चन्द्रशेखर को अपने मन की दुर्बलता से भय लगने लगा। अतएव कालंजर से लौटकर उसने पलायन का आश्रय लिया। वह महोत्सवनगर से, अर्थात् लक्ष्मी से, दूर भागा। परन्तु कुसुम की गंध पलायनशील भ्रमर को टेरती हुई उसके पीछे-पीछे चली, और उसे व्याकुल करने लगी। वह उससे संघर्ष करने लगा, और समय तथा गंगा की सहायता से विजय की आशा भी करने लगा।

परन्तु स्थिरता निकट आकर फिर उससे दूर चली गयी। इसका कारण स्थानेश्वर के निकट विजयसिंह के साथ उसकी अप्रत्याशित भेंट थी जिसने उसे झकझोर दिया था। जिस व्यक्ति को मृत समझकर चन्द्रशेखर उसे दिये गये वचन का निष्ठापूर्वक-और असुविधापूर्वक पालन कर रहा था वह यदि जीवित था तो चन्द्रशेखर भी अब वचनबद्ध नहीं था। और यदि वह व्यक्ति जातिद्रोह करके विदेशी-विधर्मी शत्रु से जा मिला था तो चन्द्रशेखर का अब उसके प्रति कोई नैतिक कर्तव्य भी नहीं रह गया था। चन्द्रशेखर की कामना फिर अंगड़ाई लेकर उठ बैठी, गंध भ्रमर को फिर कुसुम की ओर खींचने लगी। कामना को औचित्य का आधार मिल गया था। विजयसिंह को उसके जातिद्रोह का दंड मिलना ही चाहिए।

परन्तु जहाँ प्रेम नहीं होता वहाँ प्रणय की कामना भी स्थायी नहीं होती।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय ने प्रतिशोध की भावना का निदान किया, गंगा के सरल समर्पण ने कामना की धार कुंठित कर दी, और शंकर के निश्छल हठ ने उसे किन्नरी को दिये गये वचन का स्मरण कराया और अपने कर्तव्य के प्रति सचेत किया। और इसके पश्चात् भी उसके मन के किसी कोने में कामना का जो अंश शेष रह गया था, सुमेरगढ़ पहुंचकर लक्ष्मी को देखते ही मुरझा गया।

लक्ष्मी शैय्याग्रस्त थी। उसका सम्पूर्ण शरीर ढका हुआ था, केवल मुख खुला था। उस श्रीहत मुख पर लालिमा का आभास भी शेष नहीं रह गया था। केश रूखे तथा अव्यवस्थित थे, कपोलों का कुंकुम उड़ चुका था, अधरों का रस सूख गया था। नयनों में कान्ति नहीं रह गयी थी, कालिमा के वृत ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया था।

चन्द्रशेखर जड़वत् देखता रह गया, न बैठा न एक शब्द भी बोल सका।

लक्ष्मी ने करवट बदलकर मुख चन्द्रशेखर की ओर किया। उस परपीड़ा के अतिरिक्त अन्य कोई भाव नहीं था। वह क्षीण स्वर में बोली, "तुम आ गये! चलो यह भी अच्छा हुआ। आओ, इधर बैठो।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "तुम्हें यह क्या हो गया है, लक्ष्मी ?"

"थोड़ा निकट आ जाओ" लक्ष्मी ने कहा, "मुझे बोलने में कष्ट होता है। परन्तु अधिक निकट मत आना। न जाने कैसी व्याधि हो।"

चन्द्रशेखर आगे बढ़कर निस्संकोच उसके पर्यंक के किनारे जा बैठा और बोला, "परन्तु तुम्हें हुआ क्या है ?"

लक्ष्मी ने कहा, "ज्वर है, जो हर समय रहता है। सिर और शरीर में पीड़ा रहती है। बस, और कुछ नहीं है। परन्तु मैं जानती हूँ। यह अन्त की भूमिका है, यम का आलिंगन है और मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें एक बार और देखने की कामना थी, सो भी देवताओं ने पूरी कर दी है। अब मैं निश्चिन्त......"

"ज्वर कब से है ?" चन्द्रशेखर ने टोककर पूछा।

"लगभग एक मास हुआ होगा। सम्भव है अधिक हुआ हो। मैं गणना भूल गयी हूँ। तुम्हारा अनुचर आया था उसी दिन से है।"

"मेरा अनुचर ?" चन्द्रशेखर ने दुहराया।

"उसने यही कहकर अपना परिचय दिया था। नाम बताया था, परन्तु मैं वह भूल गयी हूँ।"

"शंकर ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"हाँ, यही शंकर ही था।

"शंकर यहाँ कब आया था ?"

"बताया तो, उसी दिन आया था जब से मुझे ज्वर आ रहा है।"

"क्यों आया था ? क्या कह रहा था ?"

लक्ष्मी ने अपने क्षीण स्वर को यथासम्भव स्निग्ध बनाते हुए कहा, "देखो, उस पर क्रोध न करना, वह तुम्हें बहुत स्नेह करता था। कह रहा

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था उसने तुम्हें बाहों में झुलाया है और अश्व बनकर पीठ पर बैठाया है।"

"यही कहने आया था ?" चन्द्रशेखर ने कहा।

"नहीं आया तो था मुझसे याचना करने, तुम्हारी याचना करने। मेरे पैरों पर सिर रखकर रोने लगा और कहने लगा कि मैं तुम्हारे भविष्य के लिए तुम्हें मुक्त कर दूं।"

"अच्छा !" अपना सम्पूर्ण विस्मय और सम्पूर्ण रोष इस एक शब्द में भर-कर चन्द्रशेखर ने कहा, और पूछा, "फिर ?"

"फिर क्या," लक्ष्मी ने उत्तर दिया, "मैंने भी सोचा कि जिसे मैं कभी बाँध ही नहीं पायी हूँ उसे मुक्त करने का श्रेय यदि मिलता है तो क्यों न ले लूं। अत-एव मैंने उसे आश्वासन दे दिया।"

चन्द्रशेखर कुछ क्षण मौन उस प्रभात के चन्द्रमा जैसे निष्प्रभ मुख को देखता रहा, फिर सहसा बोला, "उपचार किसका हो रहा है ?"

"कैसा उपचार ?"

"तुम्हारे ज्वर का। कौन कर रहा है ?"

"कोई नहीं," लक्ष्मी ने उत्तर दिया।

"क्यों ?"

लक्ष्मी बोली, "मेरा ज्वर असाध्य है, इसका कोई उपचार नहीं है। और यदि हो भी तो मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है। मुझे भी अपना वचन पूरा करना है, तुम्हें मुक्त करना है……और……और अपने आपको भी मुक्त करना है।"

चन्द्रशेखर ने एक हाथ उसके मुख पर रखा, दूसरा मस्तक पर। मस्तक जल रहा था। वह बोला, "ज्वर बहुत तीव्र है। तुम्हें अधिक बोलना नहीं चाहिए। अब आँखें मींच लो और विश्राम करो। मैं अभी लौटकर आ रहा हूँ।"

लक्ष्मी वास्तव में थक गयी थी। उसने आँखें मींच ली और जब कुछ समय पश्चात् चन्द्रशेखर महोत्सवनगर से अपने परिचित एक वैद्यराज्य को साथ लेकर लौटा तब भी वह उसी मुद्रा में पड़ी थी।

वैद्यराज ने नाड़ी देखी और विलम्ब तक उसे पकड़े हुए बैठे रहे। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी पेटिका में से खोज कर कोई औषधि निकाली और उसकी उचित मात्रा लक्ष्मी को खिला दी। औषधि खिलाकर पर्याप्त प्रतीक्षा करने के पश्चात् उन्होंने फिर नाड़ी की परीक्षा की, संतोषसूचक सिर हिलाया और उठकर खड़े हो गये।

जब चन्द्रशेखर वैद्यराज के यहाँ से औषधि तथा अनुपान-सामग्री लेकर लौटा तब लक्ष्मी आँखें खोले द्वार की ओर निहार रही थी। उसके मुख की रूक्षता अब कुछ कम हो गयी थी। वह चन्द्रशेखर को देखते ही बोली, "इतना कष्ट क्यों कर रहे हो ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके निकट पहुँचकर पीठिका पर बैठते हुए चन्द्रशेखर ने पूछा, "तुम मेरे स्थान पर होतीं तो न करतीं ?"

"मैं तो सम्भवतः इससे भी अधिक करती। परन्तु तुम क्यों कर रहे हो ? मैं जीवन से ऊब चुकी हूँ, अब मुक्ति चाहती हूँ। इतने बड़े संसार में जिसका कोई न रह गया हो उसे……"

"व्यर्थ की बातें न करो, लक्ष्मी" चन्द्रशेखर ने टोककर कहा, "अन्यथा फिर थक जाओगी। इस समय केवल इतना सोचो कि तुम्हें स्वस्थ होना है।"

"क्यों ?" लक्ष्मी ने बाल-सुलभ सरलता से पूछा।

चन्द्रशेखर क्षण भर मौन उसके मुख की ओर देखता रहा, फिर बोला, "तुम्हें उस अबोध असहाय बालक के लिए स्वस्थ होना है जिसे तुमने जन्म दिया है। तुम स्वस्थ नहीं होगी तो उसका क्या होगा ? यह तुम्हें अपना, उपवास आरम्भ करने से पूर्व सोच लेना चाहिए था।"

"उपवास ?" लक्ष्मी ने प्रश्न सूचक स्वर में दुहराया।

"हाँ, उपवास" चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "जो तुम बहुत दिनों से कर रही हो, जिसके कारण तुम्हारा शरीर क्षीण हो गया है और तुम्हें ज्वर रहने लगा है। अब उसे समाप्त करना होगा। औषधि और आहार, दोनों को नियम से ग्रहण करना होगा।"

"मैं नहीं करूँगी, नहीं करूँगी। मेरे ऊपर शासन चलाना चाहते हो ? मैंने कभी किसी का शासन नहीं माना है, तुम्हारा भी नहीं मानूँगी," लक्ष्मी ने कहा। परन्तु उसके स्वर में कथन के अनुरूप दृढ़ता नहीं थी। शासन करने की अभ्यस्त इस नारी को अपनी वर्तमान स्थिति में चन्द्रशेखर द्वारा शासित होना अरुचिकर नहीं लग रहा था।

"तुम्हें इस समय अधिक नहीं बोलना चाहिए," चन्द्रशेखर ने मधुर अधिकार के स्वर में कहा, और "करना वही होगा जो मैं कह रहा हूँ। अब मैं आ गया हूँ तो तुम्हारे जीवन का इस प्रकार क्षय नहीं होने दूँगा।"

लक्ष्मी मौन हो गयी, परन्तु रहना नहीं चाहती थी। अतएव कुछ समय पश्चात् उसने फिर कहा, "आज तुम आ कैसे गये ? मैंने तो आशा छोड़ दी थी। समझ लिया था कि तुम अब कभी नहीं आओगे।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "ऐसी सौगंध मैंने कभी नहीं खायी थी। आज आया हूँ कि नहीं ? कल फिर आऊँगा, जब तक तुम स्वस्थ नहीं हो जाती तब तक नित्य आता रहूँगा। यह मेरा अधिकार है, और कर्त्तव्य भी है।"

"मेरा प्रश्न आज के विषय में था। आज तुम कैसे आ गये ? क्या सूचना मिल गयी थी कि मैं अस्वस्थ हूँ ?"

किंचित संकोच के पश्चात् चन्द्रशेखर ने कहा," नहीं। वास्तव में आज मैं तुम्हें एक सुसंवाद देने आया था।"

"अपने विवाह का ? परन्तु वह मेरे लिये नया नहीं है। तुम्हारे अनुचर से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुन चुकी हूँ। मुझे वास्तव में बड़ी प्रसन्नता है। और कुतूहल थी है। कैसी है वह ?"

अन्तिम प्रश्न को अनसुना करके चन्द्रशेखर ने कहा, "इस समय मैं जो सुसंवाद लाया हूँ उसका सम्बंध मेरे विवाह से नहीं है।"

"फिर ?"

"उसक सम्बंध तुम्हारे पति से है। विजयसिंह जीवित हैं।"

इस समाचार को हृदयंगम करने में लक्ष्मी को कुछ समय लगा, परन्तु हृदयंगम कर लेने के पश्चात् भी उसके मुख पर प्रसन्नता अथवा खेद का कोई लक्षण प्रकट नहीं हुआ। उसने अत्यन्त तटस्थ भाव से कहा, "मैं जानती थी। तुम से भी कह चुकी हूँ। फिर भी विषय प्रसन्नता का है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ, और जितनी प्रसन्नता मुझे है तुम्हें उससे भी अधिक होनी चाहिए। है न ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं उनके जीवित होने से प्रसन्न हूँ। परन्तु जिस स्थिति में हैं उससे बहुत क्षुब्ध हूँ।"

"वंदी हैं ?" लक्ष्मी ने पूछा।

"नहीं, गजनी के सुल्तान महमूद की सेवा कर रहे हैं, उसकी सेना में उच्च अधिकारी है।"

"सूचना विश्वस्त है ?"

"मैं स्वयं उनसे मिलकर आ रहा हूँ।" चन्द्रशेखर ने कहा।

लक्ष्मी मौन हो गयी और कुछ समय पश्चात् उसने अपनी आँखें भी मींच लीं। इससे चन्द्रशेखर ने यह अनुमान लगाया कि वह फिर थक गयी है। अतएव वह चुपचाप कक्ष से बाहर निकल गया। लक्ष्मी की दासी द्वार पर ही खड़ी मिल गयी। चन्द्रशेखर ने पहले उससे उसकी स्वामिनी के अस्वास्थ्य का विवरण प्राप्त किया, फिर उसे विस्तारपूर्वक परिचर्या-सम्बंधी निर्देश दिये। इसके पश्चात् वह गढ़ी भर में घूम-घूम कर अन्य दास-दासियों से मिला। वे सभी अपनी स्वामिनी की दशा से बहुत चिन्तित थे। चन्द्रशेखर ने उन्हें भी आश्वस्त किया तथा आवश्यक निर्देश दिये।

यह सब करके वह फिर लक्ष्मी के कक्ष में आया। वह पूर्ववत् आँखें मींचे लेटी थी। चन्द्रशेखर कुछ काल तक उसके पर्यंक के निकट मौन खड़ा रहा, फिर उसके विश्राम में विघ्न न डालने का निश्चय करके जाने के लिए मुड़ा। तभी लक्ष्मी ने आँखें खोल दीं। वह चार पग भी नहीं चल पाया था कि पीछे से आवाहान हुआ, "सुनो !"

चन्द्रशेखर घूम कर खड़ा हो गया।

लक्ष्मी ने फिर कहा, "निकट आ जाओ, यहाँ।"

चन्द्रशेखर फिर पर्यंक के निकट जाकर खड़ा हो गया और बोला, "मैं समझा था तुम सो गयी हो। बताओ, क्या कह रही थीं ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"मैं पूछ रही थी," लक्ष्मी बोली, "कि इसमें कोई संदेह तो नहीं है?"

"किसमें?"

"उनके जीवित होने में।"

"नहीं, इसमें संदेह की तनिक भी सम्भावना नहीं है।"

"यदि नहीं है," लक्ष्मी ने कहा, "यदि यह निश्चित है कि तुम्हारे मित्र जीवित हैं, तो तुम भी अब वचन-मुक्त हो। नहीं हो?"

चन्द्रशेखर मौन खड़ा रहा।

लक्ष्मी ने फिर कहा, "बोलो, नहीं हो?"

चन्द्रशेखर ने संकुचित होकर कहा, "परन्तु मैं दूसरा वचन दे चुका हूँ········किन्नरी को।"

लक्ष्मी ने कहा, "वह मेरी बहन है, उसे दिये गये वचन की रक्षा करने में मैं स्वयं यथासम्भव तुम्हारी सहायता करूँगी। परन्तु अपने अयोग्य, जातिद्रोही मित्र को दिये गये वचन से तुम मुक्त हो गये हो इसकी मुझे अतिशय प्रसन्नता है। मुझे जीवित रखने के लिए इतना पर्याप्त है।"

यह कहकर लक्ष्मी ने फिर अपनी आँखें मींच लीं।

— ४० —

चन्द्रशेखर नियम से दिन में दो बार सुमेरगढ़ जाने लगा। प्रातः वैद्यराज को लेकर जाता था और उपचार तथा परिचर्या की व्यवस्था करके उन्हीं के साथ लौट आता था। फिर तीसरे पहर अकेला जाता था और विलम्ब तक लक्ष्मी के पास बैठकर बातों से उसका मनोरंजन करता था। दो-तीन दिन में ही लक्ष्मी भी इन बातों में सक्रिय योग देने लगी। उसके प्रिय विषय दो थे—विजयसिंह और किन्नरी। इन दोनों के सम्बन्ध में वह खोद-खोद कर प्रश्न पूछती थी, और निस्संकोच होकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती थी। परन्तु चन्द्रशेखर के साथ अपने भूत अथवा आगत सम्बंधों के विषय में वह या तो उदासीन हो गयी थी अथवा जानबूझ कर अपने भावों का दमन करना सीख रही थी। किन्नरी के प्रति वह कभी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रतिद्वंद्विता का भाव प्रगट नहीं करती थी। चन्द्रशेखर को इस अद्भुत परिवर्तन पर आश्चर्य अवश्य हो रहा था, परन्तु वह प्रसन्न था क्योंकि परिवर्तन उसके लिए सुविधाकारक था।

लक्ष्मी का ज्वर तीन दिन में उतर गया था और उसकी दशा में शीघ्रता से सुधार हो रहा था। सुधार के अनुपात में ही चन्द्रशेखर का उसके पास रहना भी बढ़ता जा रहा था। वह आग्रह करती थी और चन्द्रशेखर अधिकांशतः उसे स्वीकार कर लेता था। उसके पास और कुछ करने को नहीं था, और लक्ष्मी के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यवहार में अब इतना परिवर्तन हो गया था कि वह उसके प्रति मित्रतापूर्ण आत्मीयता का अनुभव करके लगा था।

एक दिन वह प्रातः वैद्यजी के साथ सुमेरगढ़ जाकर संध्या को वहाँ से लौटा। उस दिन लक्ष्मी को पथ्य मिलना था और वैद्यजी का निर्देश था कि पथ्य लेने के पश्चात् दोपहर में उसे सोना नहीं चाहिए। इस निर्देश का पालन कराने के लिए चन्द्रशेखर को रुक जाना पड़ा। उसने वहीं भोजन किया और दिन भर अपनी बातों और कथाओं की सहायता से लक्ष्मी को सोने नहीं दिया।

संध्या को जब वह लौटकर अपनी हवेली में पहुँचा तो गंगा आकर उसके सामने खड़ी हो गयी। वह बहुत प्रसन्न थी।

चन्द्रशेखर को भी उसे देखकर प्रसन्नता हुई। इस सरला नारी ने अल्प-काल के परिचय में ही उसके हृदय में स्थान बना लिया था। उसने कहा, "तुम कब आ गयीं गंगा ?"

"मैं तो मध्याह्न से पूर्व ही आ गयी थी, "गंगा ने उत्तर दिया, "और तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते दो बार सो भी चुकी हूँ।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं अभी चलकर तुम्हारे तीसरी बार सोने की व्यवस्था करता हूँ।"

"हो गयी है," गंगा ने तत्परतापूर्वक उत्तर दिया, "मेरे रहने की, खाने की, सोने की, सारी व्यवस्था हो चुकी है। शंकर ने कर दी है।"

"शंकर कहाँ है ?" चन्द्रशेखर को उससे बहुत कुछ पूछना था।

"मैं क्या जानूं, सम्भव है तुम्हें खोजने गया हो।"

चन्द्रशेखर ने स्वर ऊँचा करके दो-तीन बार शंकर को पुकारा।

परन्तु शंकर नहीं आया। एक अन्य अनुचर ने आकर सूचना दी कि वह हवेली में नहीं है। कहाँ गया है, यह किसी को ज्ञात नहीं था।

तब चन्द्रशेखर ने फिर गंगा को सम्बोधित करके कहा, "चलो, मैं स्वयं चलता हूँ। तुम्हें पूरी हवेली तो दिखा दूं।"

"देख चुकी हूँ," गंगा ने कहा, "आते ही शंकर ने दिखा दी थी। वह कह रहा था कि खजुराहो में भी तुम्हारी बहुत बड़ी हवेली है? क्या वह इससे भी बड़ी है ?"

"हाँ, वह इससे बहुत बड़ी है," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।

"और वह कह रहा था तुम्हारी कोई गढ़ी भी है ?"

"हाँ, रामनगर में है। मेरे पूर्वजों का स्थान है।"

"और तुम्हारे पिता कालंजर के दुर्गपाल हैं ?"

"हाँ, हैं।"

गंगा क्षण भर कुछ सोचती रही, फिर सरल उपालम्भ के स्वर में बोली, "तुमने यह सब मुझे पहले क्यों नहीं बताया ?"

चन्द्रशेखर ने हँसकर कहा, "यह अपराध मुझसे अवश्य हुआ। मैं स्वीकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करता हूँ। परन्तु उससे अन्तर क्या पड़ता है?"

"अन्तर क्यों नहीं पड़ता? यदि मुझे यह सब ज्ञात होता तो क्या मैं तुम्हारे साथ वैसा व्यवहार करती? मैं तो तुम्हें सामान्य पुरुष समझती थी।"

चन्द्रशेखर ने आनन्द लेते हुए कहा, "मैं तो लाभ में ही रहा हूँ। तुम्हें लगता है······"

"घाटे में मैं भी नहीं रही हूँ," गंगा ने शीघ्रतापूर्वक कहा, "परन्तु······"

"परन्तु क्या?"

"परन्तु जो कुछ हुआ वह उचित नहीं था। तुम क्षत्रिय हो, राजपुरुष हो। मैं निम्न जाति की सामान्य स्त्री हूँ। कहाँ तुम और कहाँ मैं। मुझे क्या तुम्हारे साथ वैसा व्यवहार करना चाहिए था? परन्तु इसमें मेरा तनिक भी दोष नहीं है। तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया था?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं अपना अपराध स्वीकार कर चुका हूँ। यदि मैंने तुमसे दुराव न किया होता तो तुम सम्भवतः मेरे साथ वैसा व्यवहार नहीं करतीं। परन्तु मेरी भी कुछ विवशता थी, और अब तो जो कुछ होना था सो हो ही चुका है। मुझे चाहो तो दंड दे दो, चाहो तो क्षमा कर दो।"

"मैं तुम्हें दंड दूँ? मैं तुम्हें क्षमा करूँ? क्यों मुझे पाप में घसीट रहे हो? हाँ, यह मानती हूँ कि जो कुछ होना था सो हो चुका है। उसे अब बदला नहीं जा सकता। परन्तु आगे के लिए तो सतर्क रहा ही जा सकता है, अपने को सुधारा तो जा ही सकता है।"

"मुझे भी अपने को सुधारना होगा?" चन्द्रशेखर ने चुटकी ली।

गंगा बोली, "तुम मुझे चिढ़ा रहे हो, अतएव मैं अब इस विषय में कुछ नहीं कहूँगी। तुम्हें भी नहीं कहने दूँगी। हाँ, यह बताओ कि यहाँ मुझे करना क्या होगा?"

"मेरी सेवा और हवेली पर शासन," चन्द्रशेखर ने विनोद के स्वर में कहा।

"मैं गम्भीरता से पूछ रही हूँ," गंगा ने कहा।

"मैं गम्भीरता से बता रहा हूँ। तुम्हें हवेली की व्यवस्था सँभालनी होगी और मेरी सुविधाओं का ध्यान रखना होगा। मैं अनुभव करने लगा हूँ कि यह कार्य भली प्रकार कोई स्त्री ही कर सकती है।"

गंगा ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा, "यदि तुम वास्तव में ऐसा अनुभव करने लगे हो तो अपना विवाह क्यों नहीं करते हो?"

चन्द्रशेखर ने मन ही मन में निश्चय किया कि शंकर को पर्याप्त दंड देना होगा, और गंगा से कहा, "आवश्यकता क्या है? तुम आ ही गयी हो।"

"मेरे भरोसे मत रहना," गंगा ने गम्भीरतापूर्वक कहा। "मैं इतनी मूर्ख नहीं हूँ कि अपना स्थान न पहचानूँ, और न इतनी कृतघ्न हूँ कि अपने हितू का अहित-चिन्तन करूँ। मैंने जो जीवन भर में नहीं पाया था वह तुमसे पा लिया है। अब केवल एक साध यह रह गयी है कि शेष जीवन तुम्हारी सेवा में व्यतीत हो, और

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुमसे केवल एक याचना यह करनी है कि मेरे लिए घर की स्वामिनी ला दो।"

"कहाँ मिलेगी ?" चन्द्रशेखर ने विनोद किया।

"यह मैं अभी नहीं बता सकती हूँ," गंगा ने पूर्ववत् गम्भीरता के साथ उत्तर दिया, "परन्तु इतना जरूर जानती हूँ कि कहीं मिलेगी अवश्य और वही इस हवेली में आएगी। इस सम्बंध में एक प्रश्न मैं भी तुमसे पूछना चाहती हूँ। पूछूं ?"

"पूछो।"

गंगा ने कहा, "यह रानी जी कौन हैं ?"

चन्द्रशेखर का माथा ठनका। उसने कहा, "क्या यह शंकर ने नहीं बताया ?"

गंगा ने अत्यन्त सरल भाव से कहा, "बताया तो कुछ अवश्य था, परन्तु मैं भली प्रकार समझ नहीं पायी, और भूल भी गयी हूँ।"

"तो लो, मैं फिर बताये देता हूँ। इस बार मत भूलना। उनका नाम रानी विजयलक्ष्मी है। वे सुमेरगढ़ की रानी हैं। सुमेरगढ़ यहाँ से बहुत निकट है। आजकल मैं नित्य वहाँ जाता हूँ। और कुछ ?"

"हाँ," गंगा ने कहा, "एक बात और बता दो। तुम उनसे प्रेम करते हो ?"

"पहले करता था, बहुत प्रेम करता था।"

"और अब ?"

"अब उतना नहीं करता हूँ।"

चन्द्रशेखर झुँझलाकर उत्तर दे रहा था, परन्तु गंगा पर उस झुँझलाहट का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ रहा था। वह फिर बोली, "तुम उनके साथ विवाह करना चाहते हो ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "रानीजी मेरे मित्र की पत्नी और उनके पुत्र की माता हैं। मेरे मित्र अभी जीवित हैं।"

"तो फिर तुम वहाँ नित्य क्यों जाते हो ?" गंगा ने प्रश्न किया।

"मैं रानीजी का अभिभावक हूँ। मेरे मित्र—उनके पति—इस समय तुरुष्कों के देश में हैं। मैंने उन्हें वचन दिया था, इस कारण कभी-कभी देखने चला जाता था। आजकल रानीजी अस्वस्थ हैं, इस कारण नित्य जाता हूँ। और कुछ ?" चन्द्रशेखर की झुँझलाहट बढ़ती जा रही थी।

"परन्तु शंकर तो कह रहा था तुम उसके साथ विवाह करना चाहते हो ?" गंगा ने अत्यन्त सरल भाव से कहा।

चन्द्रशेखर फूट पड़ा। बोला, "शंकर मूर्ख है, और तुम·········तुम उससे भी बड़ी मूर्ख हो !"

गंगा अपनी यह प्रशस्ति सुनकर मुस्करा दी और बोली, "तो इतने रुष्ट क्यों हो रहे हो ? शंकर अवश्य मूर्ख है, अन्यथा ऐसी बातें क्यों करता। और हम स्त्रियाँ जन्म से ही मूर्ख होती हैं। परन्तु बुद्धिमान जनों को क्या मूर्खों की बातों पर इस प्रकार क्रोध करना चाहिए !"

अपनी हँसी को अधरों में दबा रखने के उद्देश्य से चन्द्रशेखर ने मौन धारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर लिया। परन्तु गंगा भी सहज में छोड़ने वाली नहीं थी। वह पीछे पड़ गयी और अन्त में चन्द्रशेखर को हँसकर स्वीकार करना पड़ा कि बुद्धिमान जनों को मूर्खों की बातों पर रोष नहीं करना चाहिए।

"बस इतना और बतादो कि ये रानीजी कैसी हैं?" गंगा ने फिर पूछा।

चन्द्रशेखर ने कहा, "रानियाँ सभी सुन्दर और अच्छी होती हैं।"

"स्वभाव कैसा है?"

"तुमने उस दिन आँधी देखी थी, स्मरण है न? बस, समझ लो वैसा ही है। उससे थोड़ा बढ़कर ही होगा।"

"तुम ऐसे नहीं बताओगे," गंगा ने कहा "कल मैं स्वयं तुम्हारे साथ चल कर देख आऊँगी। हम स्त्रियाँ इस विषय में बड़ी चतुर होती हैं, केवल एक बार देखकर सब कुछ सरलता से और भली प्रकार समझ लेती हैं।"

"मैं तुम्हें अपने साथ सुमेरगढ़ नहीं ले जाऊँगा।"

"तो मैं शंकर के साथ चली जाऊँगी।"

"शंकर को मैं आते ही कहीं जाने योग्य नहीं रखूँगा।"

"तो मैं पूछती-पूछती अकेली चली जाऊँगी," गंगा ने कहा।

"मैं तुम्हें भी हवेली से बाहर नहीं जाने दूँगा।"

"और मैं सुमेरगढ़ जाऊँगी, और तुम्हारी अनुमति से जाऊँगी। परन्तु यह कल की बात है, कल देखी जाएगी। आज मुझे तुमसे केवल एक प्रश्न और पूछना है। पूछूँ?"

"उसे भी पूछ लो। जब इतने पूछे हैं तो एक ही क्यों रह जाए।"

गंगा ने कहा, "यह देवी किन्नरी कौन हैं? बस, इतना और बता दो।"

"नाम से ही स्पष्ट है," चन्द्रशेखर ने कहा, "देवी भी है और किन्नरी भी।"

"कैसी हैं?"

"जैसी अन्य कोई स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी है।"

"स्वभाव कैसा है?"

"जैसा चन्द्रिका का होता है," चन्द्रशेखर ने कहा। "जानती हो चन्द्रिका का स्वभाव कैसा होता है? वह अत्यन्त शीतल होती है, परन्तु जिस घर पर पड़ती है उसे स्निग्ध बना देती है, आकाश में रहकर भी सागर की लहरों को अपनी ओर खींचती रहती है।"

"माताजी उनके साथ तुम्हारा विवाह करना चाहती हैं?"

"हाँ," चन्द्रशेखर ने स्वीकार किया।

"तो फिर तुम करते क्यों नहीं हो?"

"अभी समय नहीं आया है।"

गंगा बोली, "सुनो, कुँवर जी, मैं ऐसे मानने वाली नहीं हूँ। अभी मैंने केवल सुना है, देखा नहीं है। इस कारण कुछ नहीं कह रही हूँ। एक बार दोनों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखकर अपना मन भर लूं, फिर देखूंगी समय कैसे नहीं आता है। उसे आना होगा, और शीघ्र आना होगा।"

अत्यन्त सहज शैली में अभिव्यक्त गंगा का यह अधिकार-प्रदर्शन चन्द्रशेखर को अप्रिय नहीं लग रहा था, अतएव वह बात को बढ़ाना चाहता था। परन्तु तभी उसे ध्यान आ गया कि उसने दोपहर का भोजन सुमेरगढ़ में किया था। वह बोला, "तुमने दोपहर में भोजन तो किया नहीं होगा ?"

"तुमने किया था ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "तो चलो, पहले भोजन करलें फिर और बातें करेंगे। चलो।"

— ४१ —

गंगा चन्द्रशेखर के साथ सुमेरगढ़ जाकर ही मानी। वह एक दिन नहीं ले गया, दूसरे दिन भी नहीं ले गया, परन्तु गंगा भी ऐसी पीछे पड़ गयी कि तीसरे दिन उसे विवश होकर झुकना पड़ा।

चन्द्रशेखर ने लक्ष्मी को उसका परिचय दिया। लक्ष्मी ने उससे औपचारिकता के कुछ प्रश्न पूछे और बैठने को कहा। गंगा ने संस्कारवश धरती पर दृष्टि गड़ाये हुए संकुचित स्वर में प्रश्नों के उत्तर तो दे दिये परन्तु निर्दिष्ट आसन नहीं ग्रहण किया। औपचारिकता पूरी करके लक्ष्मी चन्द्रशेखर के साथ बातें करने लगी। तब गंगा ने अपनी दृष्टि ऊपर उठायी। वह कुछ समय तक खड़ी-खड़ी ध्यानपूर्वक लक्ष्मी को देखती रही, फिर बिना कुछ कहे इस प्रकार निशब्द कक्ष से बाहर चली गयी कि चन्द्रशेखर को भी उस समय उसके जाने का पता नहीं लगा।

प्रातःकाल का समय था। लक्ष्मी की दशा में अब इतना सुधार हो गया था कि वैद्यराज नित्य उसे देखने नहीं आते थे। चन्द्रशेखर आता तो नित्य था परन्तु, सम्भवतः गंगा के कारण, केवल थोड़े समय के लिए आता था।

अतएव कुछ समय पश्चात् जब वह चलने के लिए उठा तो उसने गंगा को अनुपस्थित पाया। उसने सोचा किसी कारण बाहर गयी होगी और अभी लौट-कर आती होगी। अतएव वह फिर बैठकर बातें करने लगा। परन्तु जब गंगा बिलम्ब तक लौटकर नहीं आयी तो उसे चिन्ता होने लगी, जिसका निवारण होने में अधिक समय नहीं लगा। कक्ष से बाहर निकलते ही गंगा उसे मिल गयी वह लक्ष्मी की दासी के साथ बैठी घुल-मिलकर बा ें कर रही थी।

रथ में सुमेरगढ़ से लौटते हुए चन्द्रशेखर ने पूछा, "देख लिया रानी जी को कल फिर दर्शन करने आओगी ?"

परन्तु गंगा पर न उसके क्रोध का प्रभाव होता था न व्यंग्य का। उसने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत्यन्त सहज भाव से उत्तर दिया, "नहीं, अब नहीं आऊँगी । एक बार देखना चाहती थी सो देख लिया ।"

"और समझ भी लिया ?"

वह बोली, "हाँ, समझ भी लिया है । शंकर वास्तव में मूर्ख है ।"

"शंकर तो मूर्ख है ही । इसी कारण तीन दिन से अंतर्धान है, दंड के भय से मेरे सामने नहीं पड़ रहा है । परन्तु तुम क्या शंकर की मूर्खता समझने के लिए यहाँ आयी थीं ?"

"ऐसा ही समझो । शंकर कहता था कि तुम रानी जी के साथ विवाह करना चाहते हो । परन्तु मैंने देख लिया है कि उसकी वह धारणा मिथ्या है । यही देखने के लिए मैं हठ करके आयी थी ।"

"परन्तु तुमने देखा क्या ? और कब देखा ?"

"यही देखा," गंगा ने उत्तर दिया, "कि शंकर की धारणा मिथ्या है । तुम उनके साथ विवाह नहीं करना चाहते हो, और रानी जी भी बहुत उत्सुक नहीं हैं । परन्तु उनके सम्बन्ध में तुम्हारी धारणा सत्य हो सकती है । वे उस आँधी के समान प्रतीत होती हैं जो सोयी रहती है तब एक पत्ती को भी नहीं छूती, परन्तु जगती है तो सम्पूर्ण वन को झकझोर कर रख देती है । इस कारण मैं उनका विश्वास नहीं करूँगी, और तुम्हें भी नहीं करने दूंगी ।"

"प्रकृति सर्वत्र चंचल होती है, गंगा," चन्द्रशेखर ने कहा, "स्त्री की भी और पुरुष की भी । अतएव दूसरों पर अविश्वास करने से पहले अपने आपको देख लेना चाहिए । मुझे स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं है ।"

"परन्तु मुझे है," गंगा ने कहा, "जितना अपने ऊपर है, उससे अधिक तुम्हारे ऊपर है। फिर भी, यदि अनिश्चय की स्थति समाप्त हो जाए तो अधिक अच्छा रहेगा । तुम्हें अब विवाह कर लेना चाहिए ।"

"यह मैं भी स्वीकार करता हूँ । दो-तीन दिन में कालंजर जाऊँगा ।" चन्द्रशेखर सहसा अधिक गम्भीर हो गया था ।

"मुझे नहीं ले चलोगे ? मैं भी उन्हें देखना चाहती हूँ ।"

"अनावश्यक है," चन्द्रशेखर ने कहा, "किन्नरी को तुम अस्वीकार नहीं कर सकोगी । कोई नहीं कर सकता है । वह न जाने कैसे सबको अपनी ओर खींच लेती है । कभी आदेश नहीं देती है फिर भी सब पर शासन करती है।"

"अर्थात् स्नेह से शासन करती हैं ?"

"हाँ ।"

"तो फिर तुम तुरंत कालंजर चले जाओ । मुझे ऐसी ही स्वामिनी चाहिए । कल ही क्यों नहीं चले जाते हो ? यदि मुझे नहीं ले चलना चाहते हो तो मैं हठ नहीं करूँगी । तुम अकेले चले जाओ । मेरा क्या, मैं आज नहीं तो कल देख लूंगी । तुम्हारी बातों से उत्सुकता बहुत बढ़ गयी है । फिर भी मैं प्रतीक्षा कर लूंगी । परन्तु तुम विलम्ब मत करो ।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रशेखर मौन बैठा रहा, कुछ नहीं बोला।

गंगा ने फिर कहा, "बोलते क्यों नहीं हो ? कल जाओगे न ?"

"विचार करूँगा," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।

परन्तु उसे अधिक विचार नहीं करना पड़ा। गंगा को भी अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। उसी दिन संध्या से कुछ पूर्व किन्नरी स्वयं बिना पूर्व सूचना के महोत्सवगनर आ गयी। चन्द्रशेखर उस समय हवेली में नहीं था, अतएव गंगा ने उसका स्वागत किया।

किन्नरी ने उसे देखते ही कहा, "तुम गंगा हो न ? जैसी मैंने कल्पना की थी पूर्णतया वैसी ही हो। मैं तुम्हें जानती हूँ, तुम्हारी सम्पूर्ण कथा जानती हूँ। इस कारण पहचानने में तनिक भी कठिनाई नहीं हुई।"

गंगा को अवाक् विस्मय से अपनी ओर निहारते हुए देखकर उसने फिर कहा "मुझे शंकर ने सब बता दिया है, बहन ! तुम्हारा दुःख तो दूर नहीं कर सकूँगी, क्योंकि वह विधाता का लेख है, परन्तु यथासम्भव तुम्हें कष्ट नहीं होने दूँगी। तुम्हें सदा अपने साथ रखूँगी, यह निश्चय करके आयी हूँ।"

गंगा अभिभूत हो गयी। लक्ष्मी के सम्मुख वह अपनी हीन भावना से दब गयी थी और एक शब्द भी नहीं बोल पायी थी। परन्तु किन्नरी उसे मिलते ही अपनी लगने लगी। उसने भी अपना हृदय खोल दिया, और घड़ी भर में ही ऐसा लगने लगा मानों जीवन भर का साथ और स्नेह हो।

किन्नरी ने आते ही हवेली की सारी व्यवस्था अपने हाथों में ले ली। इसके परिणामस्वरूप देखते-देखते वहाँ का सम्पूर्ण वातावरण बदल गया। निर्जनता जनवती हो गयी, मौन मुखरित हो उठा, जहाँ कुछ नहीं हो रहा था वहाँ न जाने क्या-क्या करने को निकल आया।

जब चन्द्रशेखर अंधकार हो जाने के पश्चात् लौटकर आया उस समय किन्नरी पाकशाला में बैठी भोजन बना रही थी। चन्द्रशेखर को उसके आगमन की सूचना सबसे पहले गंगा ने दी। वह बहुत प्रसन्न थी, किसी सीमा तक उत्तेजित थी। कहने लगी, "शंकर उतना मूर्ख नहीं है जितना तुम समझते हो। रानीजी के सम्बंध में उसकी धारणा मिथ्या और निराधार अवश्य थी, परन्तु देवी के विषय में उसने जो कुछ कहा वह अक्षरशः सत्य है। उन्होंने मुझे जीत लिया है।"

समाचार पाते ही किन्नरी भी आ गयी। चन्द्रशेखर ने देखा, उसमें बहुत थोड़ा परिवर्तन हुआ था। वह उतनी ही सुन्दर थी, और वैसी ही सुशील थी, जैसी वह छोड़कर गया था। केवल गरिमा में थोड़ी वृद्धि हो गयी थी।-परन्तु यह गरिमा इतनी सहज थी कि लावण्य का ही एक अंग प्रतीत होती थी। उसे देखकर चन्द्रशेखर को प्रसन्नता हुई, उसके मन पर जो एक भार था वह उतर गया।

प्रसन्नता किन्नरी को भी बहुत थी। परन्तु उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति केवल उसकी दो बड़ी-बड़ी आँखें कर रही थीं। अधरों पर स्वागत की हलकी-सी मुस्कान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी, स्वर में संयत उल्लास की हलकी-सी झंकार थी, परन्तु आँखें हँस रही थीं। वह चन्द्रशेखर को देखते ही बोली, "रानीजी का स्वास्थ्य अब कैसा है ? मैं जानती थी कोई विवशता अवश्य होगी, इसी कारण कालंजर नहीं आ पा रहे हैं।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "हाँ, किन्नरी, इसी कारण नहीं आ पा रहा था। विचार कई बार कर चुका था, और आज ही यह निश्चय किया था कि अब दो-तीन दिन के भीतर अवश्य आऊँगा।"

"मैं तो जानती थी" किन्नरी ने कहा, "परन्तु माताजी आप से बहुत रुष्ट हैं। कहती थीं कि आपको यात्रा से लौटते ही आना चाहिए था। फिर कहने लगीं कि अब हम सब लोग स्वयं महोत्सवनगर चलेंगे। मुझे पहले भेज दिया है, स्वयं पिताजी के साथ तीन-चार दिन में आएँगी।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "तुम आ गयी हो इसकी मुझे बड़ी प्रसन्नता है। माताजी के चरण स्पर्श करने के लिए मैं उनके प्रस्थान से पूर्व कालंजर पहुँच जाऊँगा। कल प्रातःकाल ही चला जाऊँगा। और कुछ तो नहीं कह रही थीं ?"

"कह तो नहीं रही थीं, परन्तु रुष्ट बहुत हैं। शंकर ने उनसे न जाने क्या-क्या कहा है।"

"शंकर ने ? शंकर क्या कालंजर में है ?"

"हाँ, वह पहुँचा तभी से तो माताजी अधिक रुष्ट हैं। परन्तु आप पहुँच जाएँगे तो प्रसन्न हो जाएँगी। यह निर्णय आपने बहुत अच्छा किया है। कल प्रातःकाल अवश्य चले जाइए। आपको देखेंगी और कारण सुनेंगी तो तुरन्त प्रसन्न हो जाएँगी।"

"मैं अवश्य चला जाऊँगा," चन्द्रशेखर ने कहा। "तुम निश्चिन्त रहो, माताजी को मैं प्रसन्न कर लूँगा। और उस दुष्ट शंकर को········वह तुम्हारे साथ क्यों नहीं आया ?"

"माताजी के साथ आएगा," किन्नरी ने उत्तर दिया।

"जानता हूँ वह माताजी के साथ क्यों आएगा। परन्तु मैं भी देखूँगा, मुझे उससे उऋण होना है।"

चन्द्रशेखर का क्रोध बढ़ता देखकर किन्नरी ने तुरन्त वार्तालाप की दिशा बदल दी। बोली, "भोजन करने कब चलेंगे ? आज मैंने बनाया है।"

"तुमने !"

"हाँ, मैं संध्या से पूर्व ही आ गयी थी।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "यदि तुमने बनाया है तो मैं तनिक भी विलम्ब सहन नहीं कर सकूँगा। चलो।"

भोजन के पश्चात् किन्नरी गंगा के साथ फिर चन्द्रशेखर के कक्ष में आयी और विलम्ब तक वहाँ बैठी बातें करती रही, कालंजर के समाचार सुनाती रही और चन्द्रशेखर की यात्रा का विवरण सुनती रही। इसके पश्चात् वह अपने कक्ष में शयन करने चली गयी। गंगा को उसने रात्रि में भी अपने साथ रखा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु प्रातःकाल जब चन्द्रशेखर स्नान करके अपने कक्ष में लौटा तब वह अकेली कलेवा लिए वहाँ बैठी थी। चन्द्रशेखर को देखते ही उसने पूछा, "जा रहे हैं ?"

चन्द्रशेखर आकर उसके निकट बैठ गया और बोला, "बस, जा रहा हूँ।"

कलेवा उसके सामने रखकर किन्नरी ने अत्यधिक संकुचित स्वर में कहा, "आपसे एक याचना करना चाहती हूँ। देंगे ?"

चन्द्रशेखर ने दृष्टि ऊपर उठायी। किन्नरी बहुत गम्भीर थी। परन्तु उसकी गम्भीरता में कठोरता का लेश भी नहीं था, वह तरल और स्पंदनशील थी। वह बोला, "तुम्हें क्या हो गया है, किन्नरी ? स्वस्थ तो हो ?"

किन्नरी ने पूर्ववत् कहा, "मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। आपसे एक याचना करने आयी हूं।"

"तो कहो, शीघ्र कहो तुम्हारी इच्छा पूरी करके मुझे कितनी प्रसन्नता होगी इसका तुम अनुमान भी नहीं लगा सकती हो। परन्तु अब विलम्ब न करो! शीघ्र बताओ तुम्हारी क्या इच्छा है। फिर मुझे भी तुमसे एक याचना करनी है।"

किन्नरी कुछ क्षण मौन खड़ी रही, मानों निश्चय न कर पा रही हो कि अपनी बात कहे अथवा न कहे, और यदि कहे तो किस प्रकार कहे। फिर उसने धीमे स्वर में कहना आरम्भ किया, "मैंने कल कहा था न कि माताजी ने मुझे पहले भेज दिया है......"

"हाँ-हाँ," चन्द्रशेखर ने प्रोत्साहन के स्वर में कहा, "फिर?"

"वह सत्य नहीं था। माता जी मुझे अपने साथ लाना चाहती थीं। मैं ही हठ करके पहले चली आयी हूँ।"

"यह मेरा सौभाग्य है। मैं इससे बहुत प्रसन्न हूँ।"

"मेरी बात सुनकर भी प्रसन्न रहेंगे ?"

"विश्वास तो ऐसा ही है। परन्तु तुम्हारी बात क्या अभी पूरी नहीं हुई है ?"

"किन्नरी बोली, "अभी कहाँ। अभी मैंने अपनी वह याचना तो की ही नहीं है जिसके लिए हठ करके माताजी से पहले आयी हूँ।"

"तो विलम्ब क्यों कर रही हो ? और बार-बार याचना की बात मत करो। यह कहो कि तुम्हारी इच्छा क्या है, मैं उसे पूरी करूँगा।"

किन्नरी फिर मौन हो गयी और कई क्षण तक मौन रही। इसके पश्चात् एक संकुचित दृष्टि चन्द्रशेखर की ओर डालकर संकुचित स्वर में उसने कहना आरम्भ किया, "बात यह है......मैं कहना यह चाहती हूँ......समझ ही नहीं पा रही हूँ कि कैसे कहूँ......बात यह है......कि माता जी बहुत रुष्ट हैं।"

"उन्हें मैं प्रसन्न कर लूँगा," चन्द्रशेखर ने आश्वासन दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"परन्तु वे ऐसे प्रसन्न नहीं होंगी।"

"फिर कैसे होंगी ?"

किन्नरी ने कहा, "वे आपसे तुरन्त विवाह करने को कहेंगी, मेरे साथ विवाह करने को। मैं आपकी स्थिति को जानती हूँ, और समझ सकती हूँ। परन्तु माता जी नहीं जानती हैं, और सम्भवतः समझ भी नहीं सकती हैं। इस कारण वे आग्रह करेंगी, हठ करेंगी, और यदि आपने उनकी बात न मानी तो उन्हें बहुत दुःख होगा ?"

"परन्तु मैं उनकी बात क्यों नहीं मानूंगा ?"

"बस यही मेरी याचना है," किन्नरी ने कातर स्वर में कहा। "आप उनका आग्रह अस्वीकार न करें, अन्यथा उन्हें बहुत अधिक दुःख होगा। उनका प्रस्ताव स्वीकार करके आप सुखी न होंगे, यह मैं जानती हूँ। परन्तु आपके दुःख का उपचार मैं कर सकती हूँ और कर लूंगी। उनके दुःख का केवल आप कर सकते हैं।"

किन्नरी की उद्विग्नता देखकर पहले चन्द्रशेखर भी चिन्तित हो गया था, परन्तु अब उसका कारण जानकर उसके लिए अपनी हँसी रोकना कठिन हो गया। उसने हँसते हुए कहा, "तुम्हारी याचना स्वीकार हुई। मैं माता जी को दुखी नहीं होने दूंगा, वे जो भी प्रस्ताव करेंगी उसे तुरन्त स्वीकार कर लूंगा। परन्तु तुमने अभी जो कुछ कहा है उसका अर्थ जानती हो क्या हुआ ?"

किन्नरी ने कृतज्ञ दृष्टि ऊपर उठाकर कहा, "उसका अर्थ ?"

"हाँ, उसका अर्थ यह हुआ कि तुम मुझे अपने योग्य नहीं समझती हो परन्तु माता जी को प्रसन्न करने के लिए अस्वीकार नहीं कर रही हो।"

"नहीं, नहीं," किन्नरी ने शीघ्रतापूर्वक सिर हिलाते हुए कहा, "यह सत्य नहीं है। मेरा यह तात्पर्य नहीं था।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं तो केवल तुमने जो कुछ कहा उसका अर्थ बता रहा था। वह सत्य है कि असत्य, यह तुम जानों। जहाँ तक मेरा सम्बंध है, तुम जो भी कहोगी मैं उसे तुरन्त स्वीकार कर लूंगा। तुम्हारी याचना स्वीकार कर ही चुका हूँ, अब व्याख्या भी किये ले रहा हूँ। और इसके पश्चात् यदि कहो तो अपनी याचना भी करलूँ, यह भी देख लूँ कि तुम उसे स्वीकार करती हो कि नहीं ?"

"आप मुझसे याचना करेंगे ? क्यों मुझे लज्जित कर रहे हैं ?"

"यदि तुम्हें याचना से आपत्ति है," चन्द्रशेखर ने कहा, "तो मैं नहीं करूँगा। परन्तु निवेदन अवश्य करूँगा। और निवेदन यह है कि अब मैं तुम्हारे लिए, केवल तुम्हारे लिए, तुम्हारी कामना करना सीख गया हूँ। कालंजर से चलते समय मैंने तुमसे थोड़ा समय माँगा था और प्रतिज्ञा की थी कि तुम्हारे योग्य बन-कर ही तुमसे प्रणय की याचना करूँगा। मुझे विश्वास है कि अब मैं इस योग्य बन गया हूँ। यह सत्य है कि कभी मैं लक्ष्मी से बहुत प्रेम करता था। परन्तु अब

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं करता हूँ, अब मेरे मन में उसकी कामना भी शेष नहीं रह गयी है।''

"यह असम्भव है," किन्नरी ने कहा। "प्रेम कोई वस्त्र अथवा अलंकार तो नहीं होता कि उसे इच्छानुसार उतार कर फेंक दिया जाए।"

"फिर क्या होता है ?"

"एक बंधन, जिसमें एक बार बँधकर व्यक्ति फिर कभी मुक्त नहीं हो सकता। यह बंधन कभी-कभी परिस्थितिवश ढीला अवश्य हो जाता है, और तब व्यक्ति अपने आपको मुक्त समझने लगता है। परन्तु यह मुक्ति मरीचिका मात्र होती है।"

"परन्तु मेरी मुक्ति मरीचिका नहीं, यथार्थ है," चन्द्रशेखर ने कहा। "मैं यह नहीं कहता कि तुम्हारी धारणा मिथ्या है। वह सत्य प्रतीत होती है, सत्य ही होगी भी। सम्भव है जिसे मैं प्रेम समझता था वह प्रेम न रहा हो। सम्भवतः मेरी ही धारणा मिथ्या थी, मैं प्रथम यौवन की उद्दाम वासना को प्रेम समझकर पागल हो गया था। परन्तु अब मैं पागल नहीं हूँ। समय के ताप ने मेरी वासना को जला कर क्षार कर दिया है, और जीवन ने मुझे यथार्थ प्रेम की अनुभूति प्रदान की है। लक्ष्मी के प्रति मेरे मन में जो भावना थी उसमें ताप ही ताप था। वह एक प्रकार का विक्षेप था। परन्तु अब तुम्हारे प्रति मेरे मन में जो भावना है उसमें विक्षेप का लेश भी नहीं है। इसमें ताप कम है, प्रकाश अधिक है। मैं तुम्हारी कामना करता हुआ भी तुमसे दूर रह लेता हूँ, और दूर रहकर भी तुम्हें सदा अपने निकट अनुभव करता हूँ। इस कारण कह रहा हूँ, किन्नरी, कि अब मैं तुम्हारे योग्य हो गया हूँ।"

चन्द्रशेखर मौन हो गया, परन्तु किन्नरी कुछ नहीं बोली। उसकी आँखों में आँसू छलक आये थे और वह अपलक चन्द्रशेखर का मुख निहार रही थी।

क्षण-भर रुककर चन्द्रशेखर ने ही फिर कहा, "माताजी मुझसे जो करने को कहेंगी वही मेरा भी प्रेय है। अतएव उसे स्वीकार करने में ही मेरा सुख है। परन्तु मैं अपनी स्वीकृति देने से पूर्व तुम्हारी स्वीकृति का आकांक्षी हूँ।"

किन्नरी ने धीमे, प्रकम्पित स्वर में कहा, "आप मेरा मान रखने के लिए ऐसा कह रहे हैं।"

"नहीं किन्नरी," चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं वही कह रहा हूँ जो मेरे मन में है। मैं तुम्हारी कामना करता हूँ, हृदय से तुम्हारा आकांक्षी हूँ। परन्तु तुम्हें स्वीकार तभी करूँगा जब स्वयं स्वीकृति पा लूँगा।"

दो बूँद आँसू नयनों से छलक कर किन्नरी के कपोलों पर आ गये। वह बोली, "यह आपकी महानता है, जिसके योग्य मैं सम्भवतः कभी नहीं बन पाऊँगी। मुझे क्षण भर को प्रमाद हो गया था, आप आज तक उसका मान रखना नहीं भूले हैं। मैं……" इससे आगे वह नहीं बोल सकी, उसका कंठ भर आया था।

इसी समय गंगा ने कक्ष में प्रवेश किया। वह चन्द्रशेखर के लिए दूध लेकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आयी थी। उसे देखते ही किन्नरी ने आँचल के छोर से आँसू पोंछ डाले और चन्द्रशेखर की ओर देखते हुए कहा, "अरे! आप कलेवा तो कर ही नहीं रहे हैं!" उसका स्वर कम्पित था, उसमें कथन के उपयुक्त दृढ़ता नहीं थी।

गंगा दूध का पात्र चन्द्रशेखर के सम्मुख रखकर किन्नरी के निकट बैठ गयी और प्रश्नसूचक दृष्टि से कभी उसकी ओर और कभी चन्द्रशेखर की ओर देखने लगी। चन्द्रशेखर कलेवा करने में व्यस्त हो गया था। किन्नरी ने अपना मुख गंगा के निकट ले जाकर धीमे स्वर में क्षमा-याचना सी करते हुए कहा, "बाबा की सुधि आ गयी थी।"

— ४२ —

चन्द्रशेखर का विवाह किन्नरी के साथ हो गया। विधि रामनगर में सम्पन्न की गयी, और उत्सव पहले कालंजर में और फिर महोत्सव नगर में मनाया गया। इस प्रकार चन्द्रशेखर के लिए उसका विवाह एक मास तक होता रहा, और यदि उसकी माता का वश चलता तो इसके पश्चात् भी कई मास तक होता रहता।

उत्सव समाप्त होते-होते चन्द्रशेखर को अपनी नियुक्ति का आदेश भी प्राप्त हो गया। उसे फिर अजयगढ़ भेजा जा रहा था। युवराज विद्याधर चन्देल सेना का पुनर्नियोजन कर रहे थे। उनकी धारणा थी कि शीघ्र ही, सम्भवतः आगामी शरद में, चन्देलों को महमूद से लोहा लेना होगा। सेना का पुनर्नियोजन इसी दृष्टिकोण से किया जा रहा था। युवराज यथासम्भव प्रत्येक दुर्ग में और प्रत्येक महत्वपूर्ण स्थान पर अपने विश्वस्त अधिकारी नियुक्त कर रहे थे। इस संदर्भ में अजयगढ़ का विशेष महत्व था। त्रिपुरी के कलचुरि महामात्य प्रभास की मृत्यु के पश्चात् अब फिर सिर उठाने लगे थे और चन्देलों के साथ अपनी वंशानुगत प्रतिद्वंद्विता के वशीभूत किसी समय कुछ भी कर सकते थे। अतएव उन पर दृष्टि रखने और आवश्यकतानुसार उनका दमन अथवा अवरोध करने के लिए सीमावर्ती दुर्ग अजयगढ़ को सुदृढ़ रखना नितान्त आवश्यक था। चन्द्रशेखर वहाँ रह चुका था और वहाँ की स्थिति तथा समस्याओं से भली प्रकार परिचित था। इसी कारण उसे वहाँ भेजने का निर्णय किया गया था।

सम्भव है इस निर्णय की पृष्ठभूमि में चन्द्रशेखर के पिता, कालंजर के दुर्गपाल सोमेश्वरदेव का प्रभाव भी रहा हो। अजयगढ़ कालंजर से निकट था, और माता रत्नमाला यथा सम्भव किन्नरी को दूर नहीं जाने देना चाहती थीं। जो भी हो, उन्हें और चन्द्रशेखर को इस नियुक्ति से विशेष प्रसन्नता हुई।

अजयगढ़ के लिए प्रस्थान करने से पूर्व चन्द्रशेखर किन्नरी को साथ लेकर सुमेरगढ़ गया। वास्तव में यह कहना अधिक सत्य होगा कि किन्नरी चन्द्रशेखर को साथ लेकर वहाँ गयी, क्योंकि आग्रह उसका ही था। लक्ष्मी अब पूर्ण स्वस्थ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो चुकी थी। वह विवाहोत्सव में भी सम्मिलित हुई थी, एक बहुमूल्य कंठहार किन्नरी को अपने हाथों से पहना आयी थी, और विलम्ब तक उसके साथ बैठकर बातें कर आयी थी। अतएव किन्नरी महोत्सवनगर छोड़ने से पूर्व अपनी ओर से भी सामाजिकता का निर्वाह आवश्यक समझती थी।

लक्ष्मी ने सुमेरगढ़ में उसका ऐसा हार्दिक स्वागत किया कि चन्द्रशेखर बिस्मय-विमूढ़ हो गया। वह सहसा लक्ष्मी की निष्कपट आत्मीयता पर विश्वास नहीं कर पा रहा था।

परन्तु लक्ष्मी की आत्मीयता वस्तुतः निष्कपट थी, और शीघ्र ही उसने बातों ही बातों में इसका कारण भी प्रकट कर दिया। बात भाग्य की चल पड़ी थी और किन्नरी अपने सौभाग्य को सराहते हुए कह रही थी कि दो वर्ष पूर्व उसने कभी महोत्सवनगर अथवा कालंजर का स्वप्न भी नहीं देखा था।

"हाँ रानी, भाग्य बड़ा प्रबल होता है," लक्ष्मी ने कहा और फिर क्षण भर रुक कर चन्द्रशेखर की ओर देखती हुई बोली, "एक समय था जब मैं इनके स्वप्न देखा करती थी और ये मेरे पिता की गढ़ी के चारों ओर डोला करते थे।"

"हाँ, इन्होंने बताया है," किन्नरी ने कहा।

"तो इन्होंने यह भी बताया होगा कि मैंने यहाँ विवाह कर लिया जिससे इन्हें बड़ी निराशा हुई। ये ऐसा ही समझते हैं, यही कहेंगे, परन्तु यह सत्य नहीं है। मैंने विवाह नहीं किया। मेरा वश चलता तो मैं इनके अतिरिक्त किसी के साथ विवाह नहीं करती। परन्तु मेरा वश नहीं चला, और मेरा विवाह यहाँ कर दिया गया। मैं उसके विरोध में प्राण दे सकती थी। अब सोचती हूँ कि मुझे यही करना चाहिए था। परन्तु भाग्य में कुछ और लिखा था। मैंने प्राण नहीं दिये। उसका परिणाम भोग रही हूँ, और आमरण भोगती रहूँगी।"

किन्नरी के मुख पर करुणा की आर्द्रता झलक आयी। चन्द्रशेखर मौन, विचारमग्न बैठा था।

"परन्तु मुझे खेद नहीं है," लक्ष्मी कहती गयी। "मुझे अब तनिक भी खेद नहीं है। जो भाग्य का लेख है उसे भोगना ही होगा। जिस ईश्वर ने मुझे धन दिया, वैभव और सम्मान दिया, पति दिया और पुत्र दिया, उसी का दिया हुआ एक अभाव हँसकर स्वीकार करना चाहिए। यह मैंने समझ लिया है, और लगभग सीख भी लिया था। परन्तु तभी भाग्य ने, सम्भवतः मेरी परीक्षा लेने के लिए, इन्हें फिर मेरे आँगन में ला खड़ा किया। मेरे पति चले गये और ये, न जाने कैसे, न जाने क्यों, न जाने कहाँ से, मेरे सामने आ खड़े हुए। इस अप्रत्याशित घटना-चक्र ने मुझे भ्रमित कर दिया। मेरे मन का मोह जाग उठा, कामना के सागर में ज्वार आ गया, और मैं इन्हें पाने का प्रयास करने लगी। मैंने प्रत्येक संभव प्रयास किया, कुछ भी उठा नहीं रखा, क्योंकि मैं इनके अप्रत्याशित आगमन को भाग्य का इंगित समझती थी। परन्तु वह वास्तव में भाग्य का विद्रूप था। मेरे सारे प्रयत्न विफल हो गये। ये अपने मित्र को कुछ वचन देकर आये थे, और अन्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक उस पर अडिग रहे। तब मैंने हताश होकर अपने प्राण देने का निश्चय किया। परन्तु भाग्य में कुछ और लिखा था। उसने फिर इन्हें भेज दिया, और इन्होंने मुझे मरने नहीं दिया।

किन्नरी ने कहा, "यह मेरा भाग्य था, बहन, अन्यथा मैं तो तुम्हें देख भी नहीं पाती।"

"भाग्य जुड़े होते हैं, रानी," लक्ष्मी ने कहा। "तुम्हारा भी था, इनका भी था मेरा भी था, और न जाने किस-किस का था, कि मैं आज जीवित बैठी तुमसे अपने भाग्य चक्र की गाथा कह रही हूँ। भाग्य वास्तव में बड़ा प्रबल होता है। वह कभी रुलाता है तो कभी हँसाता हैं, और सदा शिक्षा देता है। मैंने रोग-शैय्या पर पड़े-पड़े उस पर बहुत विचार किया है, और उससे शिक्षा ग्रहण की है। उसने मुझे जीवन की कला सिखायी है। अब मैं जानने लगी हूँ कि जीवन में सुख और संतोष प्राप्त करने के लिए भाग्य के साथ समझौता करना आवश्यक होता है। उसके विरुद्ध संघर्ष करके कोई सुखी नहीं रह सकता। व्यक्ति को उसकी अधीनता शुद्ध हृदय से स्वीकार कर लेनी चाहिए, क्योंकि वह व्यक्ति से बहुत बड़ा होता है। व्यक्ति उसके हाथों का खिलौना मात्र है। मैंने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली है, अतएव मैं संतुष्ट हूँ। अब मुझे किसी पर क्रोध नहीं है, किसी से द्वेष नहीं है, किसी से ईर्ष्या नहीं है। जो मेरे भाग्य का था वह मुझे मिला। वह मेरा है। जो तुम्हारे भाग्य का था वह तुम्हें मिला। वह तुम्हारा है। अतएव मैं तुमसे ईर्ष्या क्यों करूँ? और यदि करूँ भी तो क्या उसे पा लूंगी जो तुम्हारा है? अतएव मेरी हार्दिक सद्भावना तुम्हारे साथ है। तुमने मुझे बहन बनाकर गौरवान्वित किया है। मैं इस पवित्र सम्बन्ध का निर्वाह करूँगी, और बड़ी होने के नाते तुम्हें आशीर्वाद दे रही हूँ। तुम्हारा सौभाग्य अचल रहे। स्नेह अचल रहे, तुम सदा सुखी रहो।"

लक्ष्मी मौन हो गयी। किन्नरी का कंठ भर आया था, और चन्द्रशेखर गम्भीर विचार में डूब गया था। अतएव कुछ क्षण तक कोई कुछ नहीं बोला। इसी अन्तर में लक्ष्मी की एक दासी पेय लेकर आयी और अपनी स्वामिनी के सम्मुख रखकर चली गयी। लक्ष्मी ने एक पात्र चन्द्रशेखर के हाथ में देकर दूसरा किन्नरी की ओर बढ़ाया। तब किन्नरी ने पात्र हाथ में लेकर कंठावरोध का निवारण करते हुए कहना आरम्भ किया, "भाग्य ने······"

परन्तु लक्ष्मी ने उसे आगे नहीं बढ़ने दिया। बोली, "बस, रानी, अब इस विषय को यहीं समाप्त कर दो। मुझे जो कुछ कहना था कह चुकी हूँ, और तुम जो कुछ कहोगी वह मैं जानती हूँ। अतएव अब मुझे विषयान्तर की अनुमति दो। क्या कल प्रस्थान निश्चित है?"

इसके पश्चात् लक्ष्मी ने इस विषय पर न कोई बात स्वयं की, न होने दी। परन्तु अपने सद्भावनापूर्ण व्यवहार से उसने किन्नरी को अपनी बना लिया और चन्द्रशेखर को आश्चर्य में डाल दिया। चलते-चलते उसने किन्नरी से वचन लिया कि वह जब कभी महोत्सवनगर आएगी तो सुमेरगढ़ भी अवश्य आएगी। जब

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्नरी ने उसे अजयगढ़ आने का निमंत्रण दिया तो वह हँसकर बोली, "मुझे क्या अजयगढ़ आने के लिए निमंत्रण की आवश्यकता है ? अब संसार में तुम्हीं लोग तो मेरे अपने हो। तुम्हीं तक मेरी दौड़ है। अतएव सुख में हो अथवा दुःख में, तुम्हारे ही पास आऊँगी।"

सुमेरगढ़ से लौटते हुए मार्ग में किन्नरी ने चन्द्रशेखर से कहा, "मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि रानीजी इतनी अच्छी होंगी।"

"मैं अब भी विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।

"यह तुम्हारा अन्याय है।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "ईश्वर करे ऐसा ही हो, परन्तु मुझे अब भी विश्वास नहीं हो रहा है।"

"मुझे है," किन्नरी ने कहा।

चन्द्रशेखर कुछ नहीं बोला, और यहीं बात समाप्त हो गयी।

हवेली पहुँचकर किन्नरी माता रत्नमाला के साथ यात्रा की व्यवस्था में व्यस्त हो गयी और रात्रि में विलम्ब तक व्यस्त रही।

चन्द्रशेखर भी बहुत व्यस्त रहा। उसे यात्रा की व्यवस्था के साथ-साथ शंकर की दंड-व्यस्था भी करनी थी। अतएव अन्य सब कार्यों से निवृत होने के पश्चात् रात्रि में उसने शंकर को बुलाकर उसके दंड की घोषणा की। उसने कहा, "तुम हमारे साथ अजयगढ़ नहीं चलोगे। यह तुम्हारा दंड है।"

शंकर जब कालंजर से लौटकर आया था तब बहुत शंकित और भयभीत था। परन्तु उस समय से अबतक उसे दंड नहीं दिया गया था। चन्द्रशेखर ने इस सम्बंध में उससे एक शब्द भी नहीं कहा था। अतएव वह धीरे-धीरे निश्चिन्त होकर यह सोचने लगा था कि उसने कोई अपराध ही नहीं किया है। अब, इतने दिन पश्चात् अपने भूले-बिसरे अपराध के लिए इतने कठोर दंड की व्यवस्था सुनकर उसे लगा कि उसके साथ घोर अन्याय किया जा रहा है जिसका विरोध करना उसका कर्तव्य है।

परन्तु चन्द्रशेखर ने उसे अपने इस कर्तव्य का पालन करने के अवसर से वंचित करते हुए कठोर स्वर में फिर कहा, "यदि बुद्धि में न आया हो तो फिर सुन ले। तुझे हमारे साथ अजयगढ़ नहीं चलना है। माताजी के साथ कालंजर भी नहीं जाना है। तू यहीं महोत्सवनगर में रहेगा।"

"परन्तु जब तुम्हीं चले जाओगे तो मैं यहाँ अकेला रहकर करूँगा क्या ?" शंकर ने साहस बटोर कर कहा।

"तू यहाँ रहकर हवेली की व्यवस्था सँभालेगा, यदि पिताजी कभी कालंजर से आएँ, अथवा मैं अजयगढ़ से आऊँ, तो हमारी सेवा करेगा, और इस बात का ध्यान रखेगा कि मेरी अनुपस्थिति में सुमेरगढ़ की रानीजी को किसी प्रकार का कष्ट न होने पाए। यह तेरा मुख्य कर्तव्य होगा, यदि इसमें कभी तनिक भी चूक हुई तो तेरी कुशल नहीं होगी।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शंकर ने एक बार फिर कुछ कहने का प्रयास किया, परन्तु चन्द्रशेखर ने उसे बोलने नहीं दिया।

— ४३ —

समय बीतने लगा।

पाँच वसंत आये और दिशाओं में सौरभ के कोष लुटाकर, पलाश के वनों में आग लगाकर और कोकिल कूजित अमराइयों को मंजरी के आभरण पहनाकर चले गये। पाँच बार ग्रीष्म के सूर्य ने धरती का तन-मन दग्ध किया, और पाँच बार वर्षा के बादलों ने सुदूर सागर का जल ला-लाकर उसकी जलन मिटायी और उसे उर्वरा बनाया। पाँच बार शरद के सुधाकर ने धरती पर अमृत की वर्षा की, पाँच बार शिशिर आया और अग-जग को कँपाकर तिरोहित हो गया।

परन्तु गजनी का महमूद चन्देलों के राज्य की ओर नहीं आया। युवराज विद्याधर ने उसके स्वागत के लिए जो व्यवस्था की थी वह शिथिल होने लगी, सैनिकों और सेनानायकों का उत्साह धीरे-धीरे क्षीण होने लगा, और सभी ओर यह धारणा बलवती होने लगी कि चन्देल वीरों की ख्याति से आतंकित महमूद अब उनके राज्य की ओर नहीं आयेगा।

इस अवधि में कलचुरियों की ओर से भी कोई आक्रामक कार्यवाही नहीं हुई थी। त्रिपुरी से चन्देल गुप्तचर प्रतिमास एक-से समाचार भेज रहे थे, जिनके परिणाम-स्वरूप चन्द्रशेखर की सतर्कता अनावश्यक प्रतीत होने लगी थी। वह अब आखेट में अधिक समय व्यतीत करने लगा था। दो मास में कम से कम एक बार महोत्सवनगर अवश्य जाता था और वहाँ कई-कई दिन तक ठहरता था। इन राजधानी-यात्राओं में वह यथासंभव किन्नरी को अपने साथ अवश्य ले जाता था, और एक बार सुमेरगढ़ अवश्य जाता था।

किन्नरी दो बार माता बन चुकी थी। बड़ा पुत्र लगभग चार वर्ष का हो चुका था और नियमित रूप से कालंजर में रह रहा था। उसे ले जाने के लिए उसकी पितामही स्वयं अजयगढ़ आयीं थी। छोटी कन्या अजयगढ़ में थी। उसे गंगा क्षण भर के लिए भी आंखों से ओट नहीं होने देती थी।

गंगा चन्द्रशेखर के छोटे-से परिवार का अविभाज्य अंग बन गयी थी, और अपनी स्थिति से बहुत प्रसन्न थी। उसे किन्नरी का भी विश्वास प्राप्त था और चन्द्रशेखर का भी, और दास-दासियों के वर्ग में वह उनके स्तर पर रहकर भी उनपर शासन करती थी। आरम्भ में चन्द्रशेखर ने किसी उपयुक्त व्यक्ति के साथ उसका विवाह कर देने का प्रस्ताव किया था, परन्तु वह किसी प्रकार इस पर सहमत नहीं हुई थी। वह अपने भाग्य से संतुष्ट थी।

सुमेरगढ़ में लक्ष्मी भी अपने भाग्य से संतुष्ट प्रतीत होती थी। चन्द्रशेखर

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और किन्नरी जब महोत्सवनगर जाते थे तो उससे अवश्य मिलते थे। वह उन्हें देखकर खिल जाती थी, उनका हार्दिक स्वागत सत्कार करती थी, और अतीत के विषय में न स्वयं कभी कुछ कहती थी, न उन्हें कहने देती थी। किन्नरी आरम्भ से ही उसकी प्रशंसक रही थी, और अब उसके प्रति अतिशय ममत्व का अनुभव करने लगी थी। चन्द्रशेखर को आरम्भ में उसका विश्वास नहीं था, परन्तु अब उसे भी अपनी वह धारणा मिथ्या और निराधार प्रतीत होने लगी थी।

लक्ष्मी एक बार अजयगढ़ भी हो आयी थी। उसका पुत्र ६ वर्ष से अधिक का हो गया था परन्तु अपनी आयु के अनुरूप बढ़ नहीं रहा था। उसी को लेकर वह अजयगढ़ गयी थी। उसे चन्द्रशेखर को सौंपकर कहने लगी, "तुम इसके पिता के मित्र और मेरे हितैषी हो। अतएव उनकी अनुपस्थिति में उनके कर्तव्य का पालन करो। मैं स्त्री ठहरी, और सुमेरगढ़ अथवा महोत्सवनगर में मेरा कोई सहायक नहीं है। अपराध तुम्हारे मित्र का है, परन्तु उसका दंड इस निर्दोष बालक को भोगना पड़ रहा है। इसे अपनी जाति तथा मर्यादा के अनुरूप शिक्षा नहीं मिल पा रही है। इस कारण तुम्हारी शरण में आयी हूँ। अब तुम्हीं इसे अपने साथ रखकर इसकी शिक्षा की व्यवस्था करो। यह समझ लो कि मैं इसी के लिए जी रही हूँ। इसे अपना पुत्र समझ कर किसी योग्य बना दो। मेरी और कोई आकांक्षा नहीं है।"

चन्द्रशेखर ने किन्नरी की आँखों में झाँका और वहाँ गहरा अनुरोध पाकर तत्परतापूर्वक इस नये उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लिया।

तब किन्नरी ने लक्ष्मी से कहा, "कुमार को मैं अपने पुत्र की भाँति रखूँगी, बहन! इसे तनिक भी कष्ट नहीं होने दूँगी। परन्तु तुम्हारा स्थान तो मैं नहीं ले सकूँगी। और तुम भी अकेली सुमेरगढ़ में क्या करोगी?"

लक्ष्मी कुछ क्षण मौन रही। एक छाया-सी उसके मुख पर आयी, तनिक ठहरी, और विलीन हो गयी। उसने एक बार दृष्टि उठाकर किन्नरी की ओर देखा, फिर धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया, "मेरा स्थान सुमेरगढ़ में है, मैं वहीं रहूँगी। मुझे पूरा विश्वास है कि यहाँ कुमार को कोई कष्ट नहीं होगा। तुम्हारा स्नेह पाकर वह मेरी सुधि भी नहीं करेगा। यदि इतना विश्वास न होता तो तुम्हारे पास आती ही क्यों?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "यदि विश्वास है तो किन्नरी का प्रस्ताव भी स्वीकार कर लेना चाहिए। समय अच्छा नहीं है, सुरक्षा की दृष्टि से तुम्हारा सुमेरगढ़ में अकेले रहना उचित नहीं है।"

"मेरी सुरक्षा को अभी वहाँ कोई आशंका नहीं है," लक्ष्मी ने बिना चन्द्रशेखर की ओर देखे उत्तर दिया, "यदि कभी होगी तो तुरन्त चली आऊँगी।"

किन्नरी ने कहा, "आशंका चेतावनी देकर नहीं आती है, अतएव उसकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। तुम बड़ी हो, छोटी मैं हूँ। मुझे केवल अनुरोध करने का अधिकार है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"अधिकार की दुहाई न दो, रानी, अन्यथा मुझे घोर कष्ट होगा। मेरा सुमेरगढ़ में रहना नितान्त आवश्यक है। यदि न होता तो तुम्हें अनुरोध करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु मेरा वहाँ रहना नितान्त आवश्यक है।"

"क्यों ?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"कारण है, परन्तु इस समय बता नहीं सकूंगी।"

"मुझे भी नहीं ?" किन्नरी ने कहा।

लक्ष्मी बोली, "इस समय हठ न करो, रानी ! तुम्हें फिर कभी बता दूंगी, अवश्य बता दूंगी।"

—४४—

गजनी का सुल्तान महमूद उन बिरले व्यक्तियों में था जो अनेकानेक कठिनाइयों से जूझकर एक बार असम्भव को भी सम्भव बना लेते हैं। बाधाएँ उन्हें प्रेरणा देती हैं, विफलताएँ उनकी सफलता का मार्ग प्रशस्त करती हैं। ऊँचे से ऊँचे पर्वत भी उनकी प्रगति को कठिन बना सकते हैं, परन्तु रोक नहीं सकते।

ऐसे ही एक-दो पर्वत महमूद के मार्ग में आ खड़े हुए थे।

भारतीय अभियानों के परिणामस्वरूप उसकी शक्ति और समृद्धि का विकास इतनी तीव्र गति से हो रहा था कि फारस तथा तुरुष्क-देश के अन्य शासकों को उससे भय होने लगा था। वे ईर्ष्यावश अथवा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचते रहते थे और उसकी शक्ति क्षीण करने का कोई अवसर नहीं छोड़ते थे। जब वह स्थानेश्वर में था तो उसके कुछ ऐसे ही शत्रुओं ने मिलकर उसके अपने राज्य के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया था। अतएव गजनी पहुँचकर महमूद ने सबसे पहले उनका दमन करने का निश्चय किया। इस कार्य में उसे पूरा एक वर्ष लग गया।

महमूद के दुर्भाग्यवश इसी अन्तर में उद्भाण्ड के शाही नरेश आनन्दपाल का देहान्त हो गया, जिसके परिणामस्वरूप उसके सामने एक और बड़ी बाधा आ खड़ी हुई। आनन्दपाल के साथ उसकी मित्रता की संधि थी। यह संधि दो पीढ़ियों के दीर्घ सामरिक तथा राजनीतिक प्रयास के पश्चात् सम्पन्न हुई थी, और इसके परिणामस्वरूप महमूद के लिए भारत के हृदय-भाग तक पहुँचने का मार्ग खुल गया था। परन्तु आनन्दपाल की मृत्यु के साथ यह मार्ग फिर बंद हो गया। नये शाही शासक त्रिलोचनपाल आरम्भ से ही अपने पिता द्वारा की गयी संधि के विरोधी थे, और इस विरोध में उन्हें अपने पुत्र युवराज भीम का तथा सम्पूर्ण शाही सेना का समर्थन प्राप्त था। अतएव सत्ता हाथ में आते ही पिता-पुत्र ने वंशानुगत वैर-भाव का निर्वाह करते हुए विग्रह की घोषणा करदी। संघ सेना की धारणा समर्थ संचालक के अभाव तथा पारस्परिक अविश्वास के कारण

Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विफल सिद्ध हो चुकी थी । अतएव त्रिलोचनपाल ने इस बार किसी से सहायता नहीं मांगी । चन्देलों ने अपनी ओर से प्रस्ताव किया था, परन्तु त्रिलोचनपाल ने उससे भी लाभ नहीं उठाया । उन्हें अपनी शक्ति पर पूरा विश्वास था । उनका यह विश्वास किसी सीमा तक उचित भी था, क्योंकि महमूद को अपनी सम्पूर्ण शक्ति तथा योग्यता के साथ, और भारी क्षति उठाकर, उनका दमन करने में चार वर्ष का समय लग गया । इसके पश्चात् भी त्रिलोचनपाल अथवा भीम ने उसके सामने घुटने नहीं टेके । वे पराजित होकर भी, राज्य खोकर भी, अजेय तथा मुक्त रहे । परन्तु महमूद ने लगभग सम्पूर्ण शाही राज्य को अपने अधीन करके भारत का अवरुद्ध द्वार फिर खोल लिया ।

इस प्रकार मार्ग की बाधाओं पर विजय प्राप्त करके वह एक बार फिर भारत के उस हृदय-भाग की ओर बढ़ा जो उसकी महत्वाकांक्षाओं का केन्द्र था, जिसके मंदिरों तथा प्रासादों का अपार वैभव मानों उसे पुकार रहा था । इस बार उसने निश्चय कर लिया था कि चाहे कितना ही कठिन और दीर्घ अभियान क्यों न करना पड़े, वह केवल छोर छूकर नहीं लौटेगा ।

पंचनद-प्रदेश को रौंदती हुई उसकी विशाल वाहिनी पूर्व की ओर बढ़ी और शीघ्र ही यमुना के तट पर आ खड़ी हुई । मार्ग में कोई उसका अवरोध करने वाला नहीं रह गया था । त्रिलोचनपाल और भीम स्वयं शरण खोजते घूम रहे थे । संघ-सेना की योजना पहले ही छिन्न-भिन्न हो चुकी थी, और उत्तरापथ में उस समय कोई बड़ा, शक्तिशाली राज्य नहीं था । छोटे-छोटे राज्य अनेक थे जिनके शासक अपने आप को किसी सम्राट से कम नहीं समझते थे और इस कारण परस्पर विग्रह-रत रह कर अपनी शक्ति क्षीण करते रहते थे । वे इस भयानक आँधी के सामने नहीं टिक सके । कुछ ने इस्लाम स्वीकार करके अपने प्राण बचाये, कुछ ने पलायन का मार्ग पकड़ा और कुछ ने, जिनमें स्वाभिमान की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक थी, लड़ते-लड़ते प्राण दे दिये । परन्तु महमूद को कोई नहीं रोक पाया । वह रक्त की नदियाँ बहाता हुआ, और प्रत्येक सम्भव उपाय से अपने कोष की वृद्धि करता हुआ, मधुपुरी—वर्तमान मथुरा—आ पहुँचा ।

मधुपुरी उस समय अन्तर्वेद की सर्वाधिक समृद्धिशाली नगरी थी । उसकी गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ प्रासादों से होड़ लेती थीं और उसके असंख्य मंदिरों के स्वर्ण-कलश आकाश को छूते प्रतीत होते थे । मधुपुरी में व्यापार था, धन था, वैभव था, धर्म था, और धर्म के नाम पर शोषण भी था । वहाँ सब था, परन्तु कोई समर्थ रक्षक नहीं था जो भागवत मतावलम्बियों के सुप्तप्राय शौर्य्य को जगाकर महमूद के मार्ग में खड़ा हो जाता । परिणामतः महमूद ने बिना विशेष प्रयास के ही नगर पर अधिकार कर लिया और उसे जी भर कर लूटा । इस प्रकार अर्जित कनक, रजत तथा मणि-माणिक्य का अपना अतुल भंडार देखकर उसकी कल्पना चकित रह गयी, और उसे भारत के इस एक नगर के समक्ष गजनी का सम्पूर्ण वैभव क्षुद्र प्रतीत होने लगा । ईर्ष्यावश उसने अपने सेनापतियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को आज्ञा दी कि सम्पूर्ण मधुपुरी को ध्वस्त कर दिया जाए, जो ले जाया नहीं जा सकता है उसे गिरा दिया जाए, जला दिया जाए। वह किसी ऐसे स्थान का अस्तित्व सहन नहीं कर सकता था जिसके समक्ष उसकी अपनी राजधानी क्षुद्र प्रतीत हो।

जिस समय महमूद मधुपुरी में लूट, रक्तपात तथा विध्वंस का तांडव रचा रहा था, उस समय युवराज विद्याधर के नेतृत्व में चन्देल सेना भयानक युद्ध के लिए तत्पर अपने राज्य की सीमा पर खड़ी थी। यद्यपि तुरुष्क शिविर से किसी सूत्र द्वारा यह सूचना मिल चुकी थी कि महमूद महोत्सवनगर पर आक्रमण नहीं करेगा, परन्तु युवराज विद्याधर को उस पर विश्वास नहीं था। युवराज वास्तव में युद्ध के लिए कसमसा रहे थे और यदि उनका वश चलता तो महमूद के लिए मधुपुरी पर अधिकार करना कठिन हो जाता। परन्तु उनका वश नहीं चल रहा था। राजनीतिक कारणों से यह निर्णय किया गया था कि यदि तुरुष्क चन्देल सीमा में प्रवेश करें तभी उनका अवरोध किया जाए। युवराज इस निर्णय से सहमत नहीं थे, परन्तु महाराज के आदेश की अवज्ञा भी नहीं कर सकते थे।

तुरुष्कों ने वास्तव में चन्देल राज्य-सीमा का अतिक्रमण नहीं किया। महमूद अपनी सेना का एक बड़ा भाग मधुपुरी में छोड़कर स्वयं द्रुत गति से कान्यकुब्ज की ओर बढ़ गया। गति उसकी सफलताओं का मूल-मंत्र थी, उसका वह सदा ध्यान रखता था। कान्यकुब्ज-अभियान में उसने अपने साथ केवल द्रुतगामी अश्वारोही सेना रखी।

कान्यकुब्ज का ऐश्वर्य लोक-विश्रुत था। हर्षवर्धन के विशाल साम्राज्य की इस राजधानी में अब शक्ति नहीं रह गयी थी, परन्तु उसकी विपुल सम्पत्ति अक्षुण्ण थी। उसके प्रासाद हिरण्य तथा रत्नों के भंडार थे, और उसके दस सहस्र देवालयों में अपार धन भरा था। नगर के एक ओर पतित-पावनी गंगा की धारा थी, और दूसरी ओर सात सुदृढ़ दुर्ग आक्रामकों से उसकी रक्षा करते थे।

परन्तु वे महमूद से नगर की रक्षा नहीं कर सके, उसने एक दिन में सातों सुदृढ़ दुर्गों पर अधिकार कर लिया। प्रतिहार महाराजाधिराज राज्यपाल पहले ही पलायन कर चुके थे। उनकी राजभक्त प्रजा ने स्वभावतः उनका अनुकरण किया। नगर ने महमूद का स्वागत किया, महमूद ने उसे लूटा।

इसके पश्चात् वह वायु-वेग से गंगा के किनारे-किनारे चलता हुआ असनी पहुंचा, और वहाँ कान्यकुब्ज की पुनरावृत्ति हुई। फिर वह दक्षिण की ओर घूमकर पहले मुंज और उसके पश्चात् शिवगढ़ पहुँचा। और इस प्रकार दिग्विजय-सी करता हुआ वह अपार धन-सम्पत्ति तथा असंख्य गज-अश्व और बंदियों को साथ लेकर मधुपुरी में अपनी शेष सेना से जा मिला और वहाँ से गजनी लौट गया।

उधर चन्देल सेना युद्ध के लिए तत्पर खड़ी रही और युवराज विद्याधर कसमसाते रहे। परन्तु महमूद ने चन्देल राज्य-सीमा की ओर दृष्टि भी नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उठायी। इससे विद्याधर को बड़ी निराशा हुई, परन्तु उनका तथा उनकी प्रजा का यह विश्वास और दृढ़ हो गया कि चन्देलों के शौर्य से भयभीत महमूद उनके साथ युद्ध नहीं करना चाहता है और उनके राज्य में कभी प्रवेश नहीं करेगा।

विद्याधर ने अपना निराशा-जन्य क्षोभ कान्यकुब्ज के राज्यपाल पर उतारा। प्रतिहारों को उनकी कायरता का दंड देने के लिए चन्देलों ने कान्यकुब्ज पर आक्रमण कर दिया और युवराज ने नगर पर अधिकार करके अपने हाथों से राज्यपाल का वध कर दिया।

— ४५ —

जिस समय तुरुष्क वाहिनी यमुना पार करके मधुपुरी की ओर बढ़ रही थी उस समय किन्नरी महोत्सवनगर में थी। परन्तु तुरुष्कों के आगमन का प्रथम समाचार पाते ही वह अजयगढ़ लौट आयी थी और हठ करके अपने साथ लक्ष्मी को भी ले आयी थी।

लक्ष्मी के लिए यह अजयगढ़ आने का दूसरा, और वहाँ रहने का पहला, अवसर था। वहाँ उसे कोई प्रत्यक्ष असुविधा नहीं थी। उसका पुत्र वहीं था, और किन्नरी उसका विशेष ध्यान रखती थी। तथापि वह इस व्यवस्था से बहुत प्रसन्न नहीं थी, और महमूद के प्रत्यावर्तन का समाचार आते ही सुमेरगढ़ लौट जाने की हठ करने लगी थी।

परन्तु इसी बीच चन्द्रशेखर को महोत्सवनगर जाना पड़ गया। युवराज विद्याधर कान्यकुब्ज पर आक्रमण की योजना बना रहे थे। इसी संदर्भ में उन्होंने चन्द्रशेखर का स्मरण किया था। किन्नरी ने इस स्थिति की दुहाई देकर लक्ष्मी से चन्द्रशेखर के लौटने तक रुकने का इतनी दृढ़ता के साथ आग्रह किया कि लक्ष्मी उसे अस्वीकार नहीं कर सकी।

चन्द्रशेखर को लौटने में दो मास से अधिक लग गये जिसके परिणामस्वरूप लक्ष्मी को इतने समय तक अजयगढ़ में रहना पड़ा, और किन्नरी को उसे निकट से देखने का अवसर मिला।

जब तक चन्द्रशेखर अजयगढ़ में रहा तब तक लक्ष्मी यथासम्भव उसके सामने नहीं पड़ती थी, और यदि कभी पड़ ही जाती थी तो कुछ काल तक सहमी-सकुचायी बैठी रहती थी, फिर चुपचाप वहाँ से उठकर चली जाती थी। किन्नरी के साथ वह नियमित रूप से बैठती थी, बातें करती थी, आर हँसती भी थी। परन्तु उसकी हँसी कृत्रिमता से, और उसकी बातें औपचारिकता से, मुक्त नहीं होती थीं। अपने भूत, वर्तमान तथा भविष्य के प्रसंगों से वह सदा कतराती थी, शृंगार तथा आमोद-प्रामोद के प्रति सदा उदासीन रहती थी, और नारी-स्वभाव के प्रतिकूल सदा एकान्त खोजा करती थी। किन्नरी यह सब देखती थी, सम-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

झती थी, और समझकर एक विचित्र भावना से भर जाती थी। नारी-हृदय को ऐसी बातें समझने के लिए तर्क की, अथवा बुद्धि की, अपेक्षा नहीं होती। वह स्वयं अपना मस्तिष्क बन जाता है।

चन्द्रशेखर के जाने के पश्चात् लक्ष्मी अधिक समय तक किन्नरी के पास बैठने लगी और पहले की अपेक्षा कुछ अधिक खुलकर बातें करने लगी, मानों उसके मस्तिष्क पर से कोई भार उतर गया हो। परन्तु बातें करते-करते कभी वह सहसा अत्यधिक गम्भीर हो जाती थी और मौन धारण कर लेती थी। किन्नरी यथासम्भव ऐसे अवसर नहीं आने देती थी। परन्तु अवसर फिर भी कभी-कभी आ ही जाते थे। और तब किन्नरी के लिए भी मौन हो जाना अथवा उठकर कहीं चले जाना आवश्यक हो जाता था।

एक दिन महमूद के विषय में बात चल रही थी। बात के पैर नहीं होते, फिर भी वह चलती है, और जब लक्ष्मी तथा किन्नरी जैसी दो स्त्रियाँ केवल समय काटने के लिए कोई बात आरम्भ करती हैं तब उसकी गति बड़ी विचित्र हो जाती है। वह कहीं से चलती है और न जाने कहाँ जा पहुँचती है। उस दिन वह महमूद के अत्याचारों से आरम्भ हुई और सामाजिक जीवन के आदर्श पर जा खड़ी हुई। उसे यह दिशा किन्नरी ने प्रदान की। वह सहसा पूछ बैठी, "क्या जीवन की सार्थकता इसी में है ?"

"किसमें ?" लक्ष्मी ने प्रश्न किया।

"जो महमूद कर रहा है, उसमें ? रक्त बहाने में, अपहरण करने में दूसरों, को लूटकर अपना घर भरने में ? क्या यही मनुष्य का धर्म है ? क्या इसी में जीवन की सार्थकता है ?"

लक्ष्मी हँस दी—एक विचित्र-सी हँसी जो न विनोद की थी न विद्रूप की। फिर बोली, "मौलिक जीवन की सार्थकता तो इसी में थी। वनों में आज भी यही सब हो रहा है।"

किन्नरी ने गम्भीरतापूर्वक सिर हिलाकर कहा, "सत्य कह रही हो, बहन। पशु-जीवन की सार्थकता इसी में है। परन्तु क्या जो वन में हो रहा है वही सभ्य मनुष्यों के समाज में भी होना चाहिए ?"

लक्ष्मी बोली, "यह सार्थकता का प्रश्न बड़ा जटिल है, रानी। सभ्य मनुष्यों के समाज में भी श्रमण की अपनी सार्थकता होती है और सैनिक की अपनी। एक हिंसा से दूर भागता है, दूसरा हिंसा में ही गौरव पाता है। दस्यु की सार्थकता लेने में है, दानी की देने में। अन्तर केवल दृष्टिकोण का होता है।"

"व्यक्ति-व्यक्ति के दृष्टिकोण में अन्तर हो सकता है, और होता भी है," किन्नरी ने कहा, "परन्तु समाज का मानदण्ड सबके लिए समान होता है। हम उसी के आधार पर उचित-अनुचित का निर्णय करते हैं, दस्यु-वृत्ति की निन्दा तथा दानशीलता को श्लाघ्य बताते हैं।"

"यह सत्य है," लक्ष्मी ने कहा, "यद्यपि समाज का मानदण्ड सदा सामाजिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं होता है। उदाहरण के लिए, समाज तपस्वी के जीवन को स्तुत्य मानता है। परन्तु मेरी दृष्टि में उसका जीवन उतना ही निरर्थक है जितना किसी दस्यु का। दोनों ही स्व-केन्द्रित हैं, अतएव दोनों ही आसामजिक हैं। मैं सार्थक जीवन उसे मानती हूँ जो दूसरों के लिए जिया जाए। जो जितने अधिक लोगों के लिए जीता है उसका जीवन उतना ही अधिक सार्थक है। जो केवल अपने लिए जीता है उसका जीवन निरर्थक है।"

"जो औरों के लिए जीना चाहता है उसे भी पहले अपने लिए जीना पड़ता है। स्व को व्यक्ति से विलग नहीं किया जा सकता।"

"कठिन है," लक्ष्मी ने कहा, "परन्तु असम्भव नहीं है। अनेक व्यक्ति निःस्व होकर जीते हैं—कुछ स्वेच्छा से, जैसे तुम्हारा शंकर है, और कुछ विवशता से, जैसे······जैसे मुझे ही समझ लो।"

किन्नरी कुछ क्षण मौन बैठी लक्ष्मी के मुख की ओर देखती रही, फिर बोली "एक बात बताओगी, बहन ? बहुत दिनों से पूछना चाह रही हूँ।"

"तो पूछी क्यो नहीं ? इतना विलम्ब क्यों किया ?"

"संकोच के कारण," किन्नरी ने कहा। "आज भी पूछते बड़ा संकोच लग रहा है। परन्तु अब पूछ कर ही मानूँगी। तुम्हें स्मरण होगा जब तुम कुमार को लेकर यहाँ आयीं थी तो मैंने तुमसे भी अजयगढ़ में रहने का बहुत अनुरोध किया था।"

"मुझे भली प्रकार स्मरण है। तुमने बहुत अनुरोध किया था और मैंने उसे नहीं माना था। मैंने कहा था कि मेरा सुमेरगढ़ में रहना नितान्त आवश्यक है।"

"हाँ, और कहा था कि इसका कारण तुम मुझे फिर कभी बता दोगी। मैं वह कारण जानना चाहती हूँ।"

लक्ष्मी मुस्करा कर बोली, "वास्तव में मैंने उस समय जो कहा था वह पूर्णतया सत्य नहीं था। मेरा सुमेरगढ़ में रहना नितान्त आवश्यक नहीं था। मुझे कहना चाहिए था कि मेरा अजयगढ़ से दूर रहना नितान्त आवश्यक है।"

"क्यों ?" लक्ष्मी के मुख पर दृष्टि गड़ाकर किन्नरी ने पूछा।

लक्ष्मी कुछ क्षण तक विचारमग्न बैठी रही, मानों इस 'क्यों' का उत्तर खोज रही हो, फिर धीमे स्वर में बोली, "मुझे अजयगढ़ में भय लगता था।"

"अजयगढ़ में भय ! किससे ?"

"सबसे पहले और सबसे अधिक, अपने आप से। मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं था। और फिर, तुमसे।"

"मुझसे ?" स्वर और मुद्रा दोनों से विस्मय प्रकट करते हुए किन्नरी ने कहा, "तुम्हें मुझसे भय लगता था ?"

"हाँ, रानी, तुमसे", लक्ष्मी ने उत्तर दिया। "मुझे तुम्हारे स्नेह से, और उस से भी अधिक तुम्हारे सरल विश्वास से, भय लगता था। तुम मेरे ऊपर इतना विश्वास करती थीं कि वह मेरा बंधन बन गया था। उस अडिग विश्वास के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिखर पर खड़ी होकर नीचे देखने में भी भय लगता था, नीचे की कल्पना से भी रोम-रोम काँप उठता था। इस कारण मुझे तुमसे और अजयगढ़ से भय लगता था। परन्तु अब नहीं लगता है। अब मुझे अपने ऊपर विश्वास है। न होता तो इस बार भी यहाँ न आती। और मेरे इस आत्म-विश्वास का श्रेय भी तुम्हें ही है। तुमने मेरे ऊपर विश्वास करके मुझे अपने ऊपर विश्वास करना सिखा दिया है। बस, अब तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर हो गया ?''

किन्नरी न जाने किस विचार में खो गयी थी। अंतिम वाक्य सुनकर वह चौंक-सी गयी और बोली, ''अभी नहीं, बहन। एक प्रश्न और है, केवल एक। मैं जानती हूँ उसे पूछकर मैं तुम्हें कष्ट पहुँचाऊँगी। फिर भी आज पूछूँगी अवश्य, और तुमसे उसका उत्तर सुनकर ही मानूँगी। मेरे मन में एक संदेह घर कर गया है। उसका समाधान कर दो, फिर तुमसे इस सम्बन्ध में कभी कुछ नहीं पूछूँगी।''

लक्ष्मी ने गम्भीर होकर कहा, ''प्रश्न मेरे अतीत के सम्बंध में है ?''

''नहीं, वर्तमान के।''

लक्ष्मी ने और अधिक गम्भीर होकर कहा, ''पूछो। यदि पूछना ही चाहती हो तो उसे भी पूछ लो, यद्यपि मैं तुम्हारा प्रश्न जानती हूँ, और मेरा अनुमान है कि तुम भी मेरा उत्तर जानती हो।''

किन्नरी कुछ काल तक दृष्टि नीची किये विचारमग्न बैठी रही, फिर धीमे स्वर में बोली, ''अब मुझे कुछ नहीं पूछना है। मैं तुम्हारा उत्तर जानती हूँ।''

— ४६ —

किन्नरी ने अपने कर्तव्य का निर्णय तुरन्त कर लिया था, परन्तु उसके अनुसार कार्य करने में उसे समय लग गया।

इसका मुख्य कारण चन्द्रशेखर की व्यस्तता थी। वह महोत्सवनगर से लौट आया था, परन्तु अजयगढ़ में एक साथ एक-दो दिन से अधिक नहीं रह पा रहा था। कभी कालंजर, कभी देवगढ़, और कभी फिर महोत्सवनगर चला जाता था, और वहाँ से कई-कई दिन बाद लौटता था। किन्नरी अपनी बात कहने के लिए जैसा अवकाश चाहती थी वैसा उसे नहीं मिल पा रहा था। चन्द्रशेखर जब अजयगढ़ में रहता था तब भी व्यस्तता के कारण किन्नरी के पास नहीं बैठ पाता था।

अन्त में एक दिन महोत्सवनगर से लौटते ही उसने घोषणा की, ''महमूद आ रहा है।''

''कब ? कहाँ ?'' किन्नरी ने पूछा।

चन्द्रशेखर ने कहा, ''गजनी से चल चुका होगा। युवराज ने कान्यकुब्ज के राज्यपाल का वध करके उसे चुनौती दी थी। वह महमूद ने स्वीकार करली है।''

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"फिर क्या होगा ?" किन्नरी ने चिन्तित होकर पूछा।

चन्द्रशेखर ने हँसकर उत्तर दिया, "हम गजनी के सुल्तान का उचित सत्कार करेंगे और उसे दिखा देंगे कि उसने चन्देलों को शत्रु बनाकर भारी भूल की है। हम उसे फिर इस ओर आँख उठाने योग्य नहीं रखेंगे।"

परन्तु किन्नरी की चिन्ता इस आश्वासन से कम नहीं हुई। उसने पूछा, "युद्ध कहाँ होगा ? महोत्सवनगर में ?"

यह अभी निश्चित नहीं है। युवराज सीमा पर अवरोध करने के पक्ष में हैं परन्तु महाराज सहमत नहीं।"

"महाराज महोत्सवनगर में ही रहना चाहते हैं ?"

"नहीं, वे कालंजर में युद्ध करने के पक्ष में हैं। उनका तर्क यह है कि वहाँ हम सुरक्षित रहकर तुरुष्कों को चारों ओर से घेर सकते हैं।"

"क्या महमूद उस दशा में महोत्सवनगर पर आक्रमण नहीं करेगा ?"

"महोत्सवनगर अरक्षित नहीं रहेगा" चन्द्रशेखर ने कहा, "परन्तु उस पर आक्रमण हो सकता है, कालंजर से पहले हो सकता है। मैं शंकर को आदेश दे आया हूँ। वह शीघ्र ही यहाँ आ जाएगा। फिर तुम्हारे साथ उसे भी माताजी के पास कालंजर भेज दूंगा।"

किन्नरी कुछ क्षण धरती की ओर देखती हुई मौन बैठी रही, फिर सहसा बोली "रानी बहन को मैं अपने साथ रखना चाहती हूँ।"

उसके सर्वथा नवीन स्वर से चौंककर चन्द्रशेखर ने कहा "तुम्हारे साथ तो वह रहेगी ही।"

"मेरा तात्पर्य यह था" किन्नरी ने कहा "कि मैं उन्हें सदा अर्थात् स्थायी रूप से अपने साथ रखना चाहती हूँ।"

"मुझे इसमें भी कोई आपत्ति नहीं है" चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया।

"यह मैं जानती हूँ। परन्तु रानी बहन ऐसे सहमत नहीं होंगी।"

"तो जैसे सहमत हों वैसा करो। मैंने क्या निषेध किया है ?"

"मेरे कहने से वे कभी सहमत नहीं होंगी" किन्नरी ने कहा "परन्तु यदि आप चाहें और उनसे कहें तो हो सकती हैं।"

"मैं पहले भी कह चुका हूँ फिर कह दूंगा।"

"वैसे कहने से अब भी कोई प्रभाव नहीं होगा। उनका अधिकार उन्हें देकर कहिये तो सम्भव है स्वीकार करलें। और यदि फिर भी नहीं करेंगी तो मैं मना लूंगी, यह मेरा उत्तरदायित्व है। जो उनका है वह उन्हें मिलना ही चाहिए। यह मेरी इच्छा है और यही उचित भी है।"

चन्द्रशेखर ने विस्मय से उसकी ओर देखते हुए अपना हाथ उसके मस्तक पर रखा और कोमल स्वर में पूछा "तुम स्वस्थ तो हो किन्नरी ?"

"मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ," किन्नरी ने उत्तर दिया, "और जो कुछ कह रही हूँ वह बहुत दिनों तक भली प्रकार विचार करने के पश्चात् कह रही हूँ। जो जिसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है वह उसे मिलना ही चहिए।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मेरा प्रस्ताव है, किन्नरी, कि इस विषय को हम आज यहीं स्थगित कर दें। फिर कभी अवकाश से बैठकर इस पर विचार करेंगे। अब तुम चलकर विश्राम करो। मुझे अभी कई आवश्यक कार्य करने हैं।" और वह उठकर खड़ा हो गया।

परन्तु किन्नरी नहीं उठी। उसने दोनों हाथ बढ़ाकर चन्द्रशेखर के पैर पकड़ लिये और कहा, "मैं आपके किसी आवश्यक कार्य में बाधक नहीं बनूंगी। आज तक नहीं बनी हूँ। परन्तु अपनी बात कह लूंगी, और स्वीकार करा लूंगी, तभी जाने दूंगी। मैं अस्वस्थ नहीं हूँ। भावावेश में आकर भी यह सब नहीं कह रही हूँ। मैं नारी हूँ, और नारी की वेदना को पहचान सकती हूँ। आप उसकी गहराई नहीं भाँप सकते, परन्तु मैं उसमें डूब सकती हूँ।"

"क्या लक्ष्मी ने तुमसे कुछ कहा है?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

"नहीं," किन्नरी ने उत्तर दिया, "रानी बहन ने मुझसे इस सम्बन्ध में कभी कुछ नहीं कहा है। परन्तु मैं उनकी तपस्या नहीं सहन कर पा रही हूँ। इधर मैंने उन्हें बहुत निकट से देखा है, और जितने अधिक निकट से देखा है उतना ही अधिक स्नेह और सहानुभूति के योग्य पाया है। उनकी वेदना का अन्त नहीं है, और उनकी सहनशीलता भी अनन्त है। वे सब सह लेंगी और कभी किसी से कुछ नहीं कहेंगी।"

"यही उचित भी है," चन्द्रशेखर ने कहा। "जो भाग्य में नहीं है उसे क्या कहकर प्राप्त किया जा सकता है? जो होता है वह बिना कहे मिल जाता है, जैसे मुझे मिल गया है। मैं अपने भाग्य से संतुष्ट हूँ और उसमें तनिक भी परिवर्तन नहीं चाहता हूँ। तुम अपने से संतुष्ट नहीं हो क्या?"

किन्नरी बोली, "अपने भाग्य से मैं भी भली प्रकार संतुष्ट हू। मैं जिस योग्य थी ईश्वर ने मुझे उससे बहुत अधिक दिया है। परन्तु रानी बहन के भाग्य से संतुष्ट नहीं हूँ। मैं उनके जीवन को नितान्त एकाकी तथा निरर्थक नहीं रहने दूंगी।"

"यह पागलपन है, किन्नरी। तुम कर ही क्या सकती हो?"

"जो कह चुकी हूँ वही करूँगी। उन्हें बड़ी बहन बनाकर अपने साथ रखूंगी और वह दिलाऊँगी जो मेरे कारण उन्हें नहीं मिल सका है। यदि आप उनके पुत्र के अभिभावक हो सकते हैं तो उनके क्यों नहीं हो सकते?"

"मैं लक्ष्मी का भी अभिभावक हूँ," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "और अपने उस कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ। परन्तु तुम जो कह रही हो वह असम्भव है। मेरे हृदय में उसके लिए बड़ी सहानुभूति है। परन्तु प्रेम नहीं है। कामना भी नहीं है।"

किन्नरी ने कहा, "पुरुष का हृदय ही ऐसा होता है। उसका प्रेम कुसुम के समान होता है जो एक बार कुम्हलाकर फिर कभी सौरभ नहीं बिखेरता। परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारी हृदय ही हृदय होती है। उसका प्रेम सतत सौरभशील कस्तूरी के समान होता है। उसे नारी ही समझ सकती है।"

"तो तुम समझो," चन्द्रशेखर ने झुँझलाकर कहा, "भली प्रकार समझो, और बार-बार समझो। परन्तु मुझे अब जाने दो, विलम्ब हो रहा है।"

किन्नरी ने उसके दोनों पैर कसकर पकड़ लिये और कहा, "आज तक मैंने बिना माँगे आपसे सब-कुछ पाया है, और इतना पाया है कि उसे सँभाल नहीं पाती हूँ। आज जीवन में पहली बार एक याचना कर रही हूँ। क्या उसे स्वीकार नहीं करेंगे ? मेरा इतना मान नहीं रखेंगे ?"

उसके स्वर में कुछ ऐसा था कि क्षण भर में चन्द्रशेखर की सारी झुँझलाहट घुल गयी। उसने किन्नरी के मुख पर दृष्टि डाली, परन्तु वह वहाँ ठहर नहीं सकी। वह बोला, "तुम विचित्र स्त्री हो, किन्नरी !"

"मुझे विचित्र कह लीजिए, विक्षिप्त कह लीजिए, मूर्ख कह लीजिए—जो-जो आपको रुचे वह सब कह लीजिए। मैं जैसी भी हूँ आपकी दासी हूँ, और आप मेरे स्वामी हैं, और दासी अपने स्वामी से एक याचना कर रही है।"

"मैं उस पर विचार करूँगा," चन्द्रशेखर ने कहा।

किन्नरी बोली, "मैंने आपके समक्ष कोई प्रस्ताव नहीं रखा है, जो आप उस पर विचार करेंगे। मैंने याचना की है, और अस्वीकृति स्वीकार नहीं करूँगी। समय चाहे जितना ले लीजिए परन्तु वचन अभी, इसी समय देना होगा।"

सहसा चन्द्रशेखर के मस्तिष्क में एक विचार कौंध गया। उसने कहा, "समय चाहे जितना ले लूं ?"

"कितना लेंगे ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "अधिक नहीं लूँगा। युद्ध के पश्चात् यदि ऐसी ही स्थिति रही तो मैं तुम्हारी याचना स्वीकार कर लूँगा।"

"वचन देते हैं ?"

"वचन देता हूँ।"

किन्नरी ने तुरन्त उसके पैर छोड़ दिये और अपने दोनों हाथ मस्तक से लगाकरकहा, "बस अब आपको क्षण भर भी नहीं रोकूँगी।"

— ४७ —

चन्द्रशेखर ने जितना समझा था युद्ध उससे कहीं अधिक निकट था। जिस समय वह अजयगढ़ में अपनी पत्नी का विचित्र-सा अनुरोध सुन रहा था उस समय गजनी का सुल्तान महमूद पंचनद क्षेत्र में आ चुका था और नदियां पार करता हुआ पवन-वेग से दक्षिण-पूर्व महोत्सवनगर की ओर बढ़ता चला आ रहा था।

इस बार उसका उद्देश्य पिछले अभियानों से भिन्न था। उसका कोष सम्भ-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वतः भर कर छलकने लगा था। उसकी तृष्णा सम्भवतः, कम से कम कुछ समय के लिए, शान्त हो गयी थी। उसका मन सम्भवतः लूट-मार करते-करते ऊब गया था। कारण चाहे जो भी रहा हो, परन्तु यह सत्य है कि इस बार उसका उद्देश्य पिछले अभियानों से भिन्न, मुख्यतः व्यक्तिगत और किसी सीमा तक राजनीतिक था।

व्यक्तिगत इसलिए कि चन्देलों ने उसे चुनौती दी थी। कान्यकुब्ज के प्रतिहार शासक राज्यपाल ने महमूद के साथ युद्ध नहीं किया था। इस कायरता के दंडस्वरूप चन्देल युवराज विद्याधर ने कान्यकुब्ज को पद-दलित करके राज्यपाल का वध कर दिया था। अर्थात्, उन्होंने महमूद से कह दिया था कि जो तुम्हारा शत्रु नहीं है वह हमारा मित्र नहीं हो सकता, जो तुमसे युद्ध नहीं करेगा उसे हम जीवित नहीं रहने देंगे। महमूद के लिए इस ललकार का समुचित उत्तर देना आवश्यक था, वह चन्देलों को उनके दुस्साहस का दंड देने के लिए आतुर था।

और राजनीतिक इसलिए कि उत्तराखंड में उसे अब अकेले चन्देलों से ही किसी प्रकार की आशंका रह गयी थी। उद्‌भाण्ड का त्रिलोचनपाल संघर्ष करते-करते जूझ चुका था। महमूद ने उसके सम्पूर्ण राज्य को अपने अधीन करके वहाँ अपना सूबेदार नियुक्त कर दिया था। अन्य किसी राज्य के पास महमूद के मार्ग में खड़े होने की शक्ति नहीं थी। केवल चन्देलों के पास इतनी शक्ति थी, जिसके आधार पर वे दो बार अन्य राज्यों को भी महमूद के विरुद्ध संगठित करने का प्रयास कर चुके थे, और तीसरी बार फिर कर सकते थे। इस कारण उन्हें कुचल देना महमूद के लिए राजनीतिक दृष्टि से नितान्त आवश्यक था।

अतएव महमूद पवन-वेग से महोत्सवनगर की ओर बढ़ता चला आ रहा था। मधुपुरी तथा श्रीपथ के बीच से होकर आगे बढ़ते हुए उसने चर्मण्वती पार की, और पड़ाव पर पड़ाव डालता हुआ गोपाद्रि के द्वार पर आ खड़ा हुआ। उसकी गति का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि गोपाद्रि की सहायता के लिए जो चन्देल सेना भेजी जा रही थी वह अभी महोत्सवनगर से प्रस्थान भी नहीं कर पायी थी।

गोपाद्रि का शासक कीर्तिराज चन्देलों का सामन्त था। उसकी सेना आनन्दपाल की सहायता के लिए ओहन्द तक गयी थी और वह स्वयं युवराज विद्याधर के साथ कान्यकुब्ज-अभियान में सम्मिलित हुआ था। इसके अतिरिक्त, वह प्रस्तुत अभियान में महमूद के लिए कष्टकर सिद्ध हो सकता था। अतएव उससे पहले ही निपट लेना आवश्यक था।

परन्तु कीर्तिराज की शक्ति इतनी नहीं थी कि वह अकेला महमूद से निपट सके। अतएव उसने अपने दुर्ग के द्वार बंद कर लिये और महोत्सवनगर से सहायताकी प्रतीक्षा करने में ही बुद्धिमत्ता समझी। महमूद ने चारों ओर से दुर्ग को घेर लिया और उसकी सेना निरन्तर आक्रमण करने लगी।

कीर्तिराज चार दिन तक इन आक्रमणों को झेलता हुआ सहायता की प्रतीक्षा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करता रहा। यदि वह इतनी ही प्रतीक्षा और कर सकने की स्थिति में होता तो सहायता आ भी जाती, क्योंकि युवराज विद्याधर उस समय मार्ग में थे। परन्तु वह और अधिक प्रतीक्षा कर सकने की स्थिति में नहीं था। उसे चार दिन में ही अपनी स्थिति असम्भव प्रतीत होने लगी थी। अतएव पाँचवें दिन उसने बहुमूल्य उपहार भेजकर महमूद से संधि की प्रार्थना की।

महमूद ने अपने स्वभाव के प्रतिकूल बड़ी उदारता का परिचय दिया। बास्तव में कीर्तिराज उसका मुख्य लक्ष्य नहीं था, और मार्ग में अटक जाना उसे स्वयं अखर रहा था। अतएव उसने संधि की प्रार्थना तुरन्त स्वीकार कर ली। कीर्तिराज ने उसे और उपहार दिये, और उसने अपनी सेना को महोत्सवनगर की दिशा में प्रस्थान करने का आदेश दे दिया।

युवराज विद्याधर को जब यह समाचार मिला तब वे गोपाद्रि से दो पड़ाव के अन्तर पर थे। उन्होंने तुरन्त अपने अश्व का मुख खजुराहो की दिशा में मोड़ दिया, अर्थात् अपनी सेना को महमूद के मार्ग से हटा लिया। इसके साथ ही उन्होंने दूत द्वारा महमूद के पास कालंजर आने का लिखित निमंत्रण भी भेज दिया। उसके अंत में उन्होंने लिखा था, "हमने सुना है कि तुरुष्कों के देश में मृतकों को धरती खोद कर गाड़ दिया जाता है। हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि कालंजर में इस शुभ कार्य के लिए पर्याप्त भूमि है। सुल्तान के लिए उनकी मर्यादा के अनुरूप स्थान हम खोज रखेंगे।"

युद्ध का यह निर्भय निमंत्रण पाकर महमूद द्विधा में पड़ गया। उसने अपनी सेना मार्ग में ही रोक दी और सेनापतियों को परामर्श के लिए एकत्र किया। प्रश्न यह था कि पहले महोत्सवनगर पर आक्रमण किया जाए कि कालंजर पर। सभी सेनापतियों ने एकमत होकर पहले महोत्सवनगर चलने का परामर्श दिया क्योंकि वे अपने सैनिकों के अतिरिक्त लाभ का यह स्वर्णिम अवसर नहीं खोना चाहते थे। सबसे अन्त में सुल्तान ने विजयसिंह से पूछा। विजयसिंह ने सेनापतियों का समर्थन किया और कहा कि कालंजर आने के निमंत्रण के पीछे हमें भटकाने और अपने लिए समय प्राप्त करने की चाल भी हो सकती है।

सुल्तान कुछ क्षण तक पैनी दृष्टि से विजयसिंह की ओर देखता रहा। फिर उसने सहमति-सूचक सिर हिलाया और कहा, "बेशक चाल हो सकती है। मगर यह कमज़ोरी का इज़हार है, जिससे फ़ायदा उठाना हमारा फ़र्ज है।"

और उसने अपनी सेना को कालंजर की ओर मोड़ दिया।

— ४८ —

महमूद जब कालंजर पहुँचा तब वहाँ उसके स्वागत की व्यवस्था पूरी हो चुकी थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाराज गंडदेव अपने मंत्रियों तथा सभासदों सहित पहाड़ी के ऊपर स्थित दुर्ग में थे। दुर्ग का सैन्य नियंत्रण स्वभावतः दुर्गपाल सोमेश्वरदेव के हाथों में था। युवराज विद्याधर ने पहाड़ी के नीचे स्थित नगर की व्यवस्था सँभाल ली थी। चन्द्रशेखर को अजयगढ़ से बुला लिया गया था। वह युवराज का मुख्य सहायक था। नगर के बाल-वृद्ध तथा स्त्रियों को ऊपर दुर्ग में भेज दिया गया था। जो नागरिक नीचे रह गये थे, वे सब चन्देल सेना के अनियमित सैनिक बन गये थे, और इस प्रकार सम्पूर्ण कालंजर नगर एक विशाल सैन्य-शिविर में परिणत हो गया था। नगर के तीनों द्वार बन्द कर दिये गये थे और उनकी रक्षा के लिए सम्पूर्ण प्राचीर पर दक्ष धनुर्धर नियुक्त थे।

दूर से ही दुर्ग की उत्तुंग, सुदृढ़ प्राचीर और उसकी दुहरी रक्षा-व्यवस्था को देखकर महमूद ने समझ लिया कि उसने कालंजर के विषय में जो कुछ सुन रखा था वह असत्य नहीं था। परन्तु इससे उसका निश्चय और दृढ़ हुआ। उसने अपने आप से प्रतिज्ञा की कि समय चाहे जितना लग जाए और मूल्य चाहे जितना चुकाना पड़े, परन्तु वह कालंजर को विजय किये बिना नहीं लौटेगा।

तत्काल कालंजर-विजय की दिशा में किसी प्रकार की कार्यवाही सम्भव नहीं थी क्योंकि तीसरा पहर हो आया था और तुरुष्क सेना लम्बी यात्रा के पश्चात् बहुत थकी हुई थी। अतएव महमूद ने उसे फैलकर नगर को घेर लेने और रात्रि में सतर्क विश्राम करने का आदेश देकर संतोष किया। नगर-प्राचीर तथा उसके बाहर चारों ओर फैले हुए वनों के बीच में जो खेत तथा पशुओं के चरने के स्थान थे उनमें तुरुष्क शिविर लग गया और उसके मध्य में स्थित महमूद के स्कंधावार में बैठकर सुल्तान के सेनापति आक्रमण की योजना को मूर्तरूप देने लगे।

प्रातःकाल होते ही उस योजना के अनुसार कार्यवाही आरम्भ हो गयी।

पहला आक्रमण नगर के उत्तरी द्वार पर हुआ, जिसका उद्देश्य केवल रक्षा-व्यवस्था की टोह लेना था। लगभग दो सौ तुरुष्क अश्वारोही अपने भाले ऊँचे किये हुए द्रुत गति से नगर-द्वार की ओर बढ़े। परन्तु वे द्वार के निकट तक नहीं पहुँच पाये। प्राचीर के ऊपर से वाणों की बौछार ने उन्हें मार्ग में ही रोक दिया। वे क्षण भर रुके, फिर नियोजित ढंग से दो दलों में विभाजित होकर दाहिने और बाँए मुड़ गये। अन्त में लगभग सम्पूर्ण प्राचीर का चक्कर काटकर, और उसे प्रत्येक स्थान पर पूर्णतया सुरक्षित पाकर, वे अपने शिविर की ओर लौट गये। इसके पश्चात् दिन भर दोनों ओर से शान्ति रही।

परन्तु रात्रि के अंधकार में प्राचीर के ऊपर नियुक्त चन्देल रक्षकों को बाहर विशेष हलचल सुनाई पड़ी। ऐसा लग रहा था मानों कहीं निकट ही अनेक व्यक्ति शिला-खंड तोड़-तोड़ कर फेंक रहे हों। परन्तु अंधकार के कारण कुछ देखा नहीं जा सकता था। इस कठिनाई पर विजय पाने के उद्देश्य से एक अधिक उत्साही चन्देल सैनिक ने मशाल जलाकर उस ओर फेंकी जहाँ शब्द हो रहा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मशाल तो वहाँ तक नहीं पहुँची परन्तु उसे फेंकने वाला सैनिक तुरन्त चीत्कार करके गिर पड़ा। अंधकार में से आकर एक वाण ने उसके दाहिने हाथ को बेध दिया था।

इस घटना की सूचना तुरन्त युवराज को दी गयी। उन्होंने उसी समय स्थल पर आकर स्थिति का निरीक्षण किया। इसके परिणामस्वरूप प्राचीर के ऊपर रक्षकों की संख्या बढ़ गयी और वे शब्द को लक्ष्य बनाकर वाण चलाने लगे। इस कार्यवाही का इच्छित परिणाम हुआ। चहल-पहल बंद हो गयी। परन्तु कुछ समय पश्चात् वह फिर आरम्भ हो गयी, और यह क्रम रात्रि भर चलता रहा। प्रातःकाल प्रकाश होने पर नगर के रक्षकों ने देखा कि उनके द्वार के सामने लगभग पचास पग के अन्तर पर शिला-खण्डों तथा तुरन्त काटी हुई वन की लकड़ी के दो अम्बार लगे हैं। इस अस्थायी सुरक्षा-प्राचीर के पीछे तुरुष्क पदाति सैनिकों ने स्थान ग्रहण कर लिया था, और उसके ऊपर बैठे हुए पूर्ण कवचधारी तुरुष्क धनुर्धर चन्देल रक्षकों को अपने वाण नष्ट करने का निमंत्रण दे रहे थे।

उस दिन भी इस प्रकार के निमंत्रणों के यदा-कदा आदान-प्रदान के अतिरिक्त अन्य कोई उल्लेखनीय कार्यवाही नहीं हुई। दोनों पक्ष सतर्क थे और एक-दूसरे को तौल रहे थे।

परन्तु रात्रि में अम्बारों की लम्बाई-चौड़ाई बढ़ गयी और वे दोनों मिलकर एक हो गये। प्रातःकाल उनके ऊपर अधिक तुरुष्क धनुर्धर तथा उनके पीछे अधिक तुरुष्क पदाति सैनिक दिखाई पड़ने लगे। महमूद प्रत्यक्ष आक्रमण के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण कर रहा था।

दूसरी ओर चन्देल भी निष्क्रिय नहीं थे।

उसी दिन अर्ध-रात्रि के पश्चात् दुर्ग के दक्षिणी भाग में सहसा प्रकाश हो गया और लपटें प्राचीर से भी ऊँची उठने लगीं, मानों किसी ने सूखे पत्तों के बहुत बड़े ढ़ेर को मशाल दिखा दी हो। इस संकेत के परिणामस्वरूप तुरुष्क शिविर के पृष्ठ-भाग में स्थित कई रक्षा चौकियों पर एक साथ आक्रमण आरम्भ हो गये। ये चौकियाँ बन के निकट थीं, अतएव वहाँ नियुक्त सैनिकों ने वन्य-पशुओं दूर को रखने के उद्देश्य से होलिकाएँ प्रज्जवलित कर रखी थीं। ये आक्रमणकारियों के लिए विशेष सुविधाएँ सिद्ध हुईं। जो तुरुष्क सैनिक अग्नि के निकट प्रकाश में खड़े थे वे दूर से ही वाणों के लिए सुगम लक्ष्य सिद्ध हुए। उनके गिरते ही आक्रमणकारियों के दल वन तथा अंधकार से निकलकर शेष रक्षकों पर टूट पड़े और देखते-देखते रक्षा चौकियों को अरक्षित बनाकर फिर जहाँ से आए थे वहीं लौट गये। जब पीछे से चौकियों पर सहायता पहुँची तो वहाँ मृत रक्षकों के अतिरिक्त और कोई नहीं था।

लगभग इसी समय नगर-प्राचीर के उत्तरी द्वार के निकट किसी गुप्त मार्ग से बाहर निकल कर कुछ चन्देल सैनिक प्राचीर की छाया में निःशब्द खड़े हो गये। धीरे-धीरे और सैनिक उनका अनुकरण करने लगे, और जब उनकी संख्या कई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सो हो गयी तो वे बड़े नियोजित ढंग से लकड़ी के अम्बारों के पीछे नियुक्त तुरुष्क सैनिकों की ओर बढ़े। तुरुष्क सैनिक जब तक जागकर सावधान हों तब तक उनमें से अनेक मारे जा चुके थे। शेष अंधकार में कभी शत्रुओं के साथ तो कभी अपने ही साथियों से जूझने लगे।

जो चन्देल सैनिक सबसे अन्त में गुप्त मार्ग से निकल कर बाहर आये थे वे इस संघर्ष में सम्मिलित न होकर व्यस्त गति से लकड़ी के अम्बारों की ओर बढ़ रहे थे। उनके हाथों में घृत से भरे हुए भाण्ड थे। अम्बारों के निकट पहुँचकर उन्होंने घृत उनके ऊपर उँडेल दिया और उनमें आग लगा दी। इसके पश्चात् वे भी खड्ग निकाल कर युद्ध में सम्मिलित हो गये।

युद्ध शीघ्र ही भयानक रूप धारण करने लगा और तुरुष्कों को पीछे से सहायता आनी आरम्भ हो गयी। तब चन्देलों ने लड़ते हुए धीरे-धीरे पीछे हटना आरम्भ किया। जब वे द्वार के निकट पहुँच गये तो द्वार खुल गया और वे लड़ते हुए भीतर प्रवेश करने लगे। द्वार यथा समय फिर बंद हो गया। उस समय तक अधिकांश चन्देल सैनिक भीतर आ चुके थे। उनके साथ बहुत से तुरुष्क भी आ गये थे, जिनमें से कुछ मारे गये और शेष ने आत्म-समर्पण कर दिया।

बाहर लड़की के अम्बार अग्नि पकड़ चुके थे।

—४६—

कालंजर का घेरा पड़े चौदह दिन हो चुके थे। इस अवधि में छेड़-छाड़ तो दोनों ओर से निरन्तर चलती रही थी, परन्तु कोई बड़ा निर्णायक युद्ध नहीं हुआ था।

गत्यवरोध की यह स्थिति चन्देलों के लिए विशेष असुविधाकर नहीं थी। वे अपने नगर के भीतर सुरक्षित थे। उनके जो सैनिक बाहर से तुरुष्क शिविर के पृष्ठ-भाग को क्षति पहुँचा रहे थे वे संध्या को आकर वनों में छिप जाते थे और भोर होते-होते फिर अजयगढ़ लौट जाते थे।

परन्तु महमूद की स्थिति भिन्न थी, और उत्तरोत्तर अधिक कठिन होती जा रही थी। वह इतनी बड़ी सेना लेकर अपने देश तथा राज्य से दूर पड़ा हुआ था। जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा था वैसे-वैसे मनुष्यों के लिए भोजन तथा पशुओं के लिए चारा जुटाने की समस्या अधिकाधिक कठिन होती जा रही थी। इतने दिनों की निष्क्रियता के परिणामस्वरूप तुरुष्क सैनिकों का उत्साह भी क्षीण होने लगा था, और सब से बड़ी बात यह थी कि स्वयं महमूद के लिए अब धैर्य रखना कठिन हो गया था। वह कालंजर को घेरने आया था, और स्वयं घिरता चला जा रहा था। इस कारण वह विशेष चिन्तित था।

अतएव पन्द्रहवें दिन जब उसे यह सूचना मिली कि चन्देल महाराज का दूत

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई संदेश लेकर आया है, तो उसे विशेष प्रसन्नता हुई। उस समय वह अपने मंत्रियों तथा सेनापतियों के साथ बैठा परामर्श कर रहा था। उन्हें उसने तुरन्त विदा कर दिया। चन्देल महाराज के दूत से वह एकान्त में मिलना चाहता था।

दूत ने प्रवेश करके अभिवादन किया। महमूद ने उसे देखते ही पहचान लिया। वह चन्द्रशेखर था।

अभिवादन का उत्तर देते हुए महमूद ने कहा, "अपने राय का पैग़ाम लाये हो ? हम कई रोज़ से उसका इंतज़ार कर रहे थे।

"हमारे महाराज यह जनना चाहते हैं," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "कि अब सुल्तान की इच्छा क्या है।"

"यानी ?" महमूद ने कहा।

"सुलतान अब क्या चाहते हैं ?"

महमूद ने गम्भीर होकर कहा, "हम जो चाहते हैं, नौजवान, वह किसी से माँगते नहीं हैं। खुद ले लेते हैं। इसके अलावा, तुम्हारे राय में इतना दम-खम नहीं है कि हमारी ख्वाहिश पूरी कर सकें। हम जंग चाहते हैं, फैसला चाहते हैं।"

"वह तो हो चुका है," चन्द्रशेखर ने कहा।

"फैसला हो चुका है ? कब हुआ ? किसने किया ? ज़रा हम भी तो सुनें।"

"पन्द्रह दिन की लड़ाई में सुल्तान ने कुछ उठा नहीं रखा है, फिर भी कालंजर अभी सिर ऊँचा किये खड़ा है। सुल्तान उसे जीत नहीं सके हैं, और कभी नहीं जीत सकेंगे। यह निश्चित हो चुका है।"

"तुम गलत कह रहे हो, नौजवान," महमूद ने उत्तर दिया, "हमारी कोशिश अभी पूरी नहीं हुई है। जब होगी तब कालंजर हमारे कदमों पर होगा। फ़तह हमारे पीछे चलती है। हम वग़ैर कालंजर का सिर नीचा किए यहाँ से नहीं जाएँगे।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "आप कालंजर को कभी नहीं जीत सकेंगे, और न कभी यहाँ से लौटकर ही जा सकेंगे। मुझे यही सूचना देने के लिए आपके पास भेजा गया है।"

महमूद हँसा, "हमें रोकेगा कौन ?"

"हम रोकेंगे। उसका प्रबंध किया जा चुका है। गजनी का मार्ग बंद किया जा चुका है। बिना हमारे महाराज की इच्छा के अब आपके लिए लौटकर गजनी पहुँचना असम्भव है।"

महमूद ठहाका मार कर हँसा और बोला, "खूब ! खूब ! तुम्हारी गुफ़्तगू काफ़ी दिलचस्प है, नौजवान। हम तुम्हारे मज़ाकिया जज़्बात के कायल हैं। जो चन्देल खौफ़ से अपनी माँद में जा छिपे हैं वे अब हमारी राह रोकेंगे, हमें ग़ज़नी नहीं जाने देंगे !"

चन्द्रशेखर ने तटस्थ भाव से कहा, "हमारे महाराज ने जो कहा वह मैंने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुल्तान के सामने दुहरा दिया, आप जो कहेंगे वह लौटकर उनसे निवेदन कर दूंगा।'

"तो अपने राय से कह देना कि इस वक्त उनका मज़ाक हमें कतई पसन्द नहीं आया है। हम चन्देल जांबाजों की शोहरत सुनकर बड़े हौसले से कालंजर आये थे। मगर यहाँ आकर हमें महज़ मायूसी हासिल हुई है।"

"क्या हम आपकी कुछ सहायता कर सकते हैं ?"

"नहीं, तुम लोग हमारी ज़रा भी मदद नहीं कर सकते हो। तुम्हारे यहाँ किसी में इतनी ताकत नहीं है। हौसला भी नहीं है। वर्ना हम मायूस ही क्यों होते ? हम जंग की तलाश में आये थे, मगर तुम्हारे यहाँ शायद उसका चलन नहीं है।"

"हम चन्देल आवश्यकता पड़ने पर युद्ध करना और प्राण लेना-देना भली प्रकार जानते हैं," चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया, "परन्तु जहाँ आवश्यक न हो वहाँ रक्त बहाने का चलन हमारे यहाँ नहीं है। हमारे यहाँ वीरता की परीक्षा द्वन्द्व-युद्ध में होती है। हमारे प्रधान सेनापति युवराज विद्याधर सुल्तान के साथ युद्ध कर सकते हैं। उनका यह सेवक इसी समय सुल्तान के किसी सेनापति के साथ युद्ध कर सकता है।"

"और हम दूर-दराज़ गजनी से इतनी बड़ी फ़ौज महज़ तमाशा देखने के लिए लाये हैं ?" महमूद ने प्रस्ताव की खिल्ली उड़ाते हुए कहा। "नहीं, नौजवान, हम तुम्हारी इस पेशकश को क़ाबिले-ग़ौर भी नहीं समझते हैं। और कुछ ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "हाँ, हमारे महाराज का एक प्रस्ताव और है। उन्होंने इसका पूरा प्रबंध कर लिया है कि आप कभी लौटकर गजनी न पहुँचने पाएँ। परन्तु वे आपका आदर करते हैं और बिना कारण रक्त बहाने के पक्ष में नहीं हैं। इस कारण उन्होंने कहा है कि यदि आप फिर कभी इस ओर न आने का वचन दें तो वे आपका मार्ग छोड़ देंगे।"

"हम भी तुम्हारे महाराज की बड़ी इज्ज़त करते हैं," महमूद ने कहा, "और बिला वजह खून बहाने के हक में नहीं हैं। मगर उनकी यह पेशकश हमें मंज़ूर नहीं है। उनसे कह देना कि महमूद की राह कोहो-समंदर भी नहीं रोक सकते हैं। हालांकि कालंजर आकर हमें इस क़दर मायूसी हुई है कि हम ख़ुद शायद फिर कभी इस तरफ आने का इरादा नहीं करेंगे, मगर शर्त के तौर पर क़तई मंज़ूर नहीं करेंगे। शर्त हमेशा मजबूरी में मंज़ूर की जाती है, और हम अपने सामने ऐसी कोई मजबूरी नहीं देख रहे हैं। अगर तुम्हारा कहना सही है और हमारा रास्ता रोकने की कोशिश की गयी तो हमें बेहद खुशी होगी। हमारे जांबाज़ों को अपना जौहर दिखाने का एक मौका तो मिलेगा।"

"वह यदि सुल्तान चाहें तो आज ही मिल सकता है।"

"कैसे ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रशेखर ने कहा, "सुल्तान कालंजर में हमारे अतिथि होकर आये हैं। अतएव हमारे महाराज बिना उचित उपहार दिये आपको यहाँ से नहीं जाने देंगे। उन्होंने सुन रखा है कि आपको हाथियों से बड़ा प्रेम है।"

"खुलासा कहो। हमारे जांबाज़ों को मौका कैसे मिलेगा ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "उपहार के हाथी निरंकुश छोड़ दिए जाएँगे। उन्हें वश में करना आपके वीरों का काम होगा।"

महमूद क्षण भर विचारमग्न रहा, फिर प्रसन्न स्वर में बोला, "यह पेशकश हमें मंज़ूर है। हमारी ख्वाहिश है कि छांट-छांट कर बदमिजाज़ हाथी छोड़े जाएँ। अपने जांबाज़ों का जौहर देखने में हमें भी दिलचस्पी है।"

"हमारे महाराज को यह जानकर विशेष प्रसन्नता होगी।"

महमूद कुछ सोचने लगा था, अतएव चन्द्रशेखर ने ही क्षण भर रुककर कहा, "यदि आज्ञा हो तो मैं अपने महाराज से यह निवेदन भी कर दूं कि सुल्तान को स्वयं अब इस ओर आने में रुचि नहीं है ?"

महमूद ने कहा, "हाँ, यह कह सकते हो। तुम वाक़ई एक निहायत समझदार नौजवान हो। हमारे साथ होते तो बहुत तरक्क़ी करते। हम तुमसे बहुत खुश हैं। मगर अब अपनी फ़ौज में आने को नहीं कहेंगे, क्योंकि हमने तुम्हारी क़ौम पहचान ली है। तुम लोग उन आक़ा-परस्तों में हो जो नमक की तौहीन को सबसे बड़ी तौहीन मानते हैं। तुम हमारे साथ रहकर भी हमारे कभी नहीं बनोगे। तुम्हें और कुछ कहना है ?"

चन्द्रशेखर मानों इस प्रश्न की राह ही देख रहा था। तुरन्त बोला, "मेरी एक धरोहर सुल्तान के पास है।"

"यानी ?"

"ओहन्द में आपने मुझसे कुछ माँगने को कहा था।"

"हाँ, मुझे याद है। तुम्हारा इनाम हमारी अमानत में है। उसे ले लो, फिर कभी मुलक़ात हो, न हो। इस वक़्त हम तुमसे बहुत खुश हैं। मांगो।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं अपने मित्र को वापस चाहता हूं।"

"किसे ? विजेसिंह को ?"

"हाँ।"

सुल्तान क्षण भर कुछ सोचता रहा, फिर बोला, "विजेसिंह हमारा मुजरिम है। हम उसे माकूल सज़ा देना चाहते थे। मगर खुदा को शायद यह मंज़ूर नहीं है। लिहाज़ा तुम उसे फ़ौरन यहाँ से ले जाओ। हम उस नमकहराम का मुँह नहीं देखना चाहते हैं।"

× × ×

कुछ समय पश्चात् चन्द्रशेखर के साथ नगर-द्वार की ओर चलते हुए विजयसिंह ने अपनी पहली प्रतिक्रिया व्यक्त की। उसने कहा "तुम मूर्ख हो !"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"तुम्हारे सम्बंध में मेरी धारणा भी लगभग ऐसी ही है," चन्द्रशेखर ने कहा।

"मैं वहाँ रहकर………"

"जानता हूँ," चन्द्रशेखर ने कहा, "और सुलतान को भी तुम्हारी गतिविधियों का ज्ञान हो चुका है। अतएव मेरी मूर्खता को धन्यवाद दो और चलकर अपने परिवार को देखो। मुझे अब अपने परिवार की ओर देखना है।"

●

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Vishnu singh
210/3 H.K. Collony
Kanpur

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री शालिग्राम मिश्र, एम० ए०

जन्म : १९२१

स्थान : शाहाबाद, जिला हरदोई, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : उन्नाव और बी० एस० एस० डी० कालेज, कानपुर। १९४३ में अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० करके उसी वर्ष से अपने मातृ विद्यापीठ बी० एस० एस० डी० कालेज में ही अंग्रेजी साहित्य के आचार्य हैं।

प्रकाशित रचनाएं :—
१. स्वर संधान (कविता संग्रह)
२. फ़ाइटर्स आफ़ फ्रीडम (अंग्रेज़ी)
३. चासर्स प्रोलोग (अंग्रेज़ी सम्पादित)
४. अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश (सम्पादित)
५. जेम्स ऑफ़ जनरल इंग्लिश (अंग्रेज़ी)
६. खजुराहो की नगर वधू (उपन्यास)
७. किन्नरी (उपन्यास)

आगामी प्रकाशन :—
१. देवनगरी का स्वप्न (उपन्यास)